शिक्षा तथा समाज-कल्याण मन्त्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित।

प्रथम-संस्करण : 1977
Viklang Shiksha Sindhu

भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर
उपलब्ध कराए गए कागज से निर्मित।

मूल्य : 15 50

प्रकाशक :
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
ए–26/2, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर
जयपुर–302004

मुद्रक :
जयपुर मान प्रिन्टर्स,
चौड़ा रास्ता, जयपुर

प्राक्कथन

पवित्र ते वितितं ब्रह्णस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्य्येषि विश्वत ।
अतप्तनूर्न तदभो अश्नुते ऋतासइदहन्तस्तत्समाशत ।।

ऋग् ६ ८३ १

(यह सम्पूर्ण सृष्टि मगलदायी, मधुर एव शुभ पदार्थों से परिपूर्ण है, परन्तु वे उन्ही को प्राप्य हैं जो तप एव साधना के द्वारा उनका मूल्य प्रस्तुत करते हैं। विश्व मे यदि विद्या एव सिद्धि प्राप्त करनी है तो वह विवेकपूर्ण साधना द्वारा ही सम्भव है।)

ज्ञान, औदार्य, नि स्वार्थ एव सेवाभाव से युक्त चिन्तनशील समाज के अध्येताओ ने सम्भव है किसी समय सोचा होगा, जो विकलाग है वे दया एव सुरक्षा के पात्र है, अत प्रत्येक जनमानस का बिना किसी भेदभाव के यह कर्त्तव्य है कि वह उनके भरण-पोषण एव रक्षा का दायित्व वहन करें। समय की पर्तो के नीचे से उठकर समाज की मान्यताएँ एव मूल्य नये स्वरूप को लेकर उठते रहे। और आज विकसित विज्ञान ने वर्तमान को नये मूल्य ही नही दिये अपितु जीवन की इस कर्म-भूमि मे प्रत्येक मानव के लिए चाहे वह विकलाग ही क्यो न हो नये आयाम उपलब्ध किये हैं जिनमे वह आत्मनिर्भर जीवन जी सकता है।

विकलागो को समाज से अलग रखकर सोचना अब अर्थहीन प्रतीत होता है। प्राकृतिक प्रकोप, रोग, दुर्घटना आदि न जाने कब किसे कहाँ विकलागावस्था मे बदल दे कहना सम्भव नही है, व्यक्ति का इससे एक सामान्य रूप खण्डित हो जाता है। इस प्रकरण मे चार प्रकार की विकलागावस्थाओ का उल्लेख किया गया है ।

१ शारीरिक   २ मानसिक   ३ सामाजिक   ४. भावात्मक

समाज के सोचने मे व्यावहारिकता का उदय इस बात की ओर इगित करता है कि विकलागो के स्वस्थ अगो की कार्य-क्षमता बढाई जावे। सचेष्टन की यह क्रिया आत्म-निर्भरता का आधार है। किसी न किसी रूप मे प्रत्येक प्राणी अपने जन्म से ही सीखना आरम्भ कर देता है, परन्तु आत्म-विश्वास के अभाव मे यह प्रयास तिरोहित हो जाता है। राजस्थान विश्वविद्यालय सिनेटर के रूप मे कौशिक से मेरा परिचय है। लेखन के सम्बन्ध मे मेरा उनसे विचार-विमर्श रहा हे। इस पुस्तक के विषय मे मे यह कह सकता हूँ —

"विकलाग शिक्षा सिन्धु अपने दर्शन एव सिद्धान्त मे आत्म-विश्वास व अभ्यास एव व्यवहार मे जीवन के साथ जुडा हुआ है।" जो निश्चय ही उपादेय होगा।

विषय विस्तार एव विवेचन की दृष्टि से पुस्तक प्रभावशाली है। वर्षो राजस्थान विश्वविद्यालय सीनेट व सिन्डीकेट के सदस्य रहने व अब राजस्थान के शिक्षा मन्त्री के रूप में मैंने सामान्य एव विशिष्ट शिक्षा की समस्याओ का गहन अध्ययन ही नही किया उनके निराकरण के लिए भी क्रियात्मक कदम उठा रहा हूँ। उपचारात्मक प्रक्रियाओ का उल्लेख होने से यह पुस्तक विद्यार्थी, अभिभावक एव अध्यापक तीनो के लिए ही उपयोगी है, हिन्दी मे प्राय ऐसी पुस्तको का अभाव है।

विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे १६ वी शताब्दी के आरम्भ से ही विधिवत् प्रयास हुए हैं। १८०४ में वियाना में अन्ध विद्यालय की स्थापना इसके पश्चात् २० वी शताब्दी मे विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे एक विश्वव्यापी क्रान्तिकारी इतिहास का निर्माण करने की ओर अग्रसर है। मूक, वधिर अन्ध, आगिक विकृति, मृगी, (मस्तिष्क रोग) एव दुर्घटनाओ से उत्पन्न अवस्थाओ के प्रभाव से प्रभावित व्यक्तियो को आज भाग्य व्यक्ति या समाज की कृपा से उबारने की दिशा मे ज्ञान और जीविकोपार्जन का समन्वित स्वरूप शिक्षण का अग बन चुका है। प्रस्तुत पुस्तक मे श्री कौशिक ने अशक्त इन्द्रियो की क्षमता के विकास एव अन्य इन्द्रियो की शक्ति को समुन्नत करने की ओर विशेष ध्यान दिया है। इस प्रकार शिक्षा देने का उद्देश्य ही यह है कि राष्ट्र को सक्रिय एव सचेष्ट नागरिक मिलें, विकलाग अपनी योग्यता के अनुरूप स्वावलम्बन अर्जित कर सके ।

विकलाग शिक्षा दर्शन मे समृद्ध परम्परा का उल्लेख ऋषि अष्टावक्र एव सन्त सूर की चर्चा अनुकरणीय है। शिक्षण के प्रसग मे पाठ्यक्रम, विद्यालय निदेशन प्रशासन एव स्वास्थ्य शिक्षा के साथ ही मन्द बुद्धि एव तीव्र बुद्धि बालको की समस्या पर विद्यालय की दृष्टि से उल्लेख अच्छा है। शिक्षा के विभिन्न पक्षो पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करते हुए प्रयास रहा है कि सामान्य विद्यालयो को इतना समुन्नत बना दिया जावे कि असामान्य रूप मे असाधारण बालको को छोडकर शेष सभी के लिए शिक्षा उपलब्ध रहे। स्थानीय जनता और शिक्षाविद् रुचि लें तो यह सहज है —

एक सराहनीय प्रयास है "विकलाग शिक्षा सिन्धु"

ललित चतुर्वेदी
(शिक्षा मन्त्री, राजस्थान सरकार)

दो शब्द

उत्क्रमात पुरुष माव पत्या मृत्यो पड्वीशमवमुञ्चमान ।
माच्छित्या अस्माल्लोकादग्ने सूयस्यसहश ॥

(अथर्व ८ १४)

(हे मनुष्य, तू अपनी वर्तमान अवस्था से ही सन्तुष्ट मत रह, आगे वढ, शरीर वुद्धि एव आत्म-वल द्वारा पुरुपार्थ सम्पन्न कर ।)

ऋपि अथर्वा के इस कथन मे वह रहस्य समाहित है जिसे जान लेने पर व्यक्ति "नेति-नेति", "यह भी नही, वह भी नही" एव तदुपरान्त "चरैवेति -चरैवेति" (चले-चलो, चले चलो) के गूढ तत्त्व को जान लेता है । सम्भवत इसी प्रेरणा के अभाव मे समाज का विकलाग वर्ग अपनी वर्तमान अवस्था को ही जीवन की अन्तिम परिणति मान चुका है, उसे इसी अवस्था मे येन-केन प्रकारेण जीवन व्यतीत करना होगा, या फिर समाज की दया और कृपा के सहारे मृत्यु की प्रतीक्षा । प्रस्तुत पुस्तक 'विकलाग शिक्षा सिन्धु' प्रजातन्त्र के सन्दर्भ मे उन सभी सम्भावनाओ को दृष्टिगत रख, विकलागो के प्रति, समाज मे क्रियात्मक पक्ष का विवेचन करती है । यह निश्चित है कि मनुष्य वहाँ पराजय को प्राप्त हो जाता है जहाँ वह अपनी वर्तमान अवस्था से ही सन्तोप कर लेता है, एव दूसरी ओर विकास के क्रम मे धीरे-धीरे इतना पिछड जाता है कि दूसरो पर आश्रित रहने के अतिरिक्त वह कुछ नही कर सकता ।

समाज और विकलाग के मिश्रित दायित्व पर इस पुस्तक मे तकनीकी विधि से अच्छा लिखा गया है । निर्देशन और व्यवहार पक्ष का साथ-साथ वर्णन समाज, विद्यालय और विकलाग तीनो के लिए लाभदायक सिद्ध होगा, यद्यपि विद्यालय के प्रसग मे ही मूलत पुस्तक का सुझाव है । जो अध्यापक विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे कार्यरत है उनके लिए वर्ण्य सामग्री पर्याप्त प्रभावशाली एवं व्यावहारिक है । सामान्य शिक्षा की पृष्ठ-भूमि पर विकलाग शिक्षा की सम्भावनाएँ सामान्य सुविधाओ के साथ जोड दी जाए तो यह महान कल्याणकारी सिद्ध होगा । सार्थकता भी इसी वात मे है कि देश पर अतिरिक्त भार वढाये विना साधारण विद्यालयो मे असाधारण या अपवादी वालको हेतु भी शिक्षा-सुविधाएँ जुटाई जाएँ । "सवसे भले वे मूढ, जिन्हहि न व्यापइ जगत गति ।" और न ऐसा कह कर ही अपने दायित्व वोध से परे हटा जा सकता है ।

कौशिक ने मन्द गति से व तीव्र गति से सीखने वाले वालको की ओर भी विद्यालयो का ध्यान आकृष्ट किया है । प्राय प्रत्येक मानसिक स्तर का वालक, विद्यालयो मे विना वुद्धि लब्धि एव ग्रहणीय क्षमता के जाने, अध्ययन-रत है । इन्ही मे अध्यापक के लिए समस्या-वालक की श्रेणी मे गिने जाने वाले छात्र भी है । शारीरिक विकलागता मे भी लक्षण, उपचार एव शिक्षण तीनो ही विन्दुओ का स्वाभाविक विवेचन है ।

दो शब्दो मे यह कहना ही पर्याप्त होगा कि प्रस्तुत पुस्तक अध्यापक और अभिभावक दोनो के लिए ही महत्त्वपूर्ण है ।

पं. लेखराम शर्मा
आयुर्वेदाचार्य
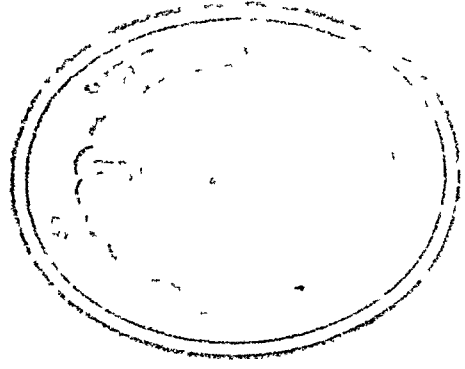
गरिमामयी

माँ

जिसके जीवन का अन्तिम दशक
विकलागावस्था मे व्यतीत हुआ

जिसने अनेक विकलांगों को जीवन
जीने की दिशा प्रदान की

जिसके विवश अश्रु विकलांग पशुओं
तक के लिए राह ढूंढते सदा-सदा
के लिए मौन हो गए

अपनी दृष्टि

'विकलाग शिक्षा सिन्धु' लिखते समय प्रारम्भ मे जिस पक्ष की ओर दृष्टि गई, वह था, "विकलाग कौन है ?" शिक्षा के क्षेत्र मे अनेकानेक छात्र-छात्राओ, अध्यापक-अध्यापिकाओ, प्राध्यापक-प्राध्यापिकाओ एव प्राचार्य वर्ग के सम्पर्क मे आना पडा। सामान्य दिखाई देने वाले इस समुदाय के जीवन की कतिपय अवस्थाओ मे इतनी असामान्य अवस्थाएँ दृष्टिगोचर हुई कि इनमे से एक दो तो आत्म-हत्या करके जीवन यात्रा ही पूर्ण कर चुके, कई शराव एव अन्य दुर्व्यसनो मे इतने प्रवृत्त हुए कि भिक्षा-वृत्ति अपनाने को वाध्य होना पडा, और एक-दो ने सामाजिक समजन के लिए अपने विकास का वलिदान कर दिया। यदि विकलाग वर्ग मे भी कुछ असामान्य अवस्थाएँ दृष्टिगत हो तो अस्वाभाविक नही है। श्री ओम प्रकाश गौड सदा कहते रहते थे "प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप मे असामान्य है।

प्रस्तुत लेखन के क्षेत्र की पृष्ठ-भूमि मे वह वर्ग है जो किन्ही भी निर्योग्यताओ के फलस्वरूप औसत वालको की भाँति शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थ है, जिन्हे अतिरिक्त सहायता या विशिष्ट शिक्षण की आवश्यकता होती है। शारीरिक निर्योग्यता, चाहे वह किसी भी कारण से रही हो, उसने वालक के स्वाभाविक जीवन को सन्तुलित कर दिया है। शिक्षण की गति के अवरुद्ध हो जाने से वालक को अतिरिक्त सहायता या उपकरण प्रदान किये जाते हैं ताकि निर्योग्यता-विशेष को नियन्त्रित किया जा सके।

अध्ययन की दृष्टि से यहाँ निर्योग्यता का उल्लेख निम्नलिखित प्रसगो मे विभक्त किया गया है .—

१ शारीरिक निर्योग्यता
२. मानसिक निर्योग्यता
३ सामाजिक निर्योग्यता।

विकलाग शिक्षा की सीमा मे विकलाग के व्यवहार एव मनो-सामाजिक अवस्थाओ का अध्ययन करना आवश्यक है। विकलागो के प्रति परिवर्तित होते मूल्यो ने समाज से यह उगलवा लिया है कि विकलाग औसत वर्ग से भिन्न नही है। उन्हे किसी की दया पर पलने की आवश्यकता नही है। विकलाग कहे जाने वाले वर्ग ने उत्तम चिकित्सक, वकील, व्यापारी, कार्यकर्त्ता एव साहित्यकार दिये हैं। निज़ाम मीर महवूव अली खाँ के निजी चिकित्सक हकीम अन्धे थे, अत उनका नाम ही हकीम नावीना* पड गया था। मिल्टन की श्रेष्ठ कृति 'पैराडाइज लास्ट' उनके अन्धे होने के पश्चात् लिखी गई। अत आवश्यकता इस वात की है कि समाज विकलागो की स्वस्थ अवस्थाओ का पूर्ण उपयोग उनके एव समाज के हित मे करे।

प्रशिक्षण विद्यालयो एव विशेष विद्यालयो की स्थापना पर भी विचार किया जाना स्वाभाविक है। विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य करने वाले अध्यापक-वर्ग को विशेष

---

* फारसी में 'नावीना' का अर्थ है—अन्धा।

परिस्थितियो मे विशेष विकलागावस्था के बालको के मनोविज्ञान एव उनकी प्रवृत्तियो को जान कर उन्हे शिक्षित करना परमावश्यक हे। परिभ्रामी अध्यापको का प्रसग भी यथा-सम्भव सामान्य निदेशन के क्षेत्र मे किया गया है। इसके मूल मे यही भावना रही है कि वर्षों से परित्यक्त एव कृपा पर पलने वाले वर्ग के प्रति समाज की धारणा मे परिवर्तन अवश्य हो।

सामान्य शिक्षा की पृष्ठभूमि को भी ध्यान मे रखते हुए उन सभी सम्भावनाओ का उल्लेख किया गया है जिसमे औसत बालक के साथ विकलाग बालको को पढने की सुविधाएँ प्रदान की जा सकती है। शारीरिक जाँच एव चिकित्सा सुविधा का प्राप्त होना विकलाग बालको के लिए अनिवार्य है। इससे शिक्षण काल मे अत्यधिक सुविधा प्राप्त होगी। बालक का शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य यदि अध्यापक की जानकारी मे रहता हे तो सामान्य विद्यालय मे सहज शिक्षण पद्धति से भी उत्तम परिणाम निकलने की आशा रहती हे।

जीवन मे निकट से अनेक असामान्य एव विकलाग बालको को भी निदेशन देने का अवसर प्राप्त हुआ हे जहाँ खलील जिब्रान के शब्दो मे, "अपने विद्यार्थी को अपने विचार नही अपना प्यार प्रदान करो, क्योकि विचार तो उनके पास है।" यह धारणा सार्थकता के सन्निकट मिली। प्रयत्न रहा हे कि इसी विचारधारा को अपने विद्यार्थियो के सम्पर्क मे आते समय प्रमुख रखा जाए।

इस लेखन कार्य मे शिक्षाविद् तथा राष्ट्रीय एव विश्वव्यापी ख्याति के विद्वानो के अतिरिक्त ऐसे साधारण लोगो के विचारो को भी समाहित किया गया हे जो जीवन मे स्वय विकलागता से ग्रसित रहे हे। स्वयश और प्रशसा से परे (श्रीमती) चन्द्रपति ऐसी ही एक विदुषी महिला हैं जो अपने जीवन के अन्तिम दशक मे विकलाग होते हुए विक-लागो की, जैसा भी उनसे बन पडा, सेवा और सहायता करती रही। महर्षि, शिक्षा-सन्त स्वामी केशवानन्द, राष्ट्रीय ख्याति के अज्ञात शिक्षाविदो मे से हे जिन्होने अपने जीवन के नव्वे वर्ष स्वतन्त्रता, समाज और शिक्षा को समर्पित कर दिये। स्वर्ण मन्दिर अमृतसर पर १६५६ मे स्वर्ण-पत्र जीर्णोद्धार का कार्य, अबोहर हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आयोजन, सौ के लगभग पुस्तको का प्रकाशन तथा राजस्थान, हरियाणा एव पजाब के गाँवो मे २८७ प्राथमिक (कन्या एव बालक) विद्यालयो के सचालन का श्रेय इस फकीर के साथ बँधा है। उत्तर राजस्थान के विशाल शिक्षण संस्थान ग्रामोत्थान विद्यापीठ, सगरिया, (राज-स्थान) का सचालन ५० वर्ष किया, एक झोली के सहारे। विकलागो के लिए क्या नही किया इस महर्षि ने! स्वामी जी के शब्दो मे, "विकलांग शिक्षा को स्वावलम्बन से सीधे सम्बन्धित रखें। हमने विद्यापीठ मे विकलांगों के अतिरिक्त मन्द बुद्धि बालको के लिए सिलाई, बढईगिरी, लुहारी प्रेस, कताई, बुनाई आदि का काम अनिवार्य रूप से चालू किया। इससे हम १६४७ के दगो मे प्रभावित स्त्री, पुरुष और बालको को एक राहत दे सके, एक दिशा दे सके। मुझे बडी पीडा होती है जब मैं व्यक्ति को, चाहे वह अपाहिज ही क्यो न हो, भीख से पेट भरते हुए देखता हूँ।" सुरेन्द्र और ओम प्रकाश गौड उन अध्यापकों में से है जहाँ समजन हार जाता हे। शिक्षण और बालकों मे निष्ठा ही जिनका धर्म-कर्म और ईश्वर है, विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे अनुभव-जन्य विचार प्रस्तुत करते हैं। इनके

अतिरिक्त अन्य सम्पर्क मे आने वाले विभिन्न अध्यापको एव शिक्षाविदो के विचारो का व्यावहारिक समावेश किया गया है ।

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण मे श्री सुशील विहाणी एव श्रीमती किरण विहाणी द्वारा उत्साह-वर्धन हुआ है । विहाणी शिक्षा सस्थान, श्री गगानगर, के तत्वावधान मे सचालित विहाणी शिक्षा महाविद्यालय मे विकलाग शिक्षा की विशेपज्ञता-विपयो के अन्तर्गत विशेप अध्ययन की व्यवस्था है, जिसने मुझे इस दिशा मे गतिशील किया । इस क्षेत्र मे श्री ओम प्रकाश विहाणी, श्री मोहनलाल पेटीवाल, प्राचार्य श्री ताराचन्द शर्मा, प्राचार्य (श्रीमती) रमा कोचर की प्रेरणा स्तुत्य है । उन सभी प्रवुद्ध मनीपियो के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन भी आवश्यक है, जिनकी कृतियो के अध्ययन से इस क्षेत्र मे प्रयत्नशील हो सका । विकृतियो एव प्रशासन विपयक प्रसग एव सुझावो हेतु डॉ० शकर, डॉ० हरि, डॉ० सिन्धु, श्री पी० एन० कौशिक के प्रति आभारी हूँ, जिनसे हिन्दी माध्यम से इस पुस्तक का स्वरूप निखर सका ।

"सिन्धु सदृश्य विकलाग शिक्षा भी सामान्य-असामान्य, स्थूल-सूक्ष्म, साधारण-असाधारण, सरल-जटिल के साथ मुक्ति एव विवशता के घेरे मे विषमताओ का जीवन है ।" श्री रवीन्द्रनाथ वशिष्ठ के कथन मे एक दृष्टि है, जो स्नेह, प्यार, सौहार्द एव उत्तम निदेशन के वातावरण मे ही विकलागो को शिक्षित कर, नव-जीवन प्रदान कर सकती है । प्रो० चण्डीप्रसादाचार्य, श्री कुन्दनलाल शास्त्री, श्री देवव्रत वशिष्ठ एव रमेश शर्मा के प्रेरक शब्द, "इन्हे भी (विकलागो को) देखो, मेरे सामने है ।" भारत मे हिन्दीमाध्यम से लिखित इस प्रकार की कृतियो का सर्वथा अभाव है । मेरा विनम्र अनुरोध देश के शिक्षाविदो से भी है कि वे अपवादी वालक एव विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे अपना योग दे ।

श्री धर्मसिह इस कृति के पुनर्लेखन के लिए एव रेखाकृतियो के लिए कलाकार श्री रास विहारी कौशिक, तथा प्रकाशन निमित्त राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर धन्यवाद के पात्र है जिनके सत् प्रयत्नो से अपवादी वालक एव विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे "विकलाग शिक्षा सिन्धु" इस विवश जीवन की सार्थकता का एक चरण है ।

ब्र० ना० कौशिक

विषय-सूची

प्रारम्भिक अवस्था (शिशु को शिक्षण हेतु तैयार करना) पूर्व प्राथमिक शिक्षा एव प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ, शालापूर्व कार्यक्रम, शारीरिक विकास, भाषायी विकास, मनोवैज्ञानिक पक्ष सवेगात्मक एव सामाजिक समजन, घर का दायित्वपूर्ण स्थान, चिकित्सा विद्यालय एवं शिक्षा, प्रशिक्षण योग्य प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ, विशिष्ट कक्षा व्यवस्था, परिभ्रामी अध्यापक एव विशेषज्ञ, शिक्षा एव प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ, विशिष्ट बिन्दु, प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव बाल्यावस्था, प्रमस्तिकीय सस्तभ एव पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम के प्रमुख आधार, मनोवैज्ञानिक आधार, शारीरिक सभावनाएँ, सामाजिक समजन, बुद्धि, प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव विषय प्रमस्तिकीय सस्तम्भ एव माध्यमिक स्तर, विशेषज्ञ एव अभिभावक परामर्श-मण्डल, चिकित्सा सुविधा एव शल्य चिकित्सा, शारीरिक प्रशिक्षण, सीखने की निर्योग्यता, सीखने मे निर्योग्यता के लक्षण, निर्योग्यता जाँच के तत्त्व, सार-सक्षेप।

III वधिर एवं ऊँचा सुनने वाले बालक और शिक्षा

शिक्षण मे पूर्व ध्यातव्य बिन्दु, अभिज्ञान, वधिर बालक का निर्धारण एव शिक्षण पुरोगम, श्रवण शक्ति का विकास, ओष्ठ द्वारा पढना, वाणी ध्वनि का प्रशिक्षण, उपचार, प्रयास, एव विधि, शिक्षण को प्रभावी करने वाले तत्त्व, विशिष्ट पाठ्यक्रम एव वधिर, पाठ्यक्रम निर्धारण काल मे ध्यातव्य बिन्दु, भाषाई विकास, वाचन-क्षमता का विकास, अभिभावको हेतु पत्राचार व्यवस्था, पूर्व प्राथमिक विद्यालय स्तर, प्राथमिक-स्तर, माध्यमिक-स्तर, व्यावसायिक जीवन, वधिर शिक्षा एव अध्यापक, सार-सक्षेप।

IV चक्षु-विकलाग बालक एवं शिक्षा

चक्षु-विकलाग बालक, अभिप्राय, चक्षुहीन बालको का वर्गीकरण, चक्षुहीनता के सामान्य कारण, बाल विकास एव चक्षुहीनता, बालक मे क्रियात्मकता का प्रभावी होना, सामुदायिक जीवन की सर्वथा मन्दगति, ऊँचाई एव भार और चक्षुहीन, शारीरिक क्षमता, वाणी विकास, भाषाई विकास, चक्षु विकलाग एव लेखन, लुईब्रेल, ब्रेल एक उपलब्धि हिन्दी ब्रेल सकेत चिह्न, ब्रेल लिपि का स्वरूप, ब्रेल लेखन, टकण कार्य, सवेदी प्रतिबोध, सवेदी प्रतिबोध का चक्षुहीन हेतु महत्त्व, वाचन क्षमता, चक्षुहीन की विशिष्ट रुचि, सगीत, चक्षुहीन एव बुद्धि, शिक्षा एव चक्षुहीन, आवासीय विद्यालय, चक्षुहीन हेतु सामान्य विद्यालय सगम, सार-सक्षेप।

V वाक् विकलागता एवं शिक्षा

वाक् विकलागता का अर्थ, कारण, वाक् विकार का रूप, वाक् विकार जाँच एव शोधन, परेक्षण विधि, वाक् शोधन उपक्रम, वाणी विकास,

III विकलाग और शारीरिक शिक्षा का सर्वतोमुखी कार्यक्रम

शारीरिक शिक्षा की दृष्टि, शारीरिक शिक्षा का अभिप्राय, विकलाग शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य, विकलागो हेतु शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य, शारीरिक शिक्षा के उद्देश्यो का वर्गीकरण, विभिन्न शारीरिक विकलागता एव शारीरिक शिक्षा, आगिक विकलागता एव शारीरिक शिक्षा, ज्ञानेन्द्रिय विकलागता एव शारीरिक शिक्षा, मानसिक स्वास्थ्य और व्यायाम, साधारण मानसिक विकृति एव शिक्षा, विशिष्ट मानसिक विकृति, मनोसामाजिक विकृति एव व्यायाम ।

IV शारीरिक शिक्षा हेतु अभ्यास

छ सूत्री व्यायामाभ्यास, सूर्य नमस्कार, अष्टाग योग, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि, सुरक्षात्मक व्यायाम, आसन , शीर्षासन, पद्मासन, मयूरासन, चक्रासन, सर्वांगासन, उर्ध्व सर्वांगासन, पाद, हस्तासन, विभिन्न विकारो मे शारीरिक अभ्यास, प्रमस्तिष्कीय विकृतियाँ, नेत्र विकार वाहिनीय दोष, हृदय एव फेफडो के दोष, अस्थि एव पैशिक दोष, दन्त नासिका एव दृष्टि दोष, मानसिक अथवा बौद्धिक दोष, विकलागो हेतु शारीरिक अभ्यास एव मनो-सामाजिक स्थिति, समाजिक समजन एव सहयोग भावना, नृत्य, खेलकूद, विशिष्ट ध्यातव्य, मनोसामाजिक विकृति, मनोसामाजिक विकृतियो को दूर करने हेतु अभ्यास, मनोसामाजिक विकृतियो का शोधन, मार्गान्तरी-करण एव शमन, प्रमुख मनोसामाजिक मनोविकृतियाँ, प्रमुख खेल एव शारीरिक अभ्यास, सामाजिक मूल्यो का विकास, भावात्मक समजन एव शारीरिक अभ्यास, बौद्धिक विकलागता और शारीरिक अभ्यास, सामाजिक विकति एव व्यायाम ।

V विशिष्ट सुझाव

सुझाव, विकलाग परिचय-पत्र, शारीरिक अभ्यास क्रियाओ का शोधन, विकलाग एव शारीरिक अभ्यास, क्रिया और निद्रा, नीद—नीद की उपयोगिता, नीदकी मात्रा एव समय सन्तुलन, विभिन्न विकलागावस्थाएँ एव सन्तुलन अभ्यास, शारीरिक अभ्यास क्रियाओ द्वारा विकलागो मे अपेक्षित परिवर्तन, सार सक्षेप ।

VI छात्रवृतियाँ

भारत सरकार द्वारा विकलाग छात्रवृत्तियाँ, उद्देश्य, क्षेत्र, परिभाषा, अवस्था, ध्यातव्य, आवेदन-पत्र प्रारूप, घोषणा-पत्र, आवेदन-पत्र, व्यय, सलग्न ।

VII विकलाग शिक्षा और अनवर्ती कार्यक्रम

अभिप्राय, अनुवर्ती कार्यक्रम का दायित्व, आधार, अनुवर्ती कार्यक्रम की

श्री हेलन केलर
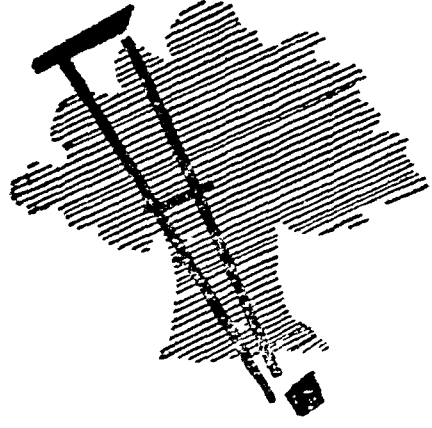
१. विकलांग शिक्षा दर्शन

याभि शचीभिर्वृषणा परा वृज प्रान्ध

श्रोण चक्षस एत्वे कृथ ।

याभिर्वर्तिका ग्रसितामममञ्चत ताभिरूपु

ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

(ऋक् १. ११२ ८)

समाज मे जो भी अन्धे, अपाहिज, लूले–लगडे या विकलाग है वे तिरस्कार एव घृणा के पात्र नही हैं । हमे उनके साथ मानवीय व्यवहार करना चाहिये ।

……——————और यह मानवीय व्यवहार है, उन्हे शिक्षित करना

(चन्द्रपति)

I विकलांग एवं अपवादी बालक

न पि जानामि यदिवेदमस्मि निण्य सन्नद्धो मनसा चरामि।
यदा भागन्प्रथमजा ऋतस्या दिद्वाचो अश्नुवे भागमस्या ॥
(ऋक् १/१६४/३७)

(व्यक्ति अपने आप को भी नही जानता। हम स्वय को भी न पहचाने, यह कितनी भयकर भूल है। मनुष्य को भाषा, साहित्य एव अन्य विद्या (ज्ञान) की जो क्षमता प्राप्त है उससे शरीर और जीवात्मा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अर्थात् यह देह चाहे विकलाग ही क्यो न हो उसे जानकर व्यक्ति मानव समाज के और अपने कल्याण हेतु इस शरीर को कार्य मे प्रवृत्त रखे—यही शिव है।)

सिन्धु की उत्ताल तरगो मे समाई गर्जन, उन्नत उठान, उसका गाम्भीर्य एव व्यापक मौन, गिरिराज हिमालय के उत्तु ग शिखरो से झाँकती दृढता एव गुरु-गरिमा, व्योम मे वारिद समूह को ढोती बलाका-पाँति, प्रकृति का अल्हड यौवन, मृग-शावक का कुलाचे भरना, मन्द समीर मे तरगित होता निर्झरो का सगीत, लता, पल्लव, एव पुष्पो की इन्द्र-धनुषी चादर, तो कही रेगिस्तान मे उष्णता की खौलती बयार के थपेडो मे मुस्काते हुए इक्के-दुक्के शमी (खेजडी) वृक्ष, उषा-वेला मे पक्षियो का कलरव, अगडाई लेते खेत—दर्शन मात्र से ही मनुष्य मे अद्भुत कल्पना एव दिव्यानन्द का सृजन कर देते है। यही से प्रारम्भ होता है प्रकृति, आत्मा, परमात्मा और सृष्टि के सम्बन्धो पर चिन्तन। "वातावरण व्यक्ति को अपने मे कुछ इस प्रकार से लील लेता है कि व्यक्ति अपने सम्पूर्ण व्यवहार को स्वय एव वातावरण मे ऐक्य स्थापित कर साक्षात्कार करने लगता है। वह जीवन के समस्त कार्यकलापो का केन्द्रस्थल ढूँढने लगता है। अपने अन्तर सत्य को वातावरणीय सत्य के साथ जानने के प्रयास मे प्रयत्नशील रहता है।" चन्द्रपति के इस कथन से स्पष्ट है कि पर्यावरण ही व्यक्ति मे दर्शन-विषयक जिज्ञासा उत्पन्न करता है।

दर्शन

सिन्धु-तट पर रहने वाला, सिन्धु के विराट-स्वरूप, गर्जन, तर्जन, ज्वार-भाटा, एव उससे सम्बन्धित अन्य पर्यावरणीय अवस्थाओ मे सीधा प्रभावित न हो, यह सर्वथा असम्भव है। अत यह एक सहज जिज्ञासा है कि व्यक्ति अपने वातावरण से परिचित होने के लिए सदैव सचेष्ट रहता है एव स्वय की स्थिति, कार्य, योगदान आदि के माध्यम से वह वातावरण से तादात्म्य स्थापित कर अपने अस्तित्व की उपयोगिता सोचने लगता है। यही वह स्थिति है जहाँ कभी वह आश्चर्य मे, तो कभी भय या उत्साह मे डूबता-उतराता रहता है। उसे अपने अन्दर भी एक और सृष्टि दिखाई देने लगती है। इस दृश्य-सृष्टि से परे भी एक अदृश्य-सृष्टि, जहाँ से ईश्वर सम्पूर्ण सृष्टि का नियामक, पालक, सर्जक और हरता अनुभव होता है। कभी उसे प्रकृति भी कार्य-कारण सम्बन्धो के माध्यम से सक्रिय दिखाई पडती है। इस प्रकार एक ओर दर्शन सामान्य विचार और व्यवहार को अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है, तो दूसरी ओर ब्रह्माण्ड और उसमे मानव जीवन का चिन्तन भौतिक एव आध्यात्मिक अनुभूतियो के स्वरूप का विवेचन और आत्मा-परमात्मा की खोज करता है।

दर्शन का अर्थ

शाब्दिक अर्थ मे "दर्शन" सस्कृत की 'दृश्' धातु मे 'ल्युट्' प्रत्यय के योग से बना

शब्द है। अत "दर्शन' शब्द की सुस्पष्ट व्याख्या हुई—

"दृश्यते अनेन इति दर्शनम्"

अर्थात्— 'जिससे देखा जाए'। इस अर्थ मे ज्ञान-ग्रहण मे चाक्षुष स्थिति की महत्ता दर्शन के व्यावहारिक अर्थ के निकट है। आग्ल भाषा मे 'फिलॉसफी' शब्द 'दर्शन' का बोध देता है, यूनानी शब्द 'फिलास' (अनुराग) एव 'सोफिया' (ज्ञान) के योग से निर्मित इस शब्द का अर्थ हुआ—"ज्ञानानुराग"। प्रयोग की दृष्टि से दर्शन एव फिलासफी पर्यायवाची शब्दो के रूप मे प्रचलित भले ही हो, परन्तु अपने अर्थ-विस्तार मे दोनो शब्दो मे अन्तर है। फिलासफी ज्ञान के लिए अनुराग की एक मात्र भावात्मक स्थिति है, जबकि दर्शन अपने भौतिक स्वरूप मे "दृश्यानुराग" होते हुए भी 'ज्ञान', कर्म और भावना के पक्षो का समन्वित रूप है।

ज्ञान-ग्रहण की स्थिति हो या कौशल का विकास, दोनो ही अवस्थाओ मे ज्ञानेन्द्रियो एव कर्मेन्द्रियो का सचेष्ट रहना भावना पक्ष पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दो मे—दृश्य के प्रति अनुभूतियाँ इतनी गहरी पैठती जाए कि व्यक्ति क्यो, क्या, कहाँ, कौन जैसे प्रश्नो के उत्तर स्वय मे खोजने लगे—दर्शन है।

साधारण व्यक्ति के समान अपवादी या विकलाग मे भी जिज्ञासा, आश्चर्य एव सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति जागृत रहती है। वह श्रवण, मनन एव निदिध्यासन के माध्यम से प्रकृति, ब्रह्म तथा आत्मा की एकता के मूल मे "ब्रह्माण्ड" एव "पिण्डाण्ड" के ऐक्य को अनुभव करने लगता है, "जो ब्रह्माण्डे सोइ पिण्डे", "जो खोजे सो पावै" के रूप मे ब्रह्माण्ड मे अपना तादात्म्य देखने लगता है। यही "आत्म-दर्शन" भारतीय मनीषियो के जीवन का निचोड है।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्य

मनु एव याज्ञवल्क्य स्मृतियो मे "सम्यक् दर्शन" का अभिप्राय जगत मे आत्मा का दर्शन ही है। सुदूर वैदिक काल से प्रवाहित अविराम चिन्तन-धारा आत्मदर्शी, तत्वज्ञ मनीषियो द्वारा नित नूतन परिवेश मे आत्मोन्मुखी है, जिसे इतिहास के परिवर्तित होते पृष्ठ-प्रभावी न कर सके।

समाज का विकलाग वर्ग हो या सकलाग, भारतीय तत्त्वज्ञ नैराश्य मे आशा के सचार हेतु, अकर्मण्यता से परे, विशुद्ध कर्मठता एव कार्य कुशलता की ठोस सृष्टि का निर्माण कर, जन-जीवन को आत्मनिर्भर बनाते हैं। यही उनका दर्शन है।

दर्शन का प्रतिपाद्य विषय

"सघर्ष लोक-जीवन मे सर्वतोव्याप्त है, अत विभिन्न लक्ष्यो की सिद्धि हेतु मानव सतत प्रयत्नशील है। उसकी इस कार्य-निर्वहन क्षमता के पीछे विचारो की एक श्रृङ्खला है, जो दृश्य या अदृश्य जगत विषयक धारणाओ के अनुरूप प्रतिष्ठित होती है।" चन्द्रपति के इस कथन का आधार गीता का यह श्लोक हो सकता है—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्ध स एव स ॥

(गीता १७/३)

(अर्थात्—प्रत्येक प्राणी अपनी श्रद्धा के ही अनुरूप होता है या जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वह वैसा ही होता है।)

लक्ष्य परमार्थ साधना हो या भौतिक समृद्धि, जब व्यक्ति अनन्त मे अपने को खोजने लगता है—वह 'ज्ञातु इच्छा' विचार शक्ति के सहारे नैसर्गिक प्रवृत्तियो के वशीभूत पशु-जीवन से ऊपर उठकर तत्त्व और मूल्यो की ओर प्रवृत्त होता है। यह ऊर्ध्वोन्मुखी प्रवृत्ति ही दर्शन का उद्गम स्थल है।

साधारण मनुष्य हो या अपवादी या विकलाग, आधिभौतिक, आधिदैविक एव आध्यात्मिक अवस्थाए उन्हे किसी न किसी रूप मे प्रभावित करती ही है। भारतीय दर्शन त्रिविध ताप से मुक्ति का मार्ग दर्शाता है। महात्मा बुद्ध ने सर्वदु खम्, दु ख समुदय, दु.ख निरोध, दु ख-निरोधगामिनी प्रतिपद् (चार आर्य सत्य) प्रतिपादित किये। ससार को दु खमय कहकर बुद्ध ने दु ख को ही मानव-मुक्ति का प्रेरक कहा है। दु ख किसी को भी प्रिय नही, पर दु ख-व्यथित महात्मा बुद्ध की दृष्टि मे फिर भी निसर्गत मानव दु खी है, नि श्रेयस की प्राप्ति हेतु उसका प्रयत्नशील होना स्वाभाविक है। दूसरी ओर जीवन के निर्णायक सूत्र, जन्म-मृत्यु, सुख-दु ख, प्रिय-अप्रिय आदि अवस्थाए व्यक्ति के जीवन मे प्रतिपल घटित हो रही है। मनुष्य अनेकानेक घटनाओ, दृश्यो, रूपो, पदार्थो आदि के मूल मे व्याप्त व्यक्त-अव्यक्त सम्बन्धो मे समन्वय की टोह लेना चाहता है, ताकि 'स्व' इतना विकसित हो सके, जिसमे अनन्त दृश्य समाविष्ट हो प्रत्यक्ष हो जाए, दूसरी ओर 'स्व' सर्वत्र प्रकट हो सके। यही दर्शन, और दर्शन का विषय है।

अष्टावक्र का चित्र

आत्मान विद्धि

ऋषि-श्रेष्ठ अष्टावक्र, जिनके शरीर की अस्थियाँ आठ स्थानों पर विकृत थी, का सम्पूर्ण चिन्तन बचपन से ही आत्मा एव ब्रह्म के ऐक्य को प्रतिष्ठित करने मे ही केन्द्रित रहा। राजा जनक जैसे महान् विद्वान् को अपने ज्ञान बल के सहारे हतप्रभ कर देना, जनक का ज्ञान-पिपासु बन ऋषि अष्टावक्र की शरण मे आना और फिर विदेह कहलाना, इन सब के पीछे सबल और सुडौल देहयुक्त कोई ऋषि नही, अष्टवक्री देहयुक्त ऋषि-श्रेष्ठ है, जिसने ज्ञान के समक्ष भौतिक देह के सौन्दर्य को गौण ही नही अर्थहीन कर दिया। 'आत्मन विद्धि' के महान् आदर्श की प्रतिष्ठा ही यह बतलाती है कि विकलाग 'स्व' के प्रति नैराश्य एव हीन भाव को त्यागे, अपने को जाने अपनी क्षमताओं का प्रयोग करे। अष्टावक्र का जीवन विरूपण पर ज्ञान की विजय का प्रतीक है। "घट ही खोजो भाई" के मार्ग का अनुसरण कर ही व्यक्ति दु खो का आत्यन्तिक विनाश करने मे सक्षम ह। यही कारण है कि दर्शन वस्तु के बाह्य स्वरूपो की विविधता मे आतरिक सूक्ष्मताओ का अध्ययन कर अनुस्यूत एकता के अन्तस्तल मे आत्मज्ञान की झलक को "सर्वतोभावेन" प्रतिष्ठित कर सका है। सुरेन्द्र का कथन है कि "सम्पूर्ण सृष्टि सम्पदा मे श्रेष्ठ आत्मा ही है।" यह अमर सन्देश मैत्रेयी की जिज्ञासा–शमन–हेतु महर्षि याज्ञवल्क्य ने प्रकट किया। "आत्मा को प्रत्यक्ष करो" भारतीय दर्शन एव धर्म की आधार भित्ति है।

"आत्मनो वा अरे दर्शनेन, श्रवणेन, मत्या, विज्ञानेनेद सर्व विज्ञात भवति।"
(बृहदारण्यक उपनिषद् २–४-५)

श्रवण, मनन एव निदिध्यासन से इसे जानने वाले जानते है कि "दर्शन कर्म की भूमि पर जीव की बहिर्मुखी प्रवृत्तियो को अन्तर्मुखी बनाता है।" सुरेन्द्र की इस दृष्टि मे आत्मा से मिलन का ही निरूपण है। इसी माध्यम से प्राणी विश्व के स्थूल एव सूक्ष्म पदार्थों का अनुभव कर, दु ख से निवृत्ति हेतु प्रयत्नशील रह, घोर अन्धकार मे भटकने से बच जाता है।

भारतीय दर्शन अपने सर्वव्यापी रूप मे

डॉ० भगवानदास का कथन है कि जो "सासारिक एव पारमार्थिक, दोनो ही सुखो को साधने का मार्ग दिखलाए वही सच्चा दर्शन है और यही दर्शन का प्रयोजन है।" "ब्रह्म कोई अलभ्य वस्तु नही है, प्रत्युत प्राणी आत्मा की सत्ता का सहज ही अपने मे अनुभव करता है, भाग्य और भगवान के आश्रित जीवन से विमुख विकलाग व्यक्ति 'आत्मन स्वरूपेणावस्थिति मोक्ष' को ग्रहण कर सकता है।" (प० कन्हैयालाल शास्त्री)। स्वानुभूति की प्राप्ति निमित्त त्रिविध साधन श्रवण, मनन, निदिध्यासन को ही भारतीय मनीषी अन्तिम उपाय बताते है।

डा० राधाकृष्णन् व्यक्ति की त्यागपूर्वक भोग के साथ-साथ लोक-सेवोन्मुखी प्रवृत्ति की ओर विकसित होने की अवस्था मे दृढ विश्वास रखते है। यही स्थिति ईशवास्योपनिषद् १।१ मे स्पष्ट है।

ईशावास्यमिदꣳसर्व यत्किञ्च जगत्या जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध. कस्यस्विद्धनम्॥

औपनिषद् दर्शन

ऋषिकुलो मे सुदीर्घकाल तक साधना-रत तत्त्व-दर्शी ऋषियो ने शान्त एव नीरव वातावरण में कालजयिक सृष्टि का सृजन ही नही किया, अपितु जनजीवन को राग-द्वेष, आधि-व्याधि एव विपदाग्रस्त स्थिति से उबार कर—

"ऋते ज्ञानान्न मुक्ति."

का दिव्य सन्देश दिया। औपनिषद दर्शन सृष्टि को अन्धकाराच्छादित नही वरन् अस्मिता अविद्या एव अज्ञान-तिमिर-मय, ऐसा निरूपित करते है। विद्या (ज्ञान) ही सशय और क्लेशो को नष्ट करके जीवन को सुखी एव सुमति-सम्पन्न करती है। दृश्य सृष्टि मे व्याप्त आत्मिमूलक घटनाओ एव व्यक्ति मे निहित नानात्मक प्रपञ्च वृत्तियो के अन्तःस्थल से समन्वय एकता की एकरूपता के रहस्य को ढूँढ निकाला। वस्तुत उपनिषद् सत्य के परमतत्त्व को अनेक पक्षो मे सिद्ध कर व्यक्तित्व एव विश्व का पथ मगलमेय करते है।

छान्दोग्य उपनिषद् मे "सदेवेदमग्र आसीत्" ऋषि उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को इसी परमतत्त्व का उपदेश दिया था।

वाचारम्भण विकारो नामधेय मृत्तिकेत्येव सत्यम्।

(छान्दोग्य उपनिषद् षष्ठ प्रपाठक १–४)

(अर्थात्—मिट्टी ही सत्य है, मिट्टी से बने पदार्थ मिट्टी के विकार है—जो विभिन्न नामो से जाने जाते है।)

सम्यक् दर्शन और विकलाग

मनु ने सम्यक् दर्शन के सिद्धान्त को प्रत्येक प्रकार के प्राणी निमित्त, चाहे वह अन्धा सूर हो या अपवाद स्वरूपा मीरा, प्रतिष्ठित किया है। सम्यक् दृष्टि सम्पन्न मानव कर्म-बन्धन मे भ्रमित नही होता इससे वासना भेद, बुद्धि एव सशय नष्ट हो जाते है।

आत्मा और विश्व रूप का सम्यक् दर्शन ही मनु ने अमरत्व का कारण दर्शाया है—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिन निबध्यते।
दर्शनेन विहीनस्तु ससारं प्रतिपद्यते॥

सामाजिक जनजीवन का जितना मार्ग-दर्शन भारतीय ग्रन्थकारो ने किया है, उतना और किसी ने नहीं। जिज्ञासु राजा जानश्रुति अपने सारथी से कहता है—"गाडीवान आप्त (रुग्ण) ऋषि रैक्व को महलो मे नही, झोपडियो मे ढूँढो।" रुग्ण शरीर व्यक्ति की शासन द्वारा खोज से तात्पर्य है, रैक्व ऋषि का प्रबल ज्ञान-पक्ष जो विकलागावस्था से हटकर अलग ही उभरा है। "ज्ञान, कर्म एव भावना का निखार समाज के समुचित वृत्त मे ही सम्भव है। व्यक्ति समाज से भिन्न नही है, व्यक्ति का विकास समाज का ही विकास है।" (प० फकीरचन्द कौशिक) यह विकास कर्म पर ही आश्रित है।

आज विकलाग शिक्षा दर्शन मे मौलिक परिवर्तन आ चुका है। विकलाग शिक्षा को लेकर उभरने वाले प्रश्न-चिह्न सामाजिक दया के क्षेत्र से नही, अपितु व्यक्ति मे स्वावलम्बन या स्वाश्रयिता के पक्ष को लेकर उठे हैं, जहाँ व्यक्ति गर्व से अपने को समाज का अग कह सके। भारतीय चिन्तको ने सम्भवत सबके लिए सम-व्यवस्था की हो, परन्तु "कालान्तर मे विकलाग समाज की दया पर चलने वाला प्राणी असहाय समझा जाने लगा, एव स्वय विकलाग ने भी अपने को भाग्य या पूर्व-जन्म का भोग भोगने तक सीमित कर लिया था

या फिर अप्रत्यक्ष किन्ही दुष्कर्मों का दण्ड है, जिसके परिणामस्वरूप यह अवस्था है।" (ओम-प्रकाश गौड)।

इसी प्रसग मे अश्वपति द्वारा वैश्वानर का अध्ययन "विश्व-नर (वृहत् समाज) मानव मात्र की ही प्रतिष्ठा है, जिसमे ऋषि अष्टावक्र, रुग्ण गाडीवान रैक्व, अन्धा सूर, लुई ब्रैल, हेलन केलर आदि सभी तो समाज की श्रद्धा और आस्था के पात्र है। ये वे महामानव हैं, जिन्होने समाज से क्या लिया है? इसका सीधा-सा उत्तर है—"कुछ नहीं" परन्तु इन्होने समाज को इतना अधिक दिया कि समाज के पास इसका लेखा-जोखा नही है।

..... और इन सबसे आगे बढकर समाज ने इन महानुभावो को क्या लौटाया है? इसका उत्तर भी समाज के पास न हो, फिर भी एक नई चेतना का उदय इस क्षेत्र मे साकार हुआ है। अथवा ऋषि के शब्दो मे यह तभी सम्भव हो सकता है जब व्यक्ति अपनी वर्तमान अवस्था से ऊपर उठे।

उत्क्रमात पुरुष माव पत्था मृतयो पड्वीशमवमुञ्चमान ।
माच्छित्था अस्माल्लोकाद्दग्ने सूर्यस्यसद्दश ।।

(अथर्व ८।१।४)

हे पुरुष, तू अपनी वर्तमानावस्था से ही सन्तुष्ट न रह, तू आगे बढ एव शरीर तथा आत्मबल के द्वारा पुरुषार्थ सम्पन्न कर।)

यही वह वेदवाक्य है, जो अष्टावक्र, सूर, लुई ब्रैल, हेलन केलर, मीरा आदि की आत्मा मे सजग है। विकलागो की अन्तर्दृष्टि मे यह समा जाना चाहिए कि पुरुषार्थ ही व्यक्ति को उन्नत बनाता है।

विकलाग शिक्षा दर्शन

याभि शचीभिर्वृषणा परा वृज प्रान्ध,
श्रोण चक्षसएतवे कृथ ।
याभिर्वर्तिका ग्रासितामपञ्चतं ताभिरुषु,
ऊतिभिरश्विना गतम् ।।

(ऋग् १।१२।२।८)

(सृष्टि मे जो भी अपग, अन्धे, लूले, लगडे, बहरे आदि है—वे समाज मे घृणा के पात्र नही, हमे उनके साथ सहृदयतापूर्वक मानवता का व्यवहार करना चाहिए। अर्थात् समाज विकलागो के प्रति सद्भाव रखकर उन्हे पुरुपार्थी और शिक्षित बनाये।)

ऋग्वेद के इस कथन के साथ विकलाग शिक्षा की एक सुदीर्घ परम्परा परिलक्षित होती है। समाज का विस्तृत विवेचन, अपाहिजो के प्रति सद्भाव की दृष्टि, उनके साथ मानवीय व्यवहार का सदेश वेदकालीन समाज का उत्कृष्ट स्वरूप है।

"प्रकृति और पुरुष के हाथो समय न जाने कितनी बार विजित और पराजित हुआ, परन्तु मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा के लिए समाज सदा सघर्परत रहा है।" प्रसिद्ध पत्रकार रवीन्द्रनाथ वशिष्ट के इस कथन मे व्यक्ति की सत् और असत् प्रकृति का स्पष्ट उल्लेख है, उसके श्रम और आलस्य, स्वार्थ और परमार्थ, विनाश और निर्माण की कहानी है।

ऋणात्मक दृष्टि से अपवादी एवं विकलाग समाज का वह वर्ग है, जिसके जीवन-दर्शन मे परिवर्तन आना चाहिए। 'भाग्य के खेल' कहकर अपने को निश्चेष्ट और पराश्रित समझने वाला यह वर्ग दाता और भगवान के लिए बोझ बन चुका है। विज्ञान के इस युग ने समय, शक्ति और परिणामो का विकास जिस द्रुत-गति से किया है, उसका प्रयोग इस वर्ग के लिए मुक्त हो जाना ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के हित मे है। बढते भाव और विकसित जीवन, मूल्यो के साथ उस दृष्टि मे भी परिवर्तन अपेक्षित है कि विकलाग अपने शेष स्वस्थ अगो की सहायता से स्वावलम्बी जीवन दर्शन विकसित करे, अपने निश्चेष्ट अगो को वैज्ञानिक उपकरणो की सहायता से गति दे एव दैनिक कृत्यो से लेकर मानव कल्याण तक के क्षेत्र मे उनसे कार्य करें। बालगोविन्द तिवारी की दृष्टि मे "विकलाग स्वय यह भलिभाँति जान लें कि सत्यात्मक दृष्टि से कार्य या उत्पादन का कितना परिणाम निकलता है यह उतना अर्थ-पूर्ण नही है जितना कि किसी भी कार्य मे विकलाग की योगदानपूर्ण भूमिका। उसे यह अनुभूति होनी ही चाहिए कि इस समाज और राष्ट्र के विकास मे उसका भी एक अश है। समय-समय पर राष्ट्रीय शिक्षा नीतियो के माध्यम से एक स्वर बराबर उभरा है, विकलागो को दूसरो की दया पर निर्भर रहना छोडकर अपने अधूरे अगो को यन्त्रो की सहायता मे उपयोगी बनाना चाहिए। श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने राष्ट्रीय शिक्षाष्ट्र नीति को स्पष्ट करते हुए शिक्षा के विस्तृत प्रभाव की चर्चा की इसमे सभी प्रकार के बालक आ गये। इसी को ध्यान मे रखते हुए विकलागो के लिये कहा जा सकता है— "विकलाग भी अपने लिए उपयुक्त व्यवसाय चुने।" ' पाठ उनके जीवन, वातावरण और परिज्ञान से सम्बद्ध हो। कार्यानुभव भी बच्चे की समझ और वतावरण से जुडा हुआ हो।" (इन्दिरा गाँधी)

विश्व स्तर पर होने वाले शिक्षा-सम्मेलनो से एक ही बात प्रकट हुई है कि बढती जनसख्या, परिवर्तित होते जीवन-मूल्यो का एकमात्र आधार ही आत्म-निर्भरता है। व्यक्ति, राष्ट्र या समाज, चाहे वे किसी भी अवस्था मे हो, दूसरो पर निर्भर रहकर जीवित नही रह सकते। आज समग्र जीवन-दर्शन अपने को नये रूप मे ढाल चुका है। आर० के० मिश्रा का कथन है कि "विकलाग एक मात्र विज्ञान देवता की उपासना करे तो उन्हे किसी प्रकार का अभाव न होगा। विज्ञान तो मात्र सकेत पर ही व्यक्ति को धन-धान्य से परिपूर्ण कर देना चाहता है।" वास्तविकता भी यही है कि विज्ञान ने जन-शक्ति का सीधा उपयोग बहुत कर दिया है, अत विकलाग इस तथ्य को पहचानें एव अपने जीवन-दर्शन मे परिवर्तन करे। विश्व मे शिक्षा सर्वाधिक विचार-विमर्श का विषय है।

* "शिक्षा बच्चे के व्यक्तित्व का सर्वतोमुखी विकास करे, उसे अधिक निरीक्षण-शील बनाये, उसमे सहकारिता और पर-दु ख कातरता की भावना भरे तथा उसमे यह योग्यता पैदा करे कि वह निरीक्षण से प्राप्त ज्ञान का दैनिक-जीवन मे प्रयोग कर सके।" (इन्दिरा गाँधी)

---

* (तारांकित) उद्धरण, (श्रीमती) इन्दिरा गाँधी के विज्ञान-भवन मे ६ मार्च, ७६ को अखिल भारतीय जिला शिक्षा अधिकारी सम्मेलन दिल्ली मे दिये भाषण से हैं (अप्रैल, ७६ शिविरा पत्रिका से आभार)।

विकलाग एव समाज

शिक्षा एव समाज दो ऐसे तत्त्व है जिनका स्वरूप-विश्लेषण हम अपनी इच्छा से चाहे जैसा करे, या करते रहे हो, परन्तु ईश्वर एव प्रकृति की ओर से सर्वत्र विकास की समानता है। समाज मे जहाँ भी अन्तर्भेद, विषमता, वर्ग-भेद एव सम्प्रदाय के घेरे है, वहाँ ये सभी मनुष्य के अपने स्वार्थों की उपज है। ठीक यही अवस्था शिक्षा की भी रही है। भारत मे एक समय शिक्षा का घेरा इतना सिमट आया कि वर्ग विशेष ही शिक्षा का अधिकारी रह गया था। प्रजातन्त्र के इस युग मे जहाँ समानता, स्वतत्रता, भ्रातृत्व एव न्याय के साथ व्यक्ति के अधिकार और कर्त्तव्यो का क्षेत्र समाज के मस्तिष्क मे स्पष्ट हो रहा है, वहाँ शिक्षा को उससे अलग नही रखा जा सकता। तात्पर्य यह है कि प्रजातन्त्र ने जहाँ सर्वोत्तम जीवन व्यवस्था प्रदान की है वहाँ समाज के सोचने के ढग को भी प्रभावित किया है।

परिवर्तित होते मूल्य विकलाग एव समाज

समाज किसी भी प्राकृतिक एव अप्राकृतिक प्रकोप मे अलग-अलग बैठा नही रह सकता। "प्रकोप से प्रभावित व्यक्ति अपने किये का फल भुगत रहे है, या इनके भाग्य मे ही ऐसा है, 'समाज क्या करे ?" ऐसा कहकर आज का समाज अपने को उस उत्तरदायित्व से मुक्त नही कर सकता है, जहाँ समाज का एक वर्ग अपने को दूसरे की दया पर निर्भर माने या समाज पर भार बना अपना जीवन येनकेन-प्रकारेण व्यतीत कर दे। सडको, गलियो, सार्वजनिक स्थलो पर हाथ फैलाये अपग बालक-बालिकाएँ, किशोर-किशोरियाँ, युवक-युवतिया, वृद्ध-वृद्धाएँ, प्रात से साँय तक भर-पेट रोटी पाने मे असमर्थ रह कर भी किसी आशा के सहारे यन्त्रणा, ताडना, दुत्कार, भूख और प्राकृतिक प्रकोपो के मध्य अभावो का जीवन जीने को बाध्य है। यदि कभी इन लोगो की ओर देखे तो पायेगे कि इनमे से अधिकाश की रुखी आखो मे जहाँ याचना है, वहाँ एक प्रश्न भी है "हम दो रोटी पाने और इस अपाहिज देह को जीवित रखने के लिये कितना श्रम करते है ? कितनी भर्त्सना और अपमान सहते है ? क्या यह सम्भव नही है कि हमारी देह जैसी भी है, हम उसका पूर्ण उपयोग कर सके, इसी अवस्था मे इस जीवन को जीने योग्य बना कर समाज मे सम्मान से रह सके ?"

विकलाग शिक्षा — एक पृष्ठभूमि

सूरदास की सज्ञा भारत मे आज भी नेत्रहीनो के लिये प्रयुक्त होती है, यद्यपि इनमे अच्छे सगीतज्ञ, विद्वान् एव साधक हुये है। स्वामी शरणानन्द (प्रज्ञाचक्षु) भारत के गिने-चुने तप मनीषियो मे से एक हाल ही मे हो चुके है जिनके प्रवचन सम-सामयिक एव सामाजिक पृष्ठ-भूमि पर आधारित होते रहे है। सोचने के दृष्टिकोण मे परिवर्तन ने स्पार्टन शिक्षा की इस विचारधारा को कि शारीरिक सुगठितता या हृष्ट-पुष्ट शरीर ही अच्छी ज्ञान-शक्ति का कारण होता है, समय से परे कर दिया। वर्तमान ने इन सम्भावनाओ का सूत्रपात्र किया है कि प्रत्येक व्यक्ति (विकलाग) अपनी शेष क्षमता का समुचित उपयोग कर सकता है एव यह प्रशिक्षण और साधन से सम्भव है। विकलाग अन्य प्राणियो की ही भाँति समाज के अग है। वर्तमान स्पूतनिक युग से सम्पूर्ण विश्व मे तेजी से परिवर्तन हुआ है। मान्तेसरी शिक्षण-पद्धति का विकास मन्द-बुद्धि बालको

से ही सम्भव हो सका है। प्राचीनकाल मे शिक्षा का क्षेत्र इतना व्यापक नही था जितनी व्यापकता वर्तमान ने उसे दी है। भोजन, वस्त्र एव आवास की ही भाँति शिक्षा भी मूलभूत आवश्यकताओ मे सम्मिलित हो चुकी है। ऐतिहासिक परिवेश मे विकलागो को अब तक तीन अवस्थाओ से निकलना पडा है।

प्रथमावस्था—सामान्यत विकलाग समाज मे उपेक्षित, पीडित और दुर्व्यवहार का जीवन जीते थे। ईश्वरीय कोप एवं सामाजिक घृणा ने इस वर्ग को धार्मिक स्थलो पर भीख माँगने के अतिरिक्त कोई मार्ग नही दिया।

द्वितीयावस्था—शिक्षा के उदय और विकास के साथ-साथ समाज मे विकलाग दया के पात्र समझे जाने लगे। सम्पन्न और शक्तिशाली लोगो ने धर्म या यश के लिये सदावर्त जैसी व्यवस्था उनके लिये की। भारत मे प्राय धार्मिक स्थलो, तीर्थों एव मेलो पर विकलाग रहने लगे। धार्मिक एव समाज-सेवी जनता के प्रश्रय से इस वर्ग मे आत्म-निर्भरता की भावना का जन्म नही हो सका। अवाछित सामाजिक तत्त्वो ने इस वर्ग का शोषण किया जिसमे यह वर्ग तस्करी, काला बाजारी एव अपराधी प्रवृत्ति मे प्रवृत्त होकर समाज के सामान्य जीवन मे सिर दर्द बन चुका है।

वर्तमानावस्था—विश्व-स्वास्थ्य-सगठन, रेड-क्रास, विश्व-धर्म-सघ एव मानव कल्याण की दृष्टि से नियोजित सस्थाओ ने विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ जहाँ अपने सेवा-क्षेत्र का विस्तार किया वहाँ प० फकीरचन्द कौशिक के शब्दो मे एक बात भी प्रकट हुई "मनुष्य कब तक अपाहिजो को अपनी दया पर आश्रित रख सकता है? यह धर्म के नाम पर शोषण है, जहाँ पगु मे अपनी शेष स्वस्थ्य अवस्था के प्रति भी पगु भावना उत्पन्न कर उसे पूर्णत पगु बना दिया जाये, जिससे इस वर्ग को समाज मे घृणा-युक्त पराश्रित जीवन जीने को बाध्य होना पडे। शिक्षा के उज्ज्वल पृष्ठो पर यह काले धब्बे है। समय की माँग है कि हम विकलागो को स्वावलम्बन का पाठ सिखाएँ, उनका विश्वास उनके स्वस्थ अगो से प्रकट करें। आज समाज मे विकलाग शिक्षा का सूर्योदय हो चुका है।" यह है वह दृष्टिकोण जो वर्तमान मे विकसित हो रहा है।

साधारण विद्यालयो मे प्राय एक दो विकलाग छात्र अपने पारिवारिक प्रभाव से शिक्षा ग्रहण करने आ जाते है जहाँ वे सामान्य बालको से प्रतिस्पर्धा तक करते प्रतीत होते है। शिक्षा एव समाज के इतिहास मे यह एक क्रान्तिकारी परिवर्तन है। आर्थिक प्रावधान की दृष्टि से चाहे शिक्षा राज्य का विषय रही हो या समाज का अग, प्राचीनकाल मे स्वतन्त्र रूप से कोई व्यवस्था नही थी। १६वी शताब्दी के आरम्भ होते-होते कुछ पश्चिमी देशो मे अन्धो और बहरो के लिये आवासीय सस्थाओ का समारम्भ हुआ। इन आवासीय विद्यालयो मे अपस्मारी (मिर्गीवाले) अनाथ, विमन्दित, अन्धे, बहरे या अन्य इसी प्रकार के व्यक्ति रखे जाते थे। यहाँ प्रशिक्षण इतना महत्त्वपूर्ण नही समझा जाता था जितना कि समाज-सरक्षण। प्राय यह केन्द्र विकलागो के लिये एक व्यवस्था ही प्रदान करते थे। दूसरे शब्दो मे, इन्हे अनाथाश्रम की सज्ञा दी जा सकती है, जहाँ आधे भूखे रह कर या रुग्णता मे वे मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे।

ब्रिटिश साम्राज्य ने भारत मे पब्लिक स्कूल व्यवस्था को जन्म दिया। इन विद्यालयो मे विशिष्ट सम्पन्न परिवारो मे उत्पन्न असामान्य बालक भी प्रवेश पाने लगे। दूसरी ओर अनिवार्य शिक्षा आन्दोलन ने भी जनसाधारण को विकलागो की शिक्षा की ओर आकृष्ट

किया । परिवर्तित जीवन-स्तरो ने आर्थिक-मूल्यो को प्रभावित किया । आज एक नई अर्थ दृष्टि का विकास हो रहा है अत प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह विकलाग हो, अपनी अधिकतम क्षमता का उपयोग अवश्य करे । बूफ्ट जैसे विद्वानो का मत है कि मनोविज्ञान सामान्य मानव मस्तिष्क अवस्था मे सम्बन्ध रखता है । इस दृष्टि से कक्षा के वातावरण मे भी असामान्य बालक शिक्षा ग्रहण कर सकते है । आवश्यकता पडने पर विशेष कक्षा की भी व्यवस्था की जा सकती है । यह कहना कि इससे विकलाग अवस्था बालक पर किसी प्रकार का दबाव पडेगा अपना औचित्य नही रखता । वैयक्तिक विभिन्नता यथावत् समाज मे है, विद्यालय उसी का प्रतिनिधित्व करते है ।

पूर्व काल मे ही विकलागावस्था ने विकलाग मे दैन्य एव समाज मे दया भाव को विकसित किया । परन्तु ज्यो-ज्यो विकसित वैज्ञानिक सन्दर्भो मे विकलागो का स्वतन्त्र इकाई के रूप मे अध्ययन होता गया तो पाया कि जब विज्ञान शरीर के आन्तरिक अगो, यथा-गुर्दे (किडनी) फेफडे-हृदय आदि को कृत्रिम अगो से परिवर्तित कर प्राकृतिक अगो की ही भाँति उनमे जीवनी-शक्ति का सचार करवा चुका है, फिर यह तो और सहज है कि वह विकलाग को कृत्रिम प्रावधानो के माध्यम से सीखने के क्षेत्र मे आवश्यकतानुसार सम्भव उपकरण उपलब्ध करा सके । साधारण शिक्षण के क्षेत्र मे दृश्य श्रव्य उपकरणो के प्रयोग ने शिक्षण के क्षेत्र मे नया मोड दिया है जिसे समाज और शिक्षा ने स्वीकारा है ।

विकलाग शिक्षा की आवश्यकता

भोजन, वस्त्र एव आवास की भाँति शिक्षा भी अनिवार्य आवश्यकता है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेद-भाव के ग्रहण करने का अधिकार है । शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को उसकी क्षमता के अनुरूप अधिकाधिक समाजोपयोगी बनाना है । यदि विकलाग वर्ग को शिक्षा के इस लाभ से वचित रखा जाता है तो प्रजातन्त्र के लिये यह घोर दु खद स्थिति है, एव दायित्व इस बात मे उभरता है कि प्रत्येक विकलाग अपनी क्षमता और सीमा मे शिक्षा ग्रहण करे । जिससे उसमे आत्मग्लानि, नैराश्य, हीन भावना और अकर्मण्यता के स्थान पर आत्मविश्वास, आशा और कर्मठता के साथ-साथ अपनी विकलाग स्थिति मे भी जीवन जीने के प्रति एक आकर्षण उत्पन्न हो एव विकलाग के दृष्टिकोण मे स्वावलम्बन का आकार स्पष्ट हो ।

विकलाग शिक्षा की आवश्यकता की दृष्टि से, प्रजातन्त्र मे जहा जनहित ही राष्ट्रहित है वहाँ समाज विकलाग को उन्ही के सामर्थ्यानुसार शिक्षा प्रदान करे, जो जिस अवस्था मे है उसकी क्षमता का अधिकाधिक उपयोग कर एक नया जीवन दर्शन दे । विज्ञान की प्रगति ने मनुष्य को चाहे वह किसी भी अवस्था मे क्यो न हो पूर्ण सहायता एव साधन दिये है । शक्ति, समय एव दूरी को विज्ञान ने कतिपय क्षेत्रो मे तो शून्य पर ला दिया है । विकलाग अपने अभ्यास बल के सहारे इन उपकरणो से पूर्ण उपयोगिता ग्रहण कर सकते है, आवश्यकता है, मनोवृत्ति के परिवर्तन की ।

अत स्पष्ट है कि शिक्षा प्रत्येक विकलाग बालक को समान अवसर प्रदान करे, चाहे यह विकलाग साधारण हो, असाधारण हो या समान्य रूप से मध्य अवस्था के । प्रजातन्त्र मे इनके लिए शिक्षा के साधन उपलब्ध किया जाना एक राष्ट्रीय अनिवार्यता ही नही, मानवीय दायित्व भी है ।

विकलांगता के प्रकार

विकलांग बालक दूसरे विकलांग बालकों से भिन्न ही नहीं होते, अपितु कार्य-क्षमता एवं ग्रहणीय शक्ति और रुचि की दृष्टि से भी भिन्न होते हैं। सैमुअल ए क्रिक ने विकलांगों की तीन श्रेणियाँ की हैं —

१ शारीरिक विकलांगता (बहरापन, अन्धापन)
२. मानसिक विकलांगता (मन्द, सामान्य, तीव्र) तथा
३ सामाजिक कुसमायोजन

सामान्य रूप में विकलांग प्रकार में वे विकलांग भी आ जाते हैं जिन्हें विद्यालयीय शिक्षा ग्रहण करने हेतु विशेष शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता होती है। विशेष शिक्षा प्राप्त होने पर ही विकलांग अपनी शक्तियों का अधिकतम उपयोग कर सकता है।

विकलांग कौन है ?

सम्भवत यह पता लगाना कठिन है कि विकलांग कौन है। मानसिक, सामाजिक या मनोवैज्ञानिक, किसी भी क्षेत्र में हुई विकलांगता बालक में जब सीखने सिखाने की समस्या उत्पन्न कर देती है तो वे विकलांग कहलाते हैं। इनके लिये शिक्षा को अपना विशेष पाठ्यक्रम आयोजित करना पडता है। विकलांग बालक का व्यवहार उसकी शारीरिक संरचना एवं उसका स्वभाव सामान्यत स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है। कई बार इतनी विषम अवस्था उत्पन्न हो जाती है कि सामान्य जीवन में परिवार, विद्यालय एवं समाज तक प्रभावित हो जाते हैं।" (विपिनविहारी वाजपेयी) विकसित सामाजिक आदर्शों एवं मूल्यों के अन्तर्गत विकलांग को चिकित्सा सेवा, शरीर विशेषज्ञ, प्रजनन विशेषज्ञ या फिर मनोवैज्ञानिक के पास उपचारार्थ ले जाया जाता रहा है, परन्तु अलग से शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित हो इस पुण्य यज्ञ का श्रेय वर्तमान विज्ञान को है।

सामान्य विकलांगता एवं शिक्षा

सामान्य विकलांगता बालक को शिक्षित करने हेतु विशेष विद्यालयों की अपेक्षा साधारण विद्यालय अधिक उपयुक्त रहते हैं। यदि सामान्य विकलांग बालकों को आंशिक प्रोत्साहन भी प्राप्त हो तो वे औसत बालकों में अच्छे सिद्ध हो जाते हैं। असामान्यवस्था की दृष्टि से भारतीय विद्यालयों में आने वाले छात्रों का वर्गीकरण निम्नलिखित विभाजन क्रम में लिया जा सकता है —

१ भारत में ३ वर्ष से १८ वर्ष तक की वय के लगभग १६ करोड बालक विद्यालय जाते हैं। इनमें दो करोड छात्र ऐसे हैं जिन्हें विशेष शिक्षित करने हेतु चिकित्सा, रक्षण साधन व विशेष शिक्षण-पद्धति की आवश्यकता होती है। डॉ० उदयशंकर

के अनुसार अनुमानत १२ लाख जड मूर्ख, २२ लाख शिक्षण योग्य मन्द-बुद्धि एव ७५ लाख साधारण बुद्धि जिन्हे साधारण विद्यालयो मे अतिरिक्त साधन सुविधा से शिक्षित किया जाता है।

२ शारीरिक विकलागता मे प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ, पोलियो, गर्भ, विकृति के फलस्वरूप अस्थि विकृति, अस्थि क्षय कूब, वाणी दृष्टि एव श्रवण-दोष आदि आते हैं। अस्थि-विकृति मे बौद्धिक-पक्ष सक्रिय रहता है, केवल कौशल-पक्ष प्रभावित होता है। ग्रामोत्थान विद्यापीठ सगरिया (राज०) के कर्मचारी श्री हरवशलाल गर्ग का शैक्षिक-स्तर प्रथम श्रेणी का रहा है। अपस्मार (मिर्गी) यक्ष्मा, अर्बुद (कैंसर) दमा, मधुमेह, गठिया श्वेत प्रदर आदि रोग भी सीखने मे बाधा उत्पन्न करते है।

३ सामाजिक विकृतियाँ भी शिक्षण के परिणामो को प्रभावित करती हैं। बालक मे सामाजिक समजन का न होना अह एव व्यक्ति भाव का बलवती पक्ष, सूझ एव सहिष्णुता का अभाव दिग् भ्रम को प्रदान करता है। जिससे अभ्यास मे अनिश्चितता और अध्ययन के प्रति लापरवाही बढ जाती है।

सामान्य औपद्योपचार, आवेक्षा एव विशिष्ट शिक्षण पद्धति के माध्यम से असामान्यावस्था बालको को सहज शिक्षित किया जा सकता है।

विकलांग शिक्षा के उद्देश्य

प्रजातन्त्र के जीवन-दर्शन मे विकलाग को शिक्षित करने का दायित्व अधिक उभरा है। शिक्षा स्वय जीने की रहन-सहन की, और विकास की एक पद्धति है जो विकलाग मे निहित अप्रकट शक्तियो को प्रकट कर जीवनोपयोगी बनाकर समाजोन्मुखी बनायेगी ऐसी आशा है।

उद्देश्यो की दृष्टि से विकलाग शिक्षा के उद्देश्य सामान्यत शिक्षा के उद्देश्यो से भिन्न नही हैं। फिर भी, कतिपय ऐसे उद्देश्य है जिनका वर्णन एव विश्लेषण अत्यावश्यक है। इन उद्देश्यो को विकलाग शिक्षा की विचारधारा के अन्तर्गत विशिष्टीकरण प्रदान किया जा सकता है।

१ विकलागावस्था मे भी विशेष शिक्षा के माध्यम से सुधार किया जाकर बालक मे अपनी शक्ति का अधिकतम उपयोग करने की योग्यता उत्पन्न की जाये।

२ शारीरिक चिकित्सा के उपरान्त विकलाग बालक की शिक्षा का क्षेत्र निर्धारित कर उसमे आत्मविश्वास की भावना का विकास किया जाये।

३ विकलाग मनोविज्ञान को ध्यान मे रखकर विकलाग बालक की रुचि एव क्षमता को प्रमुखता देते हुए सीखने की प्रवृत्ति का विकास किया जाये।

४ विकलाग बालक को समाज का उत्पादक अग बनाने हेतु उसकी सामर्थ्यानुसार व्यावसायिक शिक्षा देकर आत्मनिर्भर बनाया जाये।

५ विकलाग बालक मे जो अभाव है उसको रोकते हुये अन्य क्षमताओ का विकास कर उस अभाव की ओर उसकी भावनाओ को परिवर्तित किया जाये।

६ विशेष शिक्षा के माध्यम से विकलागो मे नवजीवन का सचार करना, जिससे यह वर्ग समाज मे अपना उत्तरदायित्वपूर्ण अनुकूलन कर सके।

७ विकलाग बालको मे सह-भाव उत्पन्न करना कि वह समाज पर भार-स्वरूप नही हैं, और न ही उन्हे समाज की दया पर निर्भर रहना है, अपितु अन्य नागरिको की

भाँति नागरिक अधिकारो का प्रयोग करें।

८. विकलागो की विशेष आवश्यकता पूर्ण करने हेतु विभिन्न सुविधा साधनो को सुलभ उपयोग बताना।

९. विकलाग बालक अपने को प्रजातन्त्र-राष्ट्र की अविभाज्य इकाई के रूप मे विकसित करें।

१० विकलागो मे सामाजिक समर्थता की भावना के साथ-साथ स्वय को प्रजातन्त्र राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण सदस्य के रूप मे विकसित करना।

११. विकलाग अपनी स्वस्थ योग्यताओ का सवर्द्धन कर उन्हे जीविकोपार्जन एव जीवन-स्तर को समुन्नत करने मे लगा सके।

१२. विकलागो को रोटी और रोजी तक ही सीमित न रखे परन्तु उनमे समग्र जीवन के प्रति विश्वास उत्पन्न करना।

१३. विकलागो मे परिवर्तित परिस्थितियो के अनुसार अनुकूलन ग्रहण कर व्यावहारिक पक्ष को उजागर करना।

१४ विकलाग की शक्ति का अनुशीलन कर उसे व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एव मानवता की भलाई की ओर प्रवृत्त करना।

१५ विकलाग शिक्षा के पाठ्यक्रम को व्यावसायोन्मुखी, सामाजिक सास्कृतिक समजन-परक एव सवेदीय सन्तुलन-परक बनाना।

बालगोविन्द तिवारी के शब्दो मे-"शिक्षा चाहे कैसी भी क्यो न हो, उसके उद्देश्य जितने व्यावहारिक होंगे, परिणाम उतना ही आशा-जनक एव उत्साहवर्द्धक होगा। महत्वाकाक्षी उद्देश्य देखने मे तो आकर्षक होते हैं परन्तु परिणाम मे असफलता देने वाले भी हो सकते हैं।" अखिल भारतीय जिला शिक्षा अधिकारी सम्मेलन मे (श्रीमती) इन्दिरा गाँधी ने कहा "मै बच्चो को समाज का उत्पादक सदस्य बनाने मे विश्वास करती हूँ। बच्चे चाहे कोई भी हो।"

इस दृष्टि से विकलागो के लिये तो यह विचार और भी अधिक महत्त्व रखता है। उत्पादक सदस्य का तात्पर्य है उत्तरदायी सदस्य। विकलाग की अवस्था एव क्षमता को जानकर तदनुकूल प्रशिक्षण, व्यवसाय-कौशल एव निर्वासन तक निर्देशन की समुचित व्यवस्था ही इस समस्या का स्थायी निदान है।

विशेष शिक्षा

विशेष शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षण-प्रक्रिया से है जो औसत बालक से सम्बन्ध नही रखती। विशेष शिक्षा की परिसीमा मे वे बालक आते हे जो मानसिक रूप से प्रतिभावान या मन्द-बुद्धि हैं। इसके साथ ही शारीरिक, सामाजिक, व्यावहारिक एव असाध्य रोगो से पीडित बालक भी विशेष शिक्षा की श्रेणी मे आते हे।

विशेष शिक्षा की सज्ञा से अभिप्राय है, शिक्षण की वह पद्धति जिसका उपयोग असामान्य बालक के लिये करना पडता है। असाधारण रूप से निर्मित शिक्षण उपकरण, पाठ्य पुस्तक या सिखाने के प्रयत्न विशेष शिक्षा के अन्तर्गत व्यवहृत होंगे।

विशेष शिक्षा एव विकलाग

विकलाग बालकों के अध्ययन से ज्ञात हुआ ह कि विकलाग बालक औसत बालक

मे सर्वथा भिन्न नही होते । कोई पक्ष-विशेष ऐसा होता है जिससे सीखने की स्थिति मे विचलन उत्पन्न हो जाता है । उदाहरणार्थ वर्तनी दोष अथवा सुलेख का न होना । ऐसे वालको को अतिरिक्त कार्य कालांश देकर अभ्यास दिया जा सकता है । इसी प्रकार उच्चारण दोषयुक्त वालको के लिये भी निर्धारित कालांश के अतिरिक्त विशेष उपकरणो की सहायता से अभ्यास दिया जाना चाहिये । औसत या सामान्य वालको के लिये इस प्रकार अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता नही होती ।

गूंगे और वहरे छात्रो के लिये अध्यापक विशेष रूप से ध्वनि-यत्रो या श्रवण उपकरणो का प्रयोग करेगा । वहरे या गूंगे वालको मे भी साधारण दोष से युक्त एव अधिक दोष से पूर्ण छात्रो का वर्गीकरण किया जा सकता है । किस अवस्था के विकलाग को किस प्रकार और कितनी मात्रा मे विशेष शिक्षा मिलनी चाहिये यह वालक की विकलागावस्था के अतिरिक्त सीखने की क्षमता पर भी निर्भर करता है । जितनी जटिल विकलागावस्था होगी उतना ही अधिक विशेष शिक्षा का सहारा लेना पडेगा ।

शिक्षा सन्त स्वामी केशवानन्द के शब्दो मे, "विकलाग कलक नही है, अपितु समाज कलक है, जो समर्थ होते हुये भी विकलागो को शिक्षा नही देते । अत शिक्षा को इस ढंग से दिया जाये, इस प्रकार से दिया जाये और ऐसी मात्रा मे दिया जाये, जिससे विकलाग मे शिक्षा के प्रति विश्वास और अपने जीवन मे आस्था दिखाई देने लगे ।" विशेष शिक्षा विकलाग वालक के दोष पूर्ण, कम ग्रहण शक्ति, न्यून क्षमता, व अन्य असामान्य अवस्थाओ को सहायता देकर सीखने के लिये प्रयत्नशील वनाती है । सीखने की यही दिशा उनमे नूतन जीवन-मूल्यो को विकसित करेगी । विकलाग का अर्थ असहाय नही रहेगा ।

विशेष शिक्षा के विभिन्न क्षेत्र व स्वरूप

जव गम्भीर शारीरिक अयोग्यता एव अस्वस्थता चिकित्सा के द्वारा रुक जाती है या विकलागावस्था का असह्य रूप उपचारोपरान्त शान्त हो जाता है तव विशेष शिक्षा का कार्य आरम्भ होता है । या विशेषज्ञ के निर्देशनानुसार उपचार एव शिक्षण साथ-साथ भी चल सकता है । विकलाग के स्वास्थ्य परीक्षण के पश्चात् विशेषज्ञ के मतानुसार अध्यापक शिक्षा की आवश्यकता को सहज समझ सकता है । विद्यालय के कार्यालय मे वह व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक वालक के सम्पर्क मे आता है, उसकी योग्यता से परिचित होता है । अत विकलाग वालको का वर्गीकरण करके विशेष शिक्षा के क्षेत्र को निर्धारित करना सहज हो जाता है । प्राथमिक स्तर पर वालको मे सामाजिकता का व्यवहार विषम अवस्था मे नही हुआ होता और न ही उन पर सामाजिक रूढियो का प्रभाव होता है । अत उचित चिकित्सा सेवा के उपरात वहरे श्रवण-सहायक यत्र का उपयोग करने पर या सामान्य दृष्टि-दोष से युक्त वालक चश्मा लगा लेने पर, अपनी श्रवणेन्द्रिय-शक्ति एव दृष्टि-शक्ति का सीखने मे अधिकतम उपयोग कर सकते है । यही कार्य विशेष शिक्षा का है । उसका कार्यक्षेत्र विकलाग वालक को होठो से पढना, श्रवण-सहायक यत्र से सुनना व अपनी क्षमताओ को सक्रियता प्रदान करना है ।

विशेष शिक्षा उस क्षेत्र मे भी कार्य करती है जहाँ चिकित्सा सेवा असमर्थ हो जाती है, जैसे अन्धापन । वहाँ सीधा सम्वन्ध शिक्षा का रहता है । ब्रेल लिपि के माध्यम से अन्धे वालक की स्पर्श शक्ति का उपयोग किया जाता है जिससे वह स्पर्श द्वारा आकृतियाँ पहचानने लग जाता है । इस प्रकार की शिक्षा मे अभ्यास शक्ति के विकास की अत्यधिक

आवश्यकता रहती है । हाथ-पैरो से अपंग बालक अपने मस्तिष्क का उपयोग औसत बालको से भी अधिक कर लेता है ।

विशेष शिक्षा हेतु स्थान

शिक्षा-शास्त्रियो, विचारको, समाज-सुधारको एव विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य करने वाले व्यक्तियो के समक्ष यह विचार अत्यन्त प्रवल है कि विकलागो हेतु विशेष शिक्षा की व्यवस्था हेतु अलग से विद्यालयो की आवश्यकता नही है, साधारण विद्यालय मे ही विकलागो हेतु विशेष व्यवस्था कर देनी चाहिये । सुविधा की दृष्टि से साधनहीन विकलागो हेतु जितनी निकट से निकट व्यवस्था सुगम एव कम खर्चे मे सम्भव है उतनी विशिष्ट विद्यालय मे नही । क्योकि विकलाग विद्यालय की स्थापना अनिवार्य शिक्षा की भाँति सम्भव नही है । फिर भी प्रान्तीय स्तर पर परीक्षण या असामान्य विकलागो की दृष्टि से विशेष विद्यालयो की स्थापना अवश्य होनी चाहिये जहाँ से साधारण विद्यालयो मे अध्ययनरत विकलागो की समस्याओ के निराकरण का आधार प्राप्त किया जा सके या विकलाग विशेष को निर्देशन या विचार-विमर्श के लिये विशेष विद्यालयो मे ले जाया जा सके ।

विकलांग शिक्षा मे अध्यापक की भूमिका

विकलाग शिक्षा के अध्यापक को विकलागो मे यह विश्वास पैदा करना है कि वे औसत छात्रो के साथ उतना ही सजीव रहकर शिक्षण प्राप्त कर सकते है । औसत विद्यालय मे भी सीखने की दृष्टि से असामान्यावस्था पायी जाती है । यथा, सुखदेव एक बात को शीघ्र, हरि अत्यन्त मन्द गति मे, एव नरेन्द्र साधारण ध्यान देने पर ही, समझ जाता है । इसी प्रकार कार्य करने की अवस्थाएँ भी है । औसत दृष्टि मे सभी बालक एक काम को करने मे न्यूनाधिक समय, शक्ति, एव अभ्यास को अपनायेंगे । असामान्यावस्था अभी-अभी बीमारी से उठे बालक के साथ भी है, जिसे औसत छात्र से अधिक विश्राम की आवश्यकता है । पाँच छ किलोमीटर की दूरी से आये बालक को भी प्रथम कालाश मे थोड़ा विश्राम चाहिये । असाध्य रोगो से पीड़ित बालको को भी विद्यालयीय खेलकूद या श्रम-युक्त कार्यों से छूट के साथ-साथ अत्यन्त हलके मनोरजन खेलो की सुविधा प्राप्त होनी चाहिये ।

विकलांग होने के कारण

विज्ञान ने जहाँ मनुष्य को गति की सुविधा दी है, वहाँ दुर्घटना भी अनिवार्य हुई है । जल और थल पर तेजी से दौडते वाहन, आकाश मे उडते वायुयान पूर्ण सावधानी के पश्चात् भी दुर्घटनाग्रस्त हो जाते है । इसी प्रकार घर, विद्यालय, प्रयोगशाला, खेल के मैदान, उद्योग-धन्धे या अन्य कार्यो मे व्यस्त कोई भी प्राणी कब, कहाँ और किस रूप मे विकलाग हो जायेगा, नही कहा जा सकता । इसी प्रकार प्राकृतिक प्रकोप, बाढ, अकाल, भूकम्प, भूस्खलन, अग्नि, तूफान अपने पीछे मृत और विकलाग छोड जाते है । अत. विकलाग होने के पीछे आज कोई भी कारण खोजना युक्ति-सगत नही है । विषाक्त भोजन, जल-दूषण, वायु-दूषण, शराब के प्रभाव, युद्ध, बीमारी, दगे आदि कई बार सामूहिक विकलागता तक उत्पन्न कर देते है ।
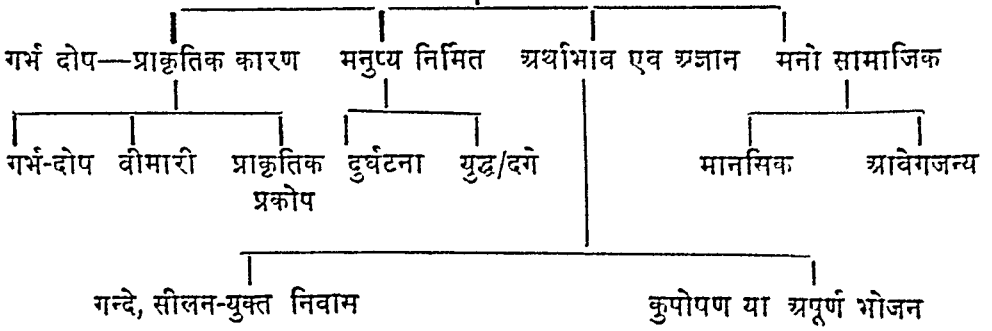
प्राकृतिक कारण

गर्भ जीवन—(अ) यौन शिक्षा एव शरीर विज्ञान की जानकारी के अभाव मे गर्भावस्था पर पडने वाले अप्राकृतिक प्रभाव से बालक विकलाग हो जाते है।

(आ) अप्रशिक्षित, अज्ञानी एव फूहड दाइयाँ सन्तानोत्पत्ति के अवसर पर धैर्य, युक्ति एव औषधि के उपयोग की अपेक्षा शक्ति प्रयोग का अधिक सहारा लेती है जिससे कभी-कभी तो माता एव शिशु दोनो का ही जीवन सकट मे पड जाता है।

बीमारी—(अ) बीमारी को दैवी प्रकोप मानने वाले अपने शिशुओ को औषधि या उपचार की अपेक्षा टोना, झाडा, धुँआ आदि के द्वारा स्वस्थ रखना चाहते है।

(आ) गरीबी मे उपचार न होने से या बीमारी के असाध्य हो जाने पर उपचार की व्यवस्था न होने से, विकलागता हो जाती है।

प्राकृतिक प्रकोप—प्राकृतिक प्रकोप–बाढ, भूखमरी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, ज्वालामुखी का उद्गार तूफान आदि कुछ ऐसे प्राकृतिक प्रकोप है जिनका प्रभाव इतना तीव्र होता है कि व्यक्ति सावधान हो इसके पूर्व वह संकट मे पड जाता है। देखते-देखते मृतको ढेर लग जाते है। विकृत देह तथा अस्वस्थ मन और मस्तिष्क वाले व्यक्ति कराहते, चीखते चिल्लाते, दम तोडते मिलेंगे, या फिर कुछ ऐसे भी जिनकी अवस्था असाध्य हो चली है। इसी वर्ग मे वह भी सम्मिलित हो जाते है जो साधारण अपाहिज है, परन्तु भिक्षावृत्ति या अन्य वृत्ति के द्वारा उदरपूर्ति का ऐसा आकर्षण हो जाता है कि वह उसी मे अपना जीवन लगा देते है।

मनुष्य निर्मित

(अ) **दुर्घटना**—सार्वजनिक स्थलो मे, यातायात, सकुल स्थलो मे, यन्त्र-शाला या सामान्य जन-जीवन की किसी भी अन्य अवस्था मे थोडा ध्यान बँटा कि दुर्घटना हुई। सामान्य असावधानी वश हुई दुर्घटना कभी-कभी व्यापक रूप ग्रहण कर लेती है। शीघ्रता की दौड मे कई अपने प्राण तक त्याग देते हैं। दुर्घटना की गम्भीरता से ही असावधानी की मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है। मनुष्य अपने अह मे शक्ति का प्रयोग कर बैठता है जो विकलागता का कारण बन जाता है।

(आ) **युद्ध**—युद्ध अपने आप मे एक दुर्घटना है। युद्ध की अनिवार्यता राष्ट्रो के सम्बन्धो पर अवलम्बित है। यह दोहरा प्रभाव है। एक ओर तो व्यक्ति अपग होते है

दूमरी ओर राष्ट्रो की प्रगति सर्वथा रुक जाती है। स्त्रियाँ, बच्चे तथा युवक मानसिक एव शारीरिक दोनो ही रूपो से असमर्थ हो जाते है, साथ ही राष्ट्र भी युद्ध की विभीपिका से विकृत हो जाते हैं। विश्व युद्धो के परिणाम हिरोशिमा एव नागामाकी के सन्दर्भ मे देखे जा सकते हैं। स्वतन्त्र भारत को भी युद्ध सहन करने पडे। प्रभावी विकलागो को कार्य सुविधाएँ दी गई।

मनोसामाजिक

भावनात्मक—भावनात्मक विकृति का सम्वन्ध जीवनादर्श, मान्यताग्रो एव मूल्यो से लेकर सामान्य व्यवहार मे एक पक्षीय स्थिति या विपमता से रहता है। कतिपय ग्रवस्थाग्रो मे विपम व्यवहार, अनिर्णय, उदासीनता जीवन को भग्नाशा से पूरित कर देती है, जो भावात्मक दृष्टि से कुसमायोजन का कारण वनता है।

(अ) **मानसिक**—विशेप मानसिक स्थिति सामान्य व्यवहार मे विकृति उत्पन्न कर देती है। दैनिक जीवन के सामान्य व्यवहार भी कई वार इतनी ग्रावेगात्मक दशा ग्रहण कर लेते हैं कि सम्पूर्ण मस्तिष्क अनियन्त्रित ही नही होता वरन् असन्तुलित हो जाता है। यह अवस्था विक्षिप्तावस्था कहलाती है। विकृत मानमिक स्थिति, स्थायी ग्रौर ग्रस्थायी, दोनो ही तरह की सम्भव हो सकती हे। मानसिक दुर्वलता, मानसिक निष्क्रियता या हवाई मानसिक स्थिति से युक्त व्यक्ति सामान्य व्यवहार तक को त्याग देता है।

चित्र—भावात्मक वालक

आवेगात्मक—इस अवस्था मे व्यक्ति एकपक्षीय रूप मे सोचने लगता है एव उसी के अनुरूप उसकी क्रियाएँ होती है, जैसे, अपशब्द बोलना, कपडे फाडना, क्रोध करना, अपने को दण्डित करते जाना आदि । आवेगजन्य मनोरंजन भी एक दुखद स्थिति है, यथा-चिडियाघरो मे जीव-जन्तुओ को मारना । इन्दिरा गाँधी ने कहा, "जब हम पशुओ को विकलाग करना कोई विशेष बात नही समझते तो स्पष्ट है हम सुव्यवस्थित व्यक्ति नही है ।" अपने ही आवेगो को सर्वोपरि मानना एक कारण बन जाता है ।

अर्थभाव एव अज्ञान

अभावजन्य—सम्पूर्ण विश्व-चेतना युगो से अभाव की पूर्ति हेतु सघर्ष-रत है । महात्मा गाँधी ने कहा था, "जहाँ भी ऐसा अभाव है, जिसके बिना व्यक्ति जीवित नही रह सकता, या कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करता है, मै वहाँ पहुँचूँगा ।" (महात्मा गाँधी ने स्वय एक कोढी की सेवा-सुश्रुषा की ।) यह दिव्य सकल्प हर मानव मे है । इन्ही अभावो के परिणामस्वरूप विश्व की एक-तिहाई जनता आधी भूखी रहती है एव आधी जनता अपूर्ण चिकित्सा के कारण कष्ट भोगती है । ये ही अभाव विकलागता के कारण बन जाते है । अभाव के साथ यदि अज्ञान भी हो तो और भी दुखद स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।

(अ) **गन्दे, सीलन-युक्त निवास**—अभावो का दबाव सहते-सहते व्यक्ति एव परिवार गन्दी, सीलन भरी अधेरी कोठडियो मे जीवन जीने को बाधित होते है । छ फुट चौडे एव १० फुट लम्बे कमरे मे आठ-आठ बच्चो का परिवार ऐसी दशा मे अधिकाश बच्चो को घर से बाहर, अपराधी-वृत्ति के या कामुक लोगो मे, जीवन बिताना पडता है, जहाँ देखते-देखते यौन रोग एव विकृत मनोविकृतियाँ अबोध बालको को ग्रसने लगती है । बीमारी, अपराध और भूख से पीडित बच्चे कुछ समय के बाद विकलाग हो, भिक्षा माँगने लगते है । अज्ञान और अशिक्षा जीवन-मूल्यो को नष्ट कर देते है जिसके फलस्वरूप अन्ध-विश्वास और रूढियाँ पनपती है व भाग्य के सहारे जीवन मे निकृष्ट स्थिति स्वीकार करली जाती है ।

(आ) **कुपोषण एव अपूर्ण भोजन**—महँगाई, कम आय, बडा परिवार, एक व्यक्ति कमाने वाला, माता-पिता किस प्रकार भूख को बहलाते है, यह किसी से छिपा नही है । कुपोषण एव अर्ध-पोषण बालक की वृद्धि मे बाधक हैं, साथ ही कार्य-क्षमता को न्यून करने वाले है । उदरपूर्ति हेतु शक्ति-क्षमता से अधिक किया गया कार्य थोडे ही समय मे शरीर को कु-प्रभावित कर विकलाग बना देता है ।

विकलाग बालक का अर्थ एव परिभाषा

"विकलागता एक ऐसी स्थिति है जो किसी भी व्यक्ति को किसी भी अवस्था मे उसके सामान्य व्यवहार, कार्यशक्ति, विचार एव नियमित (दैनिक) कृत्य को न्यूनाधिक प्रभावित कर आगिक, मानसिक, सामाजिक एव भावात्मक असन्तुलन उत्पन्न कर देती है ।" बाल गोविन्द तिवारी के इस कथन मे विकलाग का अर्थ शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक एव भावात्मक या इनमे से किसी भी एक पक्ष का असामान्य हो जाने से है, तो विकलाग की श्रेणी मे आता है । डा० वी० भण्डारी मानसिक विकलागता की परिभाषा इस प्रकार करते है–"वह बालक जिसमे जीवन की प्रारम्भिक अवस्था मे ही मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो गया हो, जिसके कारण बालक मे सीखने की क्षमता मन्द हो गई हो और सामाजिक जीवन मे स्थापित होने मे कठिनाई हो, उसे मानसिक विकलाग बालक कहा जा सकता है ।"

शैक्षिक दृष्टि से विकलांग से अभिप्राय किसी भी प्रकार की रुग्णता से नहीं है और न ही विकार की उपचारात्मक प्रक्रिया से है, विकलांगता का अर्थ है सीखने में औसत बालक से अतिरिक्त ध्यान और सहायक उपकरणों की आवश्यकता। एक प्रकार से विकलांग अवस्था का अर्थ उस असामान्यवस्था से है जो प्रभावित बालक को औसत बालक से अलग दर्शाती है। यह अन्तर शारीरिक आकृति, बौद्धिक-स्तर, सामाजिक समजन या व्यवहार एवं भावात्मक या संवेदीय रूप में किसी भी सीमा तक हो सकता है। इस दृष्टि से विकलांग बालक हेतु शिक्षण व्यवस्था को औसत बालक से भिन्न चार वर्गों में नियन्त्रित किया जा सकता है —

प्रथम—विकलांगता का स्थिर स्वरूप एवं शिक्षण,

द्वितीय—विकलांगता का अस्थिर स्वरूप एवं शिक्षण के साथ चिकित्सा,

तृतीय—विकलांग हेतु चिकित्सा प्राथमिकता एवं शिक्षण, तथा

चतुर्थ—असाध्य विकलांगावस्था एवं अत्यावश्यक दैनिक कृत्यों का शिक्षण।

औसत बालक एवं विकलांग में अन्तर

अध्ययन अध्यापन की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की विकलांगता की पहचान आवश्यक है, जिससे सामान्य बालक एवं विकलांग का अन्तर स्पष्ट हो सके। पहचान की दृष्टि से स्थूल वर्गीकरण निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है :—

(क) शारीरिक विकलांगता एवं सकलांग बालक

(ख) बौद्धिक विकलांगता एवं औसत बुद्धि बालक

(ग) सामाजिक विकलांगता एवं समजित बालक

(घ) भावात्मक विकलांगता एवं संवेदीय सन्तुलित बालक

शारीरिक विकलांगता युक्त एवं सामान्य शरीर बालक

शारीरिक विकलांग, औसत शारीरिक अवस्था सम्पन्न व्यक्ति से, आन्तरिक एवं बाह्य संरचना में भिन्न होता है। यह भिन्नता अस्थि, पेशी, आकृति, संरचना, अशक्त अंगता, अधिक और न्यून अंगता, अभाव अंगता, जड़ अंगता आदि की हो सकती है। चक्षु-अन्धता, मूक-बधिरता और अंग-भंगता भी इसी वर्ग में आती है। इन अवस्थाओं में शिक्षण की दृष्टि से औसत बालक की भाँति सीखने में अंग गतिशील नहीं होते। किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के लिये अतिरिक्त उपकरणों की आवश्यकता होती है, या कार्य औसत परिणाम नहीं दे पाता।

आंगिक असामान्यता के फलस्वरूप शारीरिक विकलांग प्रथम दृष्टि में ही पहचाने जा सकते हैं। यह अन्तर शरीर की संरचना, चलना, उठना, बैठना के अतिरिक्त कार्य-विधि, कार्य-क्षमता, कार्य परिणाम से स्पष्ट जाना जा सकता है। डॉ० रतनलाल शर्मा इस अन्तर को इन शब्दों में स्पष्ट करते हैं—"शारीरिक दृष्टि से विकलांग बालक कौशल-परक कार्यों को सीखने में सामान्य शरीर बालक से अधिक ध्यान, अधिक अवधि एवं आंगिक भिन्नतानुसार सहायक उपकरणों की अपेक्षा करते हैं। उनके प्रभावी अंग बौद्धिक निर्देशों का सामान्य शरीर बालक की भांति पालन करने में असहज होते हैं।"

बौद्धिक विकलांगता युक्त एवं औसत बुद्धि बालक

औसत बुद्धि बालक का कार्य तथा व्यवहार एवं उसके सीखने की अवस्था सन्तुलित

होनी है। शिक्षक निश्चित अवधि मे उनसे निश्चित परिणाम, सफलता के साथ, ले सकता है। स्मृति, पहचान एव प्रत्यभिज्ञान औसत दृष्टि से अच्छे रहते है। दत्त कार्य मे उत्तरदायित्व का पूर्ण निर्वाह यह छात्र करते है। बौद्धिक विकलागता-ग्रस्त बालक विकलागता की मात्रा (अवस्था) के अनुसार स्मृति, पहचान एव सीखने मे अधिक आवृत्ति, अधिक उपकरण एव अधिक समय लेंगे। वे सूक्ष्म कलापरक कार्यों के प्रति अरुचि दर्शायेंगे। सर्वथा बौद्धिक विकलाग चेहरे से पहचाने जा सकते है। वे अपने दैनिक कार्य भी भली प्रकार पूर्ण नही कर पाते। प्रो० बजरगलाल भोजक के शब्दों मे "बौद्धिक विकलागो की मानसिक आयु शारीरिक आयु एव सामाजिक आयु मे कोई ताल-मेल होता ही नही है, जबकि औसत बुद्धि बालक अपने व्यवहार मे एक सन्तुष्टि देते है।" बाल-गोविन्द तिवारी इस अन्तर को इस प्रकार प्रकट करते है,—"मानसिक विकलाग बालको मे सूझ, तर्कशक्ति एव ग्रहणीय क्षमता का अभाव होता है। औसत बुद्धि बालको मे साधारण अनुभूति, एव कल्पना रहती हे। प्रतिभासम्पन्न बालक दूर-दृष्टि एव जिज्ञासु होते है। "मानसिक जडता वाले स्व के प्रति भी सज्ञा-शून्य रहते है। इनका पूर्व इतिहास ज्ञात करके ही इन्हे उपचार देना लाभप्रद होगा।" (डॉ० श्यामसुन्दर पन्त)

बालको मे बौद्धिक विकलागता, पागलपन, एव औसत बुद्धि की शिक्षण की दृष्टि से पहचान अत्यन्त आवश्यक है। धर्मयुग २८ मार्च, ७६ के अक मे पागलपन के विषय मे सर्वेक्षण के आधार पर कहा है "ये भी अन्य मरीजो की तरह के मरीज है—दिमाग के मरीज। न जाने ये लोग गहन अन्तर्द्वन्द्व के किन क्षणो मे अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठे है। इनको इनकी परिस्थितियो ने इस अवस्था तक पहुँचा दिया है। क्यो इनको शक की नजरो से देखा जाना है? इन्हे समाज की समवेदना और समझदारी की जरूरत है।" शिक्षण एव व्यवहार के समय औसत बुद्धि बालक एव बौद्धिक विकलाग बालक को पहचानना सहज होता है।

सामाजिक विकलागता युक्त एव समजित बालक

सामाजिक विकलाग बालक समाज की मान्यताओ एव परम्पराओ के प्रति विद्रोह या घृणा का स्वभाव बना लेता है और जब-तब अपने व्यवहार एव विचारो के माध्यम से विरोध प्रकट करता है। समजित बालक समाज के मूल्यो तथा उसकी मर्यादाओ एव मान्यताओ के प्रति उदार एव सहिष्णु होते है। वे सामाजिक व्यवहार को सम्मान देते है। असमजित बालक या केवल अपने को ही उच्च-वर्ण या विश्व का सिरमौर मानने वाले इसी विकार से ग्रसित होते है। यथा रग-भेद, जाति-भेद, वर्ग-भेद के दुष्परिणाम द्वितीय विश्व युद्ध के समय जर्मनी मे गेस्टापो यत्रणा व्यवस्था, भारतीय प्रवासियो का युगाडा से सामूहिक रूप से निकाला जाना या जब राजनैतिक मनमुटाव व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाते है तो यह स्थिति और भी विकट हो जाती हे। सामाजिक समजन की दिशा मे व्यक्तिगत पारिवारिक स्थितियाँ भी अपना विशेष प्रभाव डालती है। साप्ताहिक हिन्दुस्तान २८ मार्च, ७६ मे 'पागलो की दुनियाँ' विशेष लेख मे डॉ० बालकिशन व्यास कहते है, "कुण्ठाएँ, तनाव, अतृप्ति, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा, अयोग्यता का बोध, रिश्तो की खटास, अविश्वास" यही सब अवस्थाएँ सामाजिक विकलागता का कारण हैं।" जब ये अवस्थाएँ अन्तर्मुखी बन भग्नाशा को समेटने लगती है, व्यक्ति पागल हो उठता हे। परन्तु जब चालाकी, धूर्तता व्यक्ति पर हावी हो जायें, अपराध पनपने लगता हे। डाकू समस्या का जन्म इन्ही

परिस्थितियो मे से एक है । प्रतिकार-भावना एव अहम्-विनाश का रूप धारण कर जन-जीवन को अस्त-व्यस्त कर देता है । "हथोडामार" का आतक राजस्थान, हरियाणा, पजाव मे कितना फैला, जव तक शकरिया पुलिस की पकड मे आया वह सत्तर व्यक्ति मौत के घाट उतार चुका था ।

महावीर, बुद्ध, ईसा मसीह, मोहम्मद साहव, तुलसी, मीरा, कवीर, महात्मा, गाँधी, विनोवा भावे आदि कुछ ही ऐसे महापुरुष है जो सामाजिक समजन के क्षेत्र मे विश्वव्यापी भूमिका निभा गये । समजित व्यक्ति विपम परिस्थितियो मे भी अपना विवेक नही खोता । सहिष्णुता एव व्यवहार मे सन्तुलन उसका प्रमुख गुण है । दूसरी ओर यदि कही स्व इतना प्रमुख हो जाये कि साधारण-सा व्यवहार भी प्रतिष्ठा का कारण वन जाये, ऐसी अवस्था मे सम्पूर्ण व्यवहार समाज-विद्रोही हो जाता है । प्राय सामाजिक विकलागता की पहचान सीधे नही होती । एक सुदीर्घ परीक्षण के पश्चात ही कुछ तथ्य निकाले जा सकते हैं, परन्तु उसमे भी कुछ सामाजिक विकलाग जनहित का चोला धारण कर लेते है या शक्ति मिलने पर प्रतिशोधात्मक व्यवहार आरम्भ कर देते हैं । चोरी, जुआ, ठगी, राहजनी, वलात्कार, हत्या, दगे, डाका आदि सामाजिक विकलागता के लक्षण हैं । शिक्षण के क्षेत्र मे ऐसे वालक सम्पूर्ण विद्यालय, महाविद्यालय या विश्व-विद्यालय का वातावरण विषाक्त कर देते हैं । अध्ययन मे रुचि लेने वाले सीधे साधे वालको को डराना, धमकाना, मारना-पीटना या सामूहिक रूप से अपमानित करना इनका दैनिक कृत्य वन जाता है । ये प्राय किसी भी सामाजिक आयोजन को अस्त-व्यस्त करने मे रुचि लेते है ।

भावात्मक विकलागता एव सवेदीय सन्तुलन

जव कोई भी वृत्ति स्थायी वन जाती है या सवेदीय विचलन मे आ जाती है तव व्यावहारिक विचलन का कारण वन जाती है । अवसाद, भय, चिन्ता, भग्नाशा के वृत्त मे व्यक्ति ऐसा उलझता है कि वह एक तनावमय जीवन जीने लगता है । प्राय किसी भी सामान्य वात पर उद्वेगीय अवस्था उत्पन्न हो जाती है । प्रो० गणपतराम शर्मा के शब्दो मे "आक्रमण, पलायन, आत्महत्या एव जडता भावात्मक विकलागता के ही प्रतिफल है । सवेदीय सन्तुलन युक्त वालक अपने हृदय या वुद्धि पर अन्यथा दवाव नही पडने देता एव प्रत्येक अवस्था मे शान्त रहता है ।"

भावात्मक विकलाग एव सवेदीय दृष्टि से सन्तुलित व्यक्ति की पहचान उसके व्यवहार के निरीक्षण से ही सम्भव है । भावात्मक विकलागता सीखने मे वाधक होती है ।

शिक्षा के परिवर्तित होते सन्दर्भ एव विकलाग

"शिक्षा का विभिन्न स्तरो पर स्वरूप क्या हो यह आज का विश्वव्यापी सर्वाधिक चर्चित विषय है । जिस द्रुतगति से विज्ञान चक्र ने सृष्टि को अपने मे समेटा है उतनी गति शिक्षा नही पकड पाई ।" किरण विहाणी की इस विचाराधारा से स्पष्ट है कि शिक्षाविद् वैयक्तिक एव सामाजिक क्षेत्र मे समजन स्थापित नही कर सके, या शिक्षा नीति उस परिवर्तित होते भार को वहन नही कर सकी जो इस पर वाह्य प्रभाव से पडा । विगत पाँच दशको की प्रगति को देखकर कहा जा सकता है कि इस युग को सर्वाधिक प्रभावित किया है 'उद्योग शाला' और 'प्रयोगशाला' ने । विकास के इतने क्षेत्र खुल गये कि शिक्षा उनके साथ मेल नही वैठा सकी । यह यथार्थ है कि गति, उत्पादन, श्रम, मनोरजन एव ऊर्जा के क्षेत्र मे प्राप्त उपलब्धियाँ हमारे पाठ्य विषय का अग नही हो सकी । सुशील विहाणी के

शब्दों में "अविकसित या विकासमान देश विद्यालय, प्रशिक्षण, पाठ्य-पुस्तक, शिक्षण-सामग्री, अध्यापन, पुस्तकालय एवं अन्य शैक्षिक साधनों और उपकरणों पर जितना श्रम, शक्ति, समय एवं धन एक बार लगा देते हैं उसे दूसरे ही पल परिवर्तित स्थिति में अप्रयोग्य "घोषित कर देने की शक्ति इन देशों में नहीं होती, परिणाम शिक्षा समय की यात्रा में पिछड़ जाती है।" इस दृष्टि से अनिवार्य शिक्षा एवं माध्यमिक शिक्षा सदा पिछड़ी है। विश्वविद्यालयीय शिक्षा को नवीनतम योग्यता रखने वाले छात्र नहीं मिलते अतः विकसित या नवीनतम अध्ययन तत्क्षण आरम्भ हो जाने चाहिये। पाठ्यक्रम इतना लचीला होना चाहिये कि बिना औपचारिकता के नवीनतम विषयों का समावेश अपनी पूर्ण सुविधा के साथ विद्यालय और विद्यार्थी के जीवन का अंग बन जाये।

सामाजिक कुसमायोजन के नये सन्दर्भ

सामाजिक कुसमायोजन के क्षेत्र में अपराध या अपराध भावना एक ऐसा ही पक्ष है।" कल का एक सीधासादा व्यापारी आज खाद्य पदार्थों में अखाद्य वस्तुओं की सफल मिलावट कर चुका है, एक औषधि-निर्माता औषधियों में चौंका देने वाली अस्वास्थ्यकारी वस्तुओं का मिश्रण कर देता है, विश्व-खेल मेले (ओलम्पिक्स) में निर्दोष खिलाड़ियों की हत्याएँ, पूर्णतः निजी या व्यावसायिक कार्यों में जाते अनजान यात्रियों का सामूहिक अपहरण, स्पष्ट है अपराध के तकनीकी आयाम ने साधारण दस्यु को नभदस्यु बना दिया और हमारे रक्षक (सिपाही) के पास अभी साइकिल भी नहीं है।" (ललिता ऐरी) इस स्थिति ने समाज में एक-दूसरे के प्रति सन्देह और छल का वातावरण बना दिया। उद्देश्य प्राप्ति के लिये किया गया अपराध "नीति की संज्ञा ग्रहण करे, इससे अधिक कुसमायोजन और क्या होगा।

अखिल भारतीय जिला शिक्षा अधिकारी सम्मेलन, नई दिल्ली

शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन पर चर्चाएँ सदा रहती हैं परन्तु इस बार जिला इकाई को आधार मानकर राष्ट्रव्यापी चिन्तन ६ मार्च से ९ मार्च १९७६ तक रहा। शिक्षा के मूलभूत मुद्दों, बालक, समाज, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में शिक्षा का परिवर्तित चोला, बालभावना, रुचि, वृत्ति एवं नूतन सन्दर्भ, आर्थिक विकास में कार्यरत बच्चों की महत्त्वपूर्ण भूमिका। शिक्षामन्त्री नूरुल हसन, डा रामचरण महरोत्रा, डा० एम० बी० माथुर, श्री अशेर डेलियोन, श्री जगन्नाथसिंह मेहता आदि ने अपने अनुभव एवं भावी सम्भावनाओं को प्रस्तुत कर राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विषय में चिन्तन किया।

इस गोष्ठी की सर्वाधिक उपलब्धि रही श्रीमती इन्दिरा गाँधी का भाषण जिसे "राष्ट्रीय शैक्षिक दर्शन की समग्र सन्तुलित भूमिका" की संज्ञा दी जा सकती है। उनके भाषण में जिन आधारभूत तत्वों पर प्रकाश डाला गया है वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि कोई भी शिक्षा नीति हो या विभिन्न मनोसमाज आर्थिक स्तरों के छात्र या मनोशरीर-सामाजिक विकलांगता या विभिन्न स्तरों पर अधिगम की समस्या या व्यक्ति, घर, समाज व राष्ट्र का वृत्त—यह भाषण एक व्यावहारिक दृष्टि देता है। अतः विकलांग शिक्षा के दर्शन विशेष सन्दर्भ में भी सम्मान्या इन्दिरा गाँधी के भाषण के कुछ उल्लेखनीय बिन्दु इस प्रकार हैं :—

१ *शिक्षा दर्शन* —हम कोई भी या कैसा भी शिक्षा का स्वरूप लें वह निरर्थक

है, यदि इन्हे कल्पना एव सहानुभूतिरहित दृष्टि से देखेगे ।

२ **जीव मात्र के प्रति औदार्य भाव (विश्व संस्कृति)** — वन्य जीवन भारत मे ही नही पूरे विश्व मे नष्ट हो रहा है । बच्चे चिडियाघरो को देखने आते है एव जीवो को सताते है । बालको मे औदार्य भाव पाले ।

३ **शिक्षा का कार्य** — बालक का सर्वांगीण विकास, उसे निरीक्षण योग्यता, क्षमतावान, सेवा-गुण-सम्पन्न, उदार बना अर्जित ज्ञान का दैनादिन उपयोग करने योग्य बनाता है ।

४ **मूलभूत बाल आवश्यकता** — हम छात्रो की अनवरत परिवर्तित होती आवश्यकताओं के औचित्य के प्रति सावधान रहे एव शिक्षा बालक के ज्ञान एव वातावरण से जुडी हुई हो ।

४. **(ए) आत्मनिर्भरता**—प्रमुख लक्ष्य होना चाहिये । कार्यरत बच्चे उत्तरदायी सदस्य है ।

५. **मनोवैज्ञानिकता** — बालक एक प्रबुद्ध व्यक्ति के रूप मे विकसित हो इसी को दृष्टिगत रख उसका मानसिक एव शारीरिक प्रशिक्षण हो, यही आधारभूत स्थिति है जो उसे स्वत शिक्षा ग्रहण करने के लिये अभिप्रेरित करेगी ।

६ **बाल व्यक्तित्व एव बाल भावना**—पूर्वाग्रह, अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता आदि के दुर्गुणो से अधिकाश अभिभावक एव अध्यापक भी ग्रसित है । बाल व्यक्तित्व की इनसे रक्षा की जाये ।

७. **शिक्षा का जीवन से जुडा होना** — शिक्षण पाठ बालक के वातावरण, ज्ञान और जीवन से जुडा हुआ हो इसी प्रकार कार्यानुभव भी उपयोगिता और उसके ज्ञान से सम्बद्ध हो ।

बालको मे उनके पैतृक व्यवसायो के प्रति स्वाभाविक झुकाव हो इससे उत्तरदायित्व का बोध होगा ।

मै बच्चो के कार्यरत होने का समर्थन करती हूँ परन्तु ऐसा करने के लिये उन्हे बाध्य न किया जाये ।

८. **सास्कृतिक विरासत** — स्थानीय परम्परा, कला, स्थापत्य हमारी महान साँस्कृतिक विरासत है—इसका सम्मान, रक्षा एव पोषण हो ।

९ **सामाजिक भावात्मक विकास** — बालक मे यह पहचान आनी ही चाहिये कि एक की आजादी के सामने दूसरे की आजादी अधिक है । बालक जनसाधारण को सम-सामयिक जानकारी, स्वास्थ्य, आहार, सुरक्षा एव सुविधा सेवाओ की जानकारी देते रहे ।

१०. **अवकाश का सदुपयोग एव भावात्मक विकास** — बालक अवकाश मे सेवा, शिक्षा व अन्य कार्य करे । (मै बचपन मे कोढी बच्चो की सेवा व अस्पृश्य बालको को पढाने मे रविवार का उपयोग करती थी ।) इसमे मुख्य लक्ष्य सख्यात्मक नही अपितु बालक के मन मे उत्पन्न उस भाव से है कि वह अनुभव करे ।

११. **राष्ट्रीय भावना**—देशाभिमान, आत्मविश्वास, उत्तरदायित्व के भाव बालको मे भर हम उन्हे राष्ट्र-निर्माण मे लगाना चाहते है । अत यह सयुक्तता शाला-पूर्व अवस्था या विद्यालय उम्र के साथ हो ।

१२. **शिक्षा व्यवस्था** — शिक्षा अधिकारियो को बाह्य देशो मे चल रहे नवीनतम शिक्षा प्रयोगो से परिचित, एव अपने विद्यालयो से सचेष्ट सम्पर्क मे रहना चाहिये ।

१३. अध्यापक — छात्रो की शिक्षा के समान ही महत्त्वपूर्ण है अध्यापक का व्यक्तित्व, क्योकि अध्यापक ही वालको मे ज्ञान और चारित्रिक विशेषता एव आदर्श नागरिकता के गुण भरता हे।

१४ स्वास्थ्य शिक्षा — वालक और वालिका के सन्दर्भ मे परम्परित मानसिक दृष्टिकोण मे परिवर्तन आना चाहिये। शिक्षा मे लिग-निरपेक्षता आज विश्व का चर्चित विषय है।

साठ सत्तर वर्ष की उम्र के लिये १५–१६ वर्ष की उम्र मे तैयारी हो, शारीरिक अभ्यास मात्र ड्रिल तक सीमित न रहे। समाज-सेवा कार्य या साहसिक अभियान भी हो जिससे वे भावी जीवन मे स्वास्थ्य एव सुदृढ दृष्टि ग्रहण करे, क्योकि शारीरिक एव मानसिक शिक्षण दो अलग विषय नही हैं।

१५ वैज्ञानिक एव तकनीकी शिक्षा — विज्ञान और तकनीकी विषय अलग विषयो के रूप मे नही, जीवन के प्रसगो एव अन्य विषयो से सयुक्त कर दिये जाने चाहिये। वालक को कैसे पढाना है यह महत्त्वपूर्ण नही हे, महत्त्वपूर्ण हे यह कि वालक कैसे सीखता है।

१६. निर्देशन —यही निर्देशन का अर्थ 'न करो' आज्ञा-सूचक नही होता अपितु उसके घर एव वाहर ऐसा वातावरण सृजित किया जाये जहाँ वे अनजान मे ही अच्छी आदतें ग्रहण कर सके।

१७ सौद्देश्य जीवन क्रम — वालको के समक्ष सोद्देश्य जीवन प्रक्रिया रखी जानी चाहिये जो विद्यालय के वाहर भी वालक को विकसित होने का अवसर प्रदान करे।

विशिष्ट

१८ विकलाग वर्ग के लिये उदासीनता या नैराश्य भाव ठीक नही है। हमे उनकी शक्ति, कार्य और क्षमता के वारे मे शकित नही होना चाहिये।

१९ भले ही वालक मन्द गति से सीखे। वह शिक्षा ग्रहण करने के अधिकारी हे।

२० शिक्षण-काल मे आई समस्याओ का समाधान प्रशासकीय विधि से पूर्ण करने की अपेक्षा अच्छा है उसका हल जीवन के प्रसगो मे ढूँढना। (श्रीमती इन्दिरा गाँधी ६ मार्च १९७६ विज्ञान भवन, दिल्ली के भाषण से)। प्रस्तुत चिन्तन की परिसीमा मे विकलाग-शिक्षा का सागोपाग समाधान खोजा जा सकता है। विकलागो के प्रसग मे मूल स्थिति शिक्षण पद्धति, विषयवस्तु की ग्राह्यत्मकता, विकलाग की रुचि एव व्यावसायिक कौशल प्रदान करने मे विधि एव अवस्था की है। शिक्षाविद् इस विचार को मूर्त रूप प्रदान कर सकते है।

सार संक्षेप

ऋग्वेद का कथन कि मनुष्य मे सवकुछ प्राप्त करने की क्षमता है। ऐसा वह शरीर को कार्य मे प्रवृत्त रख कर कर सकता हे। जीवन के समस्त कार्यकलापो का केन्द्र वातावरण एव व्यक्ति स्वय हे। वह इस दृश्य-सृष्टि से परे भी अदृश्य सृष्टि का अनुभव कर साक्षात् करता है।

"दृश्यते अनेन इति दर्शनम्"

ज्ञानानुराग के स्थान पर दृश्यानुराग दर्शन शब्द के अधिक निकट है। आत्म-दर्शन ही दर्शन का निचोड़ है। (आत्मा वारेद्रष्टव्य) विभिन्न उपलब्धियो की प्राप्ति हेतु

मानव सतत प्रयत्नशील रहता है। इस प्रयत्न के पीछे विचार कार्य करते है। विचार-क्षमता के सहारे नैसर्गिक प्रवृत्तियो के वशीभूत पशु जीवन ऊपर उठता हे। वह व्यक्त एव अव्यक्त सम्बन्धो मे समन्वय की टोह लेने लगता हे।

अष्टावक्र जैसे ऋषि ने 'आत्मान विधि' के महान आदर्श की प्रतिष्ठापना की। "सम्पूर्ण सृष्टि-सम्पदा मे श्रेष्ठ आत्मा ही है" सुरेन्द्र की यह वाणी आत्मा को प्रत्यक्ष करो, आत्मा से मिलन का ही सन्देश है। सासारिक एव पारमार्थिक सुखो को साधने का मार्ग ही सच्चा दर्शन है। विकलाग भी त्यागपूर्वक भोग के साथ लोक-सेवोन्मुखी प्रवृत्ति की ओर विकसित हो सकता है, यदि वह अपनी क्षमता मे दृढ विश्वास रखे।

उपनिषदो ने "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति" का दिव्य सन्देश दिया। ससार मे अन्धकार नही अज्ञान है। मनु ने सम्पूर्ण दर्शन के सिद्धान्त को प्रत्येक प्रकार के प्राणी के निमित्त, चाहे वह रुग्ण शरीर ऋषि रैक्व हो या अन्धे सूर, ज्ञान, कर्म एव भावना का निखार समाज के समुचित वृत्त मे ही सम्भव है। विकलाग शिक्षा का लक्ष्य समाज के परिवर्तित होते दृष्टिकोण मे स्वावलम्बी जीवन जीने से है। अथर्ववेदीय विचारधारा कि--चाहे कोई भी क्यो न हो उसे अपनी वर्तमान अवस्था मे ही सन्तुष्ट नही रहना चाहिये। व्यक्ति अपने पुरुषार्थ के माध्यम से आगे बढे।

ऋग्वेद विकलागो के प्रति सद्भावना एव सहृदयता के साथ यह भी अपेक्षा करता है कि समाज उन्हे पुरुषार्थी एव शिक्षित बनाये। मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा के लिये समाज सतत सघर्षशील रहा है। प्रजातन्त्र वह सर्वोत्तम शासन पद्धति है जिसने समाज के व्यवहार एव विचार को मुखरित किया है।

परिवर्तित होते मूल्य विकलाग एव समाज

समाज किसी भी उत्तरदायित्व से अपने को मुक्त नही कर सकता। सार्वजनिक स्थलो पर अभावो का जीवन जीने वाले विकलागो से लेकर समृद्ध जीवन जीने वालो के प्रति मान्यताओ मे जो आज अन्तर आ रहा है उसके पीछे परिवर्तित होते सामाजिक मूल्य ही है। वर्तमान अवस्था मे स्वय अपाहिज इस स्थिति मे आ गया है कि वह भिक्षा या दया का जीवन अब और अधिक नही जी सकता।

विकलाग शिक्षा का सूर्योदय हो चुका है। प्राय प्रत्येक प्रकार के विकलाग के लिए शिक्षा का सुनियोजित स्वरूप उभर रहा है। एक नई अर्थ-व्यवस्था का विकास, जिसमे श्रम के छोटे से छोटे अश का मूल्य आँका जाने लगा है, ने वैयक्तिक विभिन्नता के आधार पर कार्यों के नियोजन को स्वीकार कर लिया है।

शिक्षा का उद्देश्य विकलाग अवस्था मे भी जीवन जीने के आकर्षण का है। "प्रजातन्त्र मे, जहाँ जनहित ही राष्ट्रहित है, वहाँ समाज विकलाग को उन्ही के सामर्थ्यानुसार शिक्षा प्रदान करे, जो जिस अवस्था मे है उसका अधिकाधिक उपयोग कर एक नया जीवन दर्शन उभरे" (जीवनी चन्द्रपति)

विकलाग प्रकार :—

१ शारीरिक विकलागता

२ मानसिक विकलागता

३. सामाजिक कुसमायोजन

सामान्य शिक्षण मे जब बालक आंगिक विकारो के कारण बाधा अनुभव करे साधारणत विकलांग कहा जाता है। मानसिक दृष्टि से विकलांग भी इसी श्रेणी मे आते हैं।

सामान्यत विकलांग शिक्षण के क्षेत्र मे मन्द-बुद्धि बालको की भी पर्याप्त संख्या है। अपस्मारी, यक्ष्मा या अन्य रोगो से पीड़ित एव अपाहिज बालक विद्यालय मे बहुत कम प्रवेश लेते है।

विकलांग शिक्षा अपने उद्देश्य मे स्वावलम्बी जीवन जीने की अनवरत प्रक्रिया है। उद्देश्य (१) आत्मविश्वास (२) रुचि (३) व्यावसायिकता। (४) शारीरिक क्षमताओं का विकास (५) सामाजिक अनुकूलन (६) राष्ट्रीय-भावना (७) नागरिकता (८) साधनो का उपयोग (९) उत्साह-वर्धन (१०) स्वस्थ योजनाओं का संवर्धन एव विकास।

विशेष शिक्षा

विशेष शिक्षा शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एव अपवादी अवस्था मे नियोजित की जाती है। विशेष अध्यापक एव विशेष उपकरणो का उपयोग इसके लिए नितान्त आवश्यक है। इसी प्रकार विद्यालयीय समय विभाग-चक्र भी लचीला एव आवश्यकतानुसार निश्चित किया जाता है। सीखने की क्षमता पर समयावधि एव ग्राह्य-क्षमता पर विषय विस्तार आधारित होता है। साधारण रुग्ण या असाध्य रोगो की अवस्था मे उपचार भी शिक्षा के साथ-साथ चलना लाभदायक होता है।

विकलांग शिक्षा के लिये अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था की भाँति विद्यालय सम्भव नही हैं। सामान्यवस्था मे साधारण विद्यालयो मे विशेष व्यवस्था की जा सकती है, परन्तु विकसित शिक्षण के लिये जिला-स्तर पर विकलांग विद्यालय की स्थापना महत्त्वपूर्ण होगी।

अध्यापक

विशेष शिक्षण प्राप्त अध्यापक की दृष्टि व्यवस्थित, शिक्षण, सुनियोजित प्रभावशाली एव छात्रो की समस्या का निराकरण करने वाला होगा, क्योंकि विकलांगो या अपवादी बालको की समस्याएँ औसत छात्रो से भिन्न होती हैं।

विकलांग होने क कारण

गर्भदोष एव प्राकृतिक कारण—गर्भ पर पडने वाले अप्राकृतिक प्रभाव, फूहड दाइयो द्वारा सन्तानोत्पत्ति के समय असावधानी, शारीरिक रुग्णता, प्राकृतिक प्रकोप, अज्ञान एव शरीर की दोष-पूर्ण प्रकृति विकलांगता का कारण बनती है।

मनुष्य निर्मित—अत्यधिक मादक द्रव्यो का सेवन, गन्दे सीलन-युक्त अस्वच्छ आवास, आपसी प्रतिरोध की हिंसात्मक परिणति, मारपीट, लडाई-झगडे, युद्ध लाभ के लिए खाद्य सामग्री मे मिलावट, औषधियो का नीम हकीमो द्वारा दिया जाना, अप्राकृतिक जीवन आदि इस वर्ग मे आते है।

अर्थाभाव एव अज्ञान—भारत जैसे विशाल देश मे अर्थाभाव एव अज्ञान विकलांगता के प्रमुख कारण रहे हैं। अधिकांश परिवारो का आधे पेट और कुछ लोगो द्वारा अत्यधिक भोजन, सस्ती और गली-सडी खाद्य वस्तुओ का सेवन, बीमारी की अवस्था मे आर्थिक विपन्नता के कारण चिकित्सा न होना, गन्दी और सीलन-युक्त कोठरियो मे

निवास, भाग्य या दोष और भाटा फूंका, अधिक सन्तान प्राय इस प्रकार की विकलांगना का कारण बनी है।

मनोसामाजिक—इस प्रकरण मे उपर्युक्त कारणो के साथ भग्नाशा, हीनभावना, पलायन व अपराध वृत्ति विकसित हो जाती है जो व्यक्तिगत एव सामाजिक समजन दोनो ही दृष्टि से वालक को विकृत कर देती है। आदर्श एव आचरण मे विपमता उत्पन्न हो जाती है।

६ मार्च ७६ को शिक्षाविदो की गोष्ठी इस दिशा मे भी एक प्रकाश है।

II विकलागावस्था स्वरूप एव शिक्षा

प्रजातन्त्र के शिक्षा सिद्धान्तो मे यह एक मौलिक सिद्धान्त है कि प्रत्येक वालक को अपनी क्षमता के अनुसार सीखने का अधिकार है। जहाँ तक शिक्षण का सम्वन्ध है प्रत्येक वालक मे इतनी विभिन्नता पायी जाती है कि अच्छे शिक्षक व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर ही शिक्षण को केन्द्रित करते हैं। अत यही सिद्धान्त विकलागो पर भी घटित होना चाहिये।

वैयक्तिक विभिन्नता और विकलागता

विकलागता केवल शारीरिक न्यूनता ही नहीं है, विभिन्न विकलागावस्था यथा—मानसिक विकलागता, सामाजिक विकलागता, भावात्मक विकलागता आदि विभिन्न स्वरूपो का सम्वन्ध भी विकलाग व्यक्ति की भिन्नता के आधार पर अलग-अलग होगा। कुछ विकलाग अपनी वाह्य न्यूनता की आपूर्ति आतरिक शक्ति विकसित करके कर लेते हैं। कतिपय चक्षुहीन व्यक्ति राष्ट्रीय सेवाओं तक मे पहुँच चुके है। इसके अतिरिक्त भी कई क्षेत्रो मे विकलाग व्यक्ति साधारण वालक से कम नही है। जहाँ तक विभिन्नता का प्रश्न है—पारिवारिक परिस्थिति-परक, सामाजिक स्थिति-जन्य, आर्थिक, आगिक आकृति सम्वन्धी या मनोवौद्धिक आदि विभिन्नता सर्वत्र है, वही वैयक्तिकता है। अत विकलाग भी वैयक्तिक विभिन्नता के आधार पर शिक्षित किये जाने चाहिये, क्योंकि विभिन्नता ही मौलिकता है।

विद्यालय और असामान्य वालक

सीखने की प्रक्रिया मे असामान्य वालक विद्यालय मे समस्या-वालक वन जाते हैं। प्रत्येक विद्यालय मे, प्रत्येक कक्षा मे, किसी न किसी रूप मे ऐसे वालको का एक-दूसरे से भिन्न होना स्वाभाविक है जिसे निम्नलिखित रेखाकन से जाना जा सकता है —

मानसिक रूप से असामान्य वालक—मानसिक असामान्यावस्था का वालक के सीखने की प्रक्रिया पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। प्रतिभावान वालक द्रुतगति से,

सामान्य बुद्धि बालक औसत गति से एव मन्द बुद्धि बालक अत्यन्त मन्द गति से सीखते हैं। समय, पद्धति एव स्मृति की दृष्टि से भी मानसिक असामान्यावस्था वाले बालक कम, साधारण और अधिक समय लेते हैं। संस्कृत साहित्य मे 'पचतत्र' की कहानियो का निर्माण प० विष्णु शर्मा द्वारा राजा के मन्द बुद्धि राजकुमारो को राजनीति की शिक्षा देने के लिए हुआ। पशु-पक्षियो का माध्यम लेकर रचित कहानियाँ मन्द बुद्धि बालको के मानसिक विकास मे अत्यन्त सहायक है।

प्रतिभावान बालको के सम्बन्ध मे नालन्दा एव तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयो का उल्लेख प्राचीन भारत मे स्पष्ट रूप मे प्रकट करता है कि प्रवेश-साक्षात्कार के समय द्वार-पण्डित किस प्रकार मौखिक परीक्षा लेता था। उस समय भारतीय विश्वविद्यालयो मे प्रतिभावान बालक ही प्रवेश ले पाते थे।

मानसिक विचलन-प्रतिभावान एव मन्द-बुद्धि बालक

प्रतिभावान बालक एव मन्द-बुद्धि बालक मानसिक योग्यता का उच्च एव न्यून स्तर दर्शाते है। टरमन बुद्धि लब्धि ७० प्राप्त करने वाले बालको को मन्द-बुद्धि या बुद्धि-हीन की श्रेणी मे लेते है। प्रतिभावान बालको की बुद्धि लब्धि १४० या उससे ऊपर होती है। प्राय बुद्धि लब्धि १०० से ११० प्राप्त करने वाले बालक औसत बुद्धि छात्र कहलायेंगे।

बालक को प्रतिभावान बनाने मे सहायक तत्त्व

प्रतिभावान बालक औसत बालको से विलग दृष्टिगोचर होते हैं। इन पर वातावरणीय प्रभाव भी परिलक्षित होता है। यथा—

(१) शिक्षित माता-पिता (२) घर की स्वास्थ्यप्रद स्थिति (३) परिवार के सुशिक्षित सदस्य (४) घर का शैक्षिक वातावरण (रेडियो, समाचार-पत्र, पत्र-पत्रिकाएँ, घरेलू पुस्तकालय, अध्ययन-कक्ष आदि) (५) माता-पिता द्वारा नियोजित ध्यान व शिक्षण (६) सम-वयस्क बालक (७) आर्थिक सम्पन्नता (८) अवेक्षा (केयर) (९) एक-दूसरे बालक के जन्म मे पर्याप्त अन्तर। यह ऐसी स्थितियाँ है जो बालक को प्रतिभावान बनाने मे सहायक हैं।

बुद्धि लब्धि जाँच क्षेत्र

बुद्धि लब्धि जाँचने के लिए मानसिक बुद्धि-मापन जाँच-पत्रो का उपयोग अत्यन्त व्यापक हो गया है। परन्तु प्रतिभावान बालक को जाँचने के लिए विभिन्न प्रकार के जाँच-पत्र दिये जा सकते हैं। इनमे प्रमुख जाँच क्षेत्र होंगे—(१) शारीरिक आयु (२) मानसिक आयु (३) सामाजिक आयु (४) तर्क आयु (५) शारीरिक अगो का सह-सम्बन्ध (६) वाचन आयु (७) वर्तनी आयु (८) वार्तालाप आयु (९) सामान्य सूचना आयु (१०) ऊँचाई और वजन। वस्तुत प्रतिभावान बालक प्रस्तुत सभी क्षेत्रो मे औसत बाल आयु से अधिक होगा।

मन्द-बुद्धि बालको के घर का वातावरण भी सम्पन्न नही होता साथ ही अस्वस्थ स्थितियो का बाहुल्य भी रहता है। शारीरिक दृष्टि से मन्द-बुद्धि बालको मे दृष्टि-दोष, श्रवण-दोष, व्यवहार-दोष पाये जाते हैं। विद्यालय मे प्राय ऐसे छात्र विलम्ब से पहुँचते

हैं। वे दैनिक कार्य के प्रति उदासीन रहते हैं। किसी भी कार्य मे अरुचि, आलस्य, मन्दगति एव असावधानी ऐसे छात्रो को प्रतिभावान छात्रो से अलग ही दर्शाते है।

चक्षुहीन बालक एव शिक्षा

चक्षुहीन बालक हो या दृष्टि-सम्पन्न, दोनो ही अवस्थाओ मे वैयक्तिक विभिन्नता को ओझल कर शिक्षक के लिए शिक्षण सम्भव नही है। एक अध्यापक को चक्षुहीन बालको की कक्षा का गठन अत्यन्त सावधानी एव चेतनापूर्वक करना चाहिये। शैक्षिक उपकरणो को सुनियोजित करके सीखने हेतु कक्षाध्यापन के सिद्धान्तो का समुचित उपयोग करना चाहिये।

विशिष्ट शिक्षण बिन्दु

१ **क्रियाशीलन**—चक्षुहीन बालक के जीवन मे क्रियाशीलन सिद्धान्त द्वारा शिक्षण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। चक्षुहीन बालक स्वय करके सीखना चाहता है। वह स्पर्श, श्रवण एव नासिका (गन्ध) के माध्यम से किसी वस्तु के अन्तिम स्वरूप का निर्णय करके प्रसन्नता का अनुभव करता है। चलना, उठना-बैठना, विचार-विमर्श, आदि क्रियाओ मे प्रत्येक स्तर पर क्रियाशीलन के साथ अध्यापक की देख-देख रखना अच्छे अध्यापक की विशेषता है। शारीरिक परिपक्वता के साथ-साथ बालक मे स्वय कार्य करने के प्रति आत्मविश्वास का विकास होता है एव अशुद्धियाँ शनै शनै कम होती जाती है। चक्षुहीन क्रियाशील रहते-रहते वस्तु मे जहाँ आनुपातिक स्पष्टता अनुभव करने लगता है वहाँ वह अध्यापक की सहायता से उसमे सौन्दर्य का भी अनुभव करने लगता है।

चक्षुहीन बालको को सक्रिय रखने के साथ अध्यापक उन्हे उत्साहित भी करता रहे जिससे बालक अन्य कार्यो मे भी सहर्ष अपना योग देने लगे।

२ **वैयक्तिकता एव व्यक्तिगत निदेशन**—चक्षुहीन बालको की वैयक्तिकता का सम्मान भी अध्यापक को पूर्णरूपेण करना चाहिये। चक्षुहीन चाहे वह सामान्य विद्यालय मे हो या अन्ध विद्यालय मे, उसकी आयु, उसके घर का वातावरण, उसके सामाजिक परिवेश एव उसकी वैयक्तिक रुचि को शिक्षण काल मे अध्यापक आधार माने।

व्यक्तिगत निदेशन की पूर्ण व्यवस्था तभी सम्भव है जबकि चक्षुहीन विद्यालय मे दस छात्रे एव एक अध्यापक का अधिकतम अनुपात हो। बुद्धि एव कौशल मे भी एक बालक दूसरे बालक से भिन्न होता है। व्यक्तिगत निदेशन की आवश्यकता कभी भी हो सकती है। अत अध्यापक को चाहिये कि अपनी कक्षा के बालको की वैयक्तिक आवश्यकता पूर्ति हेतु सचेष्ट रहे।

३ **सवेदी प्रतिबोध एव तथ्य पक्ष**—चक्षुहीन बालक किसी भी वस्तु के तथ्य-पक्ष को प्राप्त करने मे प्रारम्भिक अवस्था मे अपने को अक्षम पाता है। अत अध्यापक का यह दायित्व है कि वह बालक की सवेदी प्रतिबोध-शक्ति को विकसित करे।

स्पर्श—वस्तु की कठोरता, कोमलता, रचना, सतह, माप, आकार-प्रकार, भार, वस्तुओ के लघु मूर्त्त रूप चक्षुहीनो के शिक्षण मे सरल उपकरण होते है। इसी विधि से सिक्के तक की पहचान चक्षुहीन सही कर लेते हैं।

श्रवण—विभिन्न ध्वनियो मे अन्तर, चलते समय पैरो की आहट से पहचान, ध्वनि सकेतो द्वारा बात समझना।

स्वाद—फल, शाक सब्जी, अनाज आदि की पहचान मुख्यत स्वाद एव गंध दोनो से ही सम्भव है परन्तु अध्यापक को इतना ध्यान रखना चाहिये विकृत या सड़ी-गली वस्तु बालको को नही दें। इनका ज्ञान देना ही हो तो केवल मूल स्वस्थ रूप मे ही।

चक्षुहीन एव अध्यापक

चक्षुहीन के शिक्षण मे अध्यापक का दायित्व बहुत बढ जाता है। अध्यापक अपने निदेशन मे एकरूपता का ध्यान रखे। विभिन्न वस्तुओ की पहचान कराते समय एकरूपता दर्शाते हुए निदेशन देना चाहिये। "अनुभव की इकाइयो" को विकसित करते जाना एव उनमे सुनिश्चित पृष्ठभूमि का विकास करना श्रेयस्कर है। अध्यापक पूर्वानुभव पर अग्रिम ज्ञान को आधारित करे।

जिज्ञासा का विकास

स्वाभाविक रूप से यह स्वीकार करना पडेगा कि चक्षुहीन का जीवन एक सीमा से अधिक विस्तृत नही हो सकता। उसे नियन्त्रित न भी कहें तो सीमित जीवन व्यतीत करना ही पडता है। अध्यापक बाल जिज्ञासा को विकसित करके उसका वातावरण से समजन करें। इस हेतु अध्यापक एक सुनिश्चित कार्यक्रम चक्षुहीनो के समक्ष उनके अनुभव के विस्तार हेतु अवश्य करें। इसी प्रकार विद्यालयीय वातावरण मे चक्षुहीन के विविध अनुभवो को विकसित करने हेतु भ्रमण, सम्पर्क आदि को दो रूपो मे नियोजित करें :—

I स्वय चक्षुहीन का अनुभव विस्तृत करने हेतु नियोजन। घर, विद्यालय एवं स्थानीय क्षेत्र के प्रमुख-प्रमुख स्थलो से परिचित कराना।

II निदेशित भ्रमण जो बाल-अनुभव को विस्तृत करने हेतु हो, इसमे चक्षुहीन बालको को देश-विदेश मे भ्रमण हेतु ले जाया जा सकता है।

चक्षुहीन बालको हेतु पाठ्यक्रम

सामान्य बालको की ही भाँति चक्षुहीन बालको की मूलभूत आवश्यकता एव भावी उपलब्धियो को केन्द्रित कर पाठ्यक्रम की योजना का निर्माण किया जाना चाहिये। चक्षुहीन बालको हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय निम्नलिखित बिन्दुओ का ध्यान रखना समीचीन होगा।

१. चक्षुहीन बालक
२ शैक्षिक उपकरण
३. विषय वस्तु
४ अभिवृत्ति
५ सूझ
६ सामाजिक समंजन
७. व्यावसायिक कौशल

चक्षुहीन शिक्षा का सीधा उद्देश्य बालक को अपने वातावरण मे परिचित कराकर उसके उपयोग का ज्ञान कराना है। बालक चक्षुहीनता की स्थिति मे दृश्य तत्त्वो का सीधा लाभ नही उठा सकता, यथा रगो का ज्ञान, प्रकृति का सौन्दर्य एव सामाजिक व्यवहार इन्हे वह अपनी अन्य सवेदी प्रतिबोधक अवस्थाओ को जाग्रत करके ही प्राप्त करता है।

चक्षुहीन पाठ्यक्रम एव शिक्षाविदो के विचार

शिक्षाविदो की धारणा है कि चक्षुहीन पाठ्यक्रम दो प्रकार का होना चाहिये। कतिपय शिक्षाविद् सामान्य विद्यालय के पाठ्यक्रम को ही उपयुक्त समझते है। उनका मत है कि जब चक्षुहीन को अपने जीवन-यापन हेतु यथार्थ सृष्टि के सम्पर्क मे ही आना है तो यथार्थ से परे शिक्षा क्यो दी जाये। द्वितीय विचार-धारा के पोषक चाहते है कि पाठ्यक्रम मे अतिरिक्त व्यवस्था विशेष शिक्षा के रूप मे रहे। शिक्षण मे विशिष्ट विषय वस्तु हो, एव निश्चित व्यवस्था एव पद्धति मे चक्षुहीन पाठ्यक्रम सुनियोजित रहे। तृतीय विचार-धारा वाले विशिष्ट उपकरणो के माध्यम से विशेष पाठ्यक्रम के शिक्षण पर चक्षुहीन बालको हेतु पाठ्यक्रम सरचना की व्यवस्था को उत्तम मानते है।

श्रवण विकलागता एव शिक्षा

शैक्षिक क्षेत्र मे श्रवण विकलागता मे अभिप्राय है, मौखिक अभिव्यक्ति ग्रहण मे बाधा होना। भारत मे सामान्यत शिक्षण की प्रक्रिया मे मौखिक विद्या का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। "मौखिक विद्या भारतीय विद्यालयो मे शिक्षण की रीढ है।"

—(चन्द्रपति)

श्रवण विकलागता का वर्गीकरण

साधारणत श्रवण विकलागता अनेक रूपो मे जानी जाती है। शैक्षिक दृष्टि से उत्पन्न समस्याओ के आधार पर श्रवण विकलागता का वर्गीकरण निम्नलिखित बिन्दुओ के अन्तर्गत सम्भव हे

१ बधिर—जो जन्म से ही पूर्णत बधिर हैं।

२ आंशिक बधिर—जो जन्म से अति क्षीण श्रवण-शक्ति के साथ उत्पन्न हुए है एवं बीमारी या दुर्घटनावश श्रवण-शक्ति क्षीण हो गई हे।

३ ऊँचा सुनने वाला बालक—ऊँचा सुनने वाले बालको मे श्रवण-शक्ति दोषपूर्ण होती है, फिर भी यह बालक बिना श्रवण-सहायक के सुन सकते है।

शिक्षण को सरल बनाने हेतु बधिर विकलागो को दो प्रमुख रूपो मे स्वीकार किया जाता है।

बधिर विद्यालयो ने भी शिक्षण वर्गीकरण किया है। इस वर्गीकरण से श्रवण विकलाग बालको को उसी क्रम से कक्षा प्रवेश दे दिया जाता है। श्रवण शक्ति मापक यत्र की सहायता से जिसकी गणना अशो मे होती है, (सुनने मे कम समय कम अश, अधिक समय अधिक अश)

१ श्रवण- सहायक से सुन सकने वाले बालको का वर्ग। इनकी श्रवण-शक्ति २० से ४० अश तक रहती है। इन बालको पर विशिष्ट रूप से ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता

नही रहती है। परन्तु ३० से ४० अश श्रवण शक्ति वालो को वाणी के प्रयास भी दिये जाते हैं एव ये बालक मुक्त रूप से श्रवण-सहायक का प्रयोग करते है।

२ दूसरा वर्ग ४० से ८० अश तक श्रवण शक्ति का रहता है। इसमे ऐसे बालक होते है जो निकट से भी वर्ग वार्ता को नही सुन पाते। इन बालको को शिक्षित करने हेतु दृश्य विद्या का सुनियोजित उपयोग किया जा सकता है। इसी वर्ग मे ६० अश से ऊपर की श्रवण शक्ति वाले बालको को विशिष्ट तकनीक का सहारा लेना पडता है। ऐसे बालक प्रारम्भिक अवस्था मे सुनने एव बोलने की प्रक्रिया मे सर्वथा मन्द रहते है।

३ तीसरा वर्ग ७५ अश से अधिक श्रवण शक्ति वाले है, जो किसी भी प्रकार नही सुन पाते है। ऐसे बधिर छात्रो हेतु विशेष उपकरणो की सहायता ली जाती है। इनके लिए शिक्षण मे विशेषज्ञ अध्यापको का प्रमुख कार्य रहता है। इस प्रकार के छात्रो हेतु वैज्ञानिक उपकरणो का प्रयोग भी लिया जाता है।

शैक्षिक प्रकरणान्तर्गत बधिर छात्रो मे श्रवण-दोष का अवस्था क्रम मे भी अध्ययन किया जाकर बधिर छात्र को शिक्षण प्रदान करना लाभकारी रहता है।

श्रवण-शक्ति मापन विधि

श्रवण-शक्ति मापन कार्यक्रम को दो प्रमुख खण्डो मे विभक्त किया जाता है :

श्रवण-शक्ति मापन विधि

औपचारिक विधि | अनौपचारिक विधि

औपचारिक विधि

औपचारिक जाँच प्राय मनोवैज्ञानिको द्वारा या बधिर शिक्षा-विशेषज्ञो द्वारा नियन्त्रित वातावरण मे होती है एव अनुवर्तन जाँच हेतु अन्तराल से कार्यक्रम को नियोजित किया जाता है। पूर्णतः विश्वस्त विधि विद्युत् श्रव्य यन्त्र है। इसके द्वारा ध्वनि तरगो की गतियो को मापा जाता है। वाणी को समझने के लिए ध्वनिगति सतह पर श्रव्य-यन्त्र की सामान्यावस्था मे ५०० से २००० तक बारबारता अकित होनी चाहिये विद्युतीय उपकरणो मे कतिपय उपकरणो का प्रयोग शिशु अवस्था के बालको हेतु करना समीचीन नही होगा।

अनौपचारिक विधि

१ शोर को सुनकर अन्तर कर सकना या यातायात हेतु मोटर, बस, स्कूटर आदि की आवाज पहचान सकने की अवस्था।

२. पशु-पक्षियो की बोली की पहचान करना।

३ वार्तालाप जाँच—छात्र अध्यापक मे पाँच मीटर की दूरी से वार्तालाप करे। साधारणत यह जाँच सम्भावना के वृत्त मे ही रहती है परन्तु इसको किसी भी अवस्था के बालक के साथ किसी भी अवसर पर अपनाया जा सकता है।

इसी जाच के साथ ओष्ठ द्वारा मन्द फुसफुसाहट द्वारा सख्या, नाम आदि की सूची की पुन आवृत्ति रहे। यह जाच एक मीटर के अन्तर से हो। इसे भी वार्तालाप जाँच के अन्तर्गत लिया जा सकता है।

४. घडी ध्वनि की टिक-टिक से जाँच—साधारण घडी की तीव्र टिक-टिक ध्वनि को वधिर वालक के कान से सटाकर जाँच की जा सकती है। परन्तु वहुधा परीक्षक घडियो मे एकरूपता नही रखते एव घडी प्रत्येक जाँच के समय वदली हुई होती है। इससे ध्वनि गति मे कभी मन्दता एव कभी तीव्रता के कारण सही जाँच नही हो पाती।

५ धातु ध्वनि—इसके अन्तर्गत किसी भी धातु पात्र पर ध्वनि की जाती है। कई वार सिक्के की ध्वनि भी इस जाँच हेतु प्रयुक्त की जाती है।

श्रवण विकलागता के प्रमुख कारण

श्रवण-यन्त्र मे विकार उत्पन्न होने से यह दोप उत्पन्न होता है। अधिकाशत यह ज्ञात करना अति-दुष्कर है कि श्रवण-दोप का आधारभूत कारण क्या है। फिर भी वैज्ञानिको ने श्रवण विकलागता के कारणो का पता लगाया है। जैसे—

१. गर्भावस्था मे श्रवण विकार—रोग, विष, शराव एव अन्य गम्भीर कारणो से श्रवण-शक्ति नष्ट हो जाती है। दूपित भोजन भी विकार का कारण वन जाता है।

२. वंश परम्परागत प्रभाव—वधिर के परिवार मे वश परम्परा से वधिर व्यक्तियो का क्रम रहा है।

३. असुरक्षित प्रसव-वच्चा होते समय उत्पन्न होने वाले दोप के कारण भी वधिरावस्था उत्पन्न हो जाती है। रक्त-प्रवाह का विकृत सचार, रक्त मे श्वेताणु एव रक्ताणु का उचित अनुपात मे न होना, प्राणवायु (आक्सीजन) का अभाव आदि कारण श्रवण के सुकोमल यन्त्र के विकास मे अवरोध उत्पन्न कर देते हैं जिससे श्रवण-वाधा उत्पन्न हो जाती है।

जन्म के पश्चात् श्रवण-दोष

वीमारी, मोतीभरा, खसरा, चेचक, निमोनिया, कुत्ता-खाँसी, वात ज्वर, इन्फ्लुएन्जा आदि भी श्रवण शक्ति के नष्ट होने के कारण होते हैं। कर्ण मध्य पटा घाव, एव मवाद भी श्रवण-क्षीणता का कारण वन सकता है। कतिपय मस्तिष्क विकार भी श्रवण शक्ति के स्थायी या अस्थायी रूप मे नष्ट होने के कारण वन जाते है। वृद्धावस्था मे भी शारीरिक क्षमता के साथ-साथ श्रवण-ध्वनि क्षीण होती चली जाती है।

शिक्षाविदो की धारणा है कि मनोवैज्ञानिक एव सवेदात्मक पक्ष भी श्रवण शक्ति को क्षीण करने मे प्रभावशाली कार्य करता है। श्री अरनोल्ड गेसल एव सी एस. अमट्रडा ने एक अध्ययन के आधार पर वधिर वालकों का वर्गीकरण किया है।

गेसल द्वारा वर्णित वधिर के लक्षण

गेसल ने पाँच प्रमुख लक्षणो की चर्चा मे वालको एव शिशुओ की वधिरावस्था का उल्लेख किया है। जिनका स्वरूप निम्नलिखित हैं —

१ सुनना—इसमे वालक ध्वनि का सामान्य अन्तर नही कर पाते हैं। वे सुने हुए कथ्य का प्रति उत्तर देने मे पूर्णत सक्षम नही है, शोर के विरोध मे शब्द-ध्वनियाँ अथवा प्रतिकार मे ध्वनियाँ करना।

२ **घोष एव ध्वनि**—तात्पर्य यह है कि एकत्व रूप मे ध्वनि ग्रहण करने की स्थिति क्या है, हँसी या सामान्य ध्वनि खेलो को ग्रहण करने की क्षमता जिसमे ध्वनि तरगो को भी जाना जा सकता है। पद ध्वनि के अन्तर को अनुभव करना, प्रसन्नता को अभिव्यक्त करना, आदि।

३ **दृष्टि चैतन्य**—दृष्टि चैतन्य से अभिप्राय है, ध्यान का सतर्क रहना इसी मे आने-जाने की अवस्थाओ मे त्वरा प्रकट करना या खेलते समय तीव्रता से अनुकरण कर सकने की स्थिति।

४ **सामाजिक ग्रहणीयता**—शिशु विद्यालयो के ध्वनि खेलो की अवस्थाओ के परिणाम या बालक द्वारा अस्पष्ट शब्दो की जानकारी चाहना। उत्सुक एव अनुपयुक्त सामाजिक अवस्थाओ का प्रभाव, सन्देहास्पद, सावधानी, एव सहयोग के अवसर आदि के साथ यह भी देखना चाहिये कि वधिर बालक अपने को मिलने वाले स्नेह एव प्रशसा को किस सीमा तक ग्रहण करता है।

५ **सवेगात्मक व्यवहार**—तनाव, विरोध, स्वय को समझने मे अक्षम रहना, चिढाना, आक्रोश, सूझ से काम न लेना आदि अवस्थाएँ ऐसी है जो समाज-व्यवहार के साथ जुडी हुई है।

प्रस्तुत सन्दर्भ मे अध्यापक वधिर की पहचान सहज कर सकता है। किसी भी ध्वनि पर ध्यानाकर्षण की अवधि, ढोल, गाजे-बाजे, वाहनो की आवाज एव सामान्य आदेश आदि पर किस तरह, कितने विलम्ब से सक्रिय होता है। सामान्य वधिरावस्था अनौपचारिक परिवेश मे अध्यापक बालको के सम्पर्क मे आकर कर सकता है। विशेष वधिरावस्था हेतु चिकित्सा-केन्द्रो से सम्पर्क किया जाना चाहिये।

III शारीरिक विकृति

विद्यालय मे अनुकूलन न कर पाने की दृष्टि से कई बालक समस्या-बालक बन जाते है। विकलागावस्था से युक्त बालक आकस्मिक दुर्घटना, चोट, पक्षाघात आदि के फलस्वरूप औसत छात्रो की श्रेणी से निकल जाते है। विकलागावस्था मे कौन छात्र कब आ जावेगा यह नही कहा जा सकता। ऐसे छात्रो को विद्यालय मे अनुकूलन की कठिनाई आती है।

प्रमुख शारीरिक विकृतियो के विचार से विकलाग अवस्थाओ का वर्गीकरण निम्न-लिखित प्रकार से किया जा सकता है—

प्रमुख शारीरिक विकृतिया	
	१ प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ
	२ मस्तिष्क पर आघात
	३. बाल पक्षाघात
	४. पैशिक दुष्पोषण
	५ अन्य

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ—यह विकार प्रमस्तिष्कीय क्षेत्र के चालक स्थलो पर घाव या विकार उत्पन्न होने की स्थिति मे उत्पन्न होता हे । इसे जटिल नाडी पेशिक विकार की सज्ञा भी दी जाती हे । अधिकाश विकार-ग्रस्त व्यक्ति जन्म की असावधानियो के एव गर्भ-काल मे उत्पन्न असामान्यावस्था (जैसे प्राणवायु (आक्सीजन) का अभाव, अचानक पैदा होने की स्थिति, आघात या अति रक्त-स्राव आदि) का प्रभाव हे । उसके कारण मुँह या अन्य शारीरिक अगो पर लकवे के लक्षणो के अतिरिक्त कम्पन, शरीर का टूटना या अकडना, सिहरन, शरीर के अगो मे गति भग आदि लक्षण प्रकट होते हे । यही प्रभाव बालको मे मन्द बुद्धि विकार, कर्ण दोष विकार, वाणी विकार या दौरे आना जैसे विकारो को उत्पन्न करता हे ।

पेशिक क्षीणता मे प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ बडी भयकर विकारावस्था हे ।

प्रमस्तिष्कीय विकार एव शिक्षण—प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ दोष से युक्त बालको हेतु शिक्षा व्यवस्था दुष्कर हे, क्योकि उस विकार मे उग्रता एव विविधता इतनी अधिक है कि साधारणत. कोई एक मार्ग अपनाना सम्भव नही हे ।

इस रोग की दो अवस्थाएँ है —

(अ) उपचार से सम्बन्धित ।

(आ) विशिष्ट शिक्षण ।

उपचार से सम्बन्धित कार्य चिकित्सक का है । विशिष्ट शिक्षण मे वाक् अशक्तता को दूर करने हेतु मनोवैज्ञानिक द्वारा उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करना होता है । विशेष विचारणीय पक्ष, जिसे अध्यापक या अभिभावक अपनाएँ, वह हे बालक को किसी भी प्रकार अकर्मण्यता की अवस्था मे नही आने देना । यही नही अपितु शक्ति भर ऐसे बालक को अपने कार्य के लिए स्वय श्रम करने देना चाहिये । आत्म-सम्मान एव स्वावलम्बन की अभिवृत्ति को विकसित करने के लिए साधारण अभ्यास कार्य भी दिया जा सकता है । शारीरिक पगुता का यह भी एक कारण है कि माता-पिता एव अध्यापक प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित बालक को अति सहायता देते हैं जिससे उसमे पगुता और अधिक बढ़ जाती है । ऐसी दिशा मे शिक्षण असम्भव है ।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव शैक्षिक अनुकूलन—प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित बालक की अपनी विशिष्ट अशक्तता को पूर्ण करने की आवश्यकताएँ होती हैं, जैसे–निर्बल पेशियो को शक्ति प्रदान करना, पेशियो मे समन्वय, पेशियो मे सक्रियता लाने हेतु व्यायाम, ताप द्वारा चिकित्सा, पौष्टिक भोजन सामग्री मे सुधार करना आदि । शिथिल या ढीली माँस पेशियो को सशक्त करना एव, तनाव या खिचाव से युक्त पेशियो को नर्म बनाने हेतु व्यायाम एव औषधि दोनो का ही प्रयोग सम्भव है । सामान्य रोग से ग्रसित बालको को औसत बालको से मिलने-जुलने की भी छूट दी जाये जिससे वे स्व-प्रयास से पेशिक तनाव या दुर्बलता को दूर कर सके । वाक् विकास हेतु विभिन्न उपकरणो का उपयोग भी किया जा सकता है । विकृत अगो मे यदि चिकित्सा के पश्चात् सुधार सम्भव न हो तो इन्हे विशिष्ट कक्षाओ मे उपकरणो के माध्यम से शिक्षण हेतु प्रवेश दे देना उपयुक्त होगा, परन्तु जब तक उपचार सम्भव हे उस समय तक चिकित्सा को रोकना ठीक नही होगा । क्योकि उपचार के अभाव मे प्रभावी अग जड या असहज हो जाते हे–जिसमे शैक्षिक अनुकूलन मे बाधा उत्पन्न होती हे । मन्द दोष से युक्त बालको को विकलागो की मानसिक उपचार हेतु चलने वाली विशेष कक्षा मे शिक्षण देना चाहिये ।

शैक्षिक अनुकूलन हेतु विकलागो की नियमित जाँच तथा निर्देशानुसार शिक्षण मे परिवर्तन होते रहना उचित हैं।

मस्तिष्क पर आघात—मस्तिष्क पर आघात से प्रभावित वालक एव प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रमित वालक मूलत एक ही है। दोनो ही मस्तिष्क के आघात से प्रभावित होते हैं। अन्तर की दृष्टि से निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट भेद जाना जा सकता है।

मस्तिष्क पर आघात—आकस्मिक दुर्घटना या अन्य किसी कारण से मस्तिष्क पर होने वाले आघात का प्रभाव—स्मृति दोष, झुझलाहट, कल्पना दोष, अधिगम की समस्या, व्यवहार, विपयक दोप आदि उत्पन्न करता हे। मस्तिष्क पर साधारण आघात का प्रभाव अत्यधिक नही होता और न ही किसी अग विशेप के सक्रिय होने मे वाधा ही आती हे। फिर भी कई वार निरर्थक उद्दीपन पर ध्यान रुक जाता हे। ऐसी स्थिति मे वालक यत्र-तत्र फैले प्रभावो को स्वीकार करते चले जाते ह, सम्पूर्ण को जानने के प्रति ध्यान हट जाता है। वालक उद्दण्ड एव अस्थिर-चित्त हो जाते है। जिस वालक के मस्तिष्क पर आघात हो उसे अतिरिक्त सावधानी के साथ ग्रहण करना चाहिये।

मस्तिष्क-आघात एव शिक्षण में सावधानी—मस्तिष्क-आघात से प्रभावित वालको मे पहचान की दृष्टि से अक्षर, चित्र, शब्द, गिनती, प्रत्यक्ष ज्ञान आदि मे अस्तव्यस्तता उत्पन्न हो जाती है। प्राय यह भ्रान्त धारणा शिक्षक वर्ग मे उत्पन्न हो गई है कि मस्तिष्क आघात से युक्त वालक को शिक्षित करना असम्भव हे।

शिक्षण प्रदान करते समय यह निर्णय करना उचित होगा कि क्या वालक मस्तिष्क चोट से आक्रान्त हैं। तत्पश्चात विशेषज्ञ एव मनोवैज्ञानिको द्वारा प्राप्त निर्देशित पद्धति से ही शिक्षण प्रदान करना श्रेयस्कर होगा। अध्यापक हेतु यह समीचीन हे कि वह अधिगम के अनुकूल शिक्षण प्रविधियो को अपनाये।

वाल पक्षाघात—प्राय वालावस्था मे ५ से ६ वर्ष की आयु तक इस वीमारी का भय रहता है। यह रोग अत्यन्त सूक्ष्म विषाणुओ द्वारा फैलता है। पोलियो से सघर्ष करने वाले कीटाणु इन विषाणुओं[1] को नाडी कोशिकाओ पर अधिकार नही करने देते। अत अधिकाश रोगी इस वीमारी से प्रभावित नही होते या शीघ्र ही स्वस्थ हो जाते है। कई वार पक्षाघात का साधारण-सा दौरा पडता हे परन्तु उसे पूर्ण पक्षाघात नही कहा जा सकता। साल्कवैक्सीन के निरन्तर प्रयोग से इस रोग के दुष्कर प्रभावो को रोकने का प्रयास किया गया है।

पक्षाघात रोकने की दिशा मे टीके लगाने का अभियान निकट भविष्य मे मानव जाति को इस रोग से मुक्ति दिला देगा। प्राय पक्षाघात या लकवे के रोगियो की मानसिक शक्ति पर प्रभाव नही पडता जिससे सीखने की दिशा मे बुद्धि यथावत् रहती है।

वालपक्षाघात एवं शैक्षिक समंजन—पक्षाघात की स्थिति मे शैक्षिक समजन का क्षेत्र सफल शिक्षण एव स्वावलम्वन का निर्माण करना है। पक्षाघात मे शारीरिक निष्क्रियता पर मनोवल उत्पन्न करने वाली अभिवृत्तियो का विकास करना है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन के पश्चात् ही वाल पक्षाघात के लिए शिक्षण की व्यवस्था करना श्रेयस्कर होगा।

---

१ विषाणुओं के नाम १—लैंसिन २—ल्योन ३—ब्रुनहिल्ट

अध्यापक एव बाल पक्षाघात—विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य करने वाले अध्यापक को यह सावधानी रखना उचित होगा कि शारीरिक विकृतियो के दुष्परिणामो का जैसे अति चिन्ता या निष्क्रियता के प्रति क्षोभ या ग्लानि के विचार, सामाजिक भेद-भाव या तिरस्कार की भावना, अपमान, हतोत्साहता एव अन्य इसी प्रकार की हीन हताशा वृत्ति को पक्षाघातग्रस्त बालको मे उत्पन्न न होने दे।

अध्यापक का यह भी दायित्व है कि वह पक्षाघातग्रस्त बालक के साथी, अभिभावक, माता-पिता को सुझाव दे कि वे अत्यन्त सद्भाव अभिवृत्ति को ही अपनाये। शिक्षण प्रदान करते समय पक्षाघातग्रस्त बालक की शेष क्षमताओ के ही अन्तर्गत अध्ययन कार्यक्रमो की अधिकतम उपयोगिता के साथ व्यवस्था करे, जिससे बाल पक्षाघात रोगी अपनी शेष शक्तियो का विकास जीवन विषयक कार्यों मे लगा सके।

पेशीय कुपोषण प्रभाव-ग्रस्त बालक—साधारणत यह रोग एक बार बालक पर प्रभाव जमा लेने के पश्चात् घातक सिद्ध होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस रोग मे शारीरिक दुर्बलता बनी रहती है जिससे यह रोग बालक पर शीघ्रता से आक्रमण कर सकता है। प्राय तीन वर्ष से तेरह वर्ष तक की आयु वाले बच्चो को इससे ग्रसित होने की सम्भावना होती है। बीमारी की भयकरता इससे भी जानी जाती है कि यदि पाँच वर्ष से पूर्व की अवस्था वाले बालक को यह बीमारी हो जाये तो वह प्राय पाँच वर्ष के अन्दर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मुख्यत यह ऐच्छिक पेशियो का रोग है। विटामिन 'ई' के अभाव मे इस रोग का प्रकोप बालक पर बढ जाता है।

शैक्षिक समजन एव पेशीय कुपोषण—शैक्षिक समजन की दृष्टि से बालक मे अत्यधिक क्षीणता आ जाती है। इस रोग का प्रभाव इतनी मन्दगति से होता है कि एका-एक पता नही लगता। अत शिक्षण की समस्या जटिल हो जाती है। देखते-देखते ज्यो-ज्यो रोग बढता है बालक लडखडाने लगता है, माँसपेशियाँ क्षीण होने लग जाती है, दुर्बलता इतनी अधिक बढ जाती है कि बालक का चलना-फिरना तक बन्द हो जाता है। शारीरिक शक्ति के क्षीण होने से शैक्षिक समजन मे बाधा ही नही अपितु ग्रहण क्रिया ही समाप्त हो जाती है।

पेशीय कुपोषण एव अध्यापक—अध्यापक एव शिष्य अपने को इस दिशा मे असहाय पाते हैं। बालक की आँखें बेबस निहारती हैं, रोगी बालक की देह चारपाई तक सीमित रह जाती है। ऐसे रोगी को शिक्षण अभ्यास से पूर्व चिकित्सा की आवश्यकता रहती है। कृत्रिम फेफडे, कृत्रिम श्वसन-यन्त्र एव पालने के उपयोग के साथ-साथ शिक्षक को भी अपने कार्य मे सक्रिय रहना चाहिये। यह उचित होगा कि रोगी बालक को घर पर ही या चिकित्सा-लय मे शिक्षणाभ्यास प्रदान किया जावे। आवश्यकतानुसार पहिएदार कुर्सी का भी प्रयोग किया जा सकता है।

अध्यापक अभिभावको से सम्पर्क बनाए रखे एव यह ध्यान रखे कि पेशिक क्षीणता कही मस्तिष्क पर प्रभावी न हो जाये। पेशिक कुपोषण मे शिक्षण अति दुष्कर है।

जारठ्य ग्रस्तता—मूलत यह रोग सुषुम्ना मे जटिल गुत्थियाँ पड जाने से होता है। इस रोग मे तन्त्रिका प्रभावित होती है, जिससे रक्षात्मक झिल्ली निर्जीव हो जाती है। यह रोग तरुणो पर आक्रमण करता है। जारठ्य रोग मे ग्रसित व्यक्ति के हाथ-पैरो मे झनझनाहट एव पीडा के साथ भारीपन अनुभव होने लगता है। जारठ्यग्रस्त व्यक्ति की

आँखो के आगे धुँआ-सा छा जाता है। हाथ-पैरो मे पक्षाघात की भी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। साधारण अवस्था मे रोग घटता एव बढता रहता है, परन्तु शारीरिक क्षीणता अनवरत होती रहती है। यह बीमारी बीस-पच्चीस वर्ष तक चल सकती है, चिकित्सा इसमे असम्भव सी प्रतीत होती है। उदर के अधो भाग मे प्रतिवर्त बना रहता है, जबकि ऊपरी उदर भाग मे प्रतिवर्त की कमी बनी रहती है।

जारठ्यग्रस्तता एव शैक्षिक समजन—इस रोग से ग्रसित व्यक्ति की समस्या बालक की समस्या नही है। फिर भी अध्यापक को इस रोग से ग्रसित बालक का शैक्षिक समजन विशेष चिकित्सक के सुझाव पर करना चाहिये यद्यपि जारठ्यग्रस्तता के सफल उपचार मे अभी सफलता नही मिली है। पोटाशियम की कमी एव प्रोटीन की शरीर मे अत्यधिकता भी इसका कारण हो सकती है। प्राय सम्पूर्ण चिकित्सा इस रोग मे लक्षण पर ही आश्रित है। सीधे बीमारी पर चिकित्सक औषधि का उपयोग नही कर पाता। यही कारण है कि शैक्षिक समजन मे उपचार समय ही व्यतीत करता है। इसमे रोगी की जिज्ञासा, उत्साह एव कार्यक्षमता शनै.-शनै मन्द होती जाती है। अधिकाश मृत्यु का कारण इस रोग मे अन्त प्रवाही सक्रमण है। प्राय जारठ्य रोग मे ग्रसित व्यक्ति अन्तत मृत्यु को ही प्राप्त होता है।

अध्यापक इस स्थिति मे जारठ्यग्रस्त बालको को व्यायाम, विश्राम एव मालिश जैसे अभ्यासो का सहारा शिक्षण प्रक्रियान्तर्गत दे तो उत्तम होगा।

मिरगी रोग से ग्रसित बालक

तन्त्रिकाओ की व्याधियो मे मिरगी एक प्रमुख रोग है। इसका स्पष्ट लक्षण अनैच्छिक दौरे पडना है। प्राय ये दौरे अनियन्त्रित होते हैं। इन्हे सुगमता की दृष्टि से चार श्रेणियो मे विभक्त किया जा सकता है—

प्रथम—तीव्र दौरे—मिरगी की यह अवस्था सम्पूर्ण शरीर की चेतना लुप्त कर देती है। हाथ-पैरो मे तेज झटके लगते रहते है। शरीर की अन्य पेशियाँ भी इन झटको से प्रभावित दीख पडती है।

द्वितीय—मन्द दौरे—मिरगी की इस अवस्था मे हलके दौरे पडते है। चेतना का सामान्य लोप होता है। पेशियो पर भी साधारण झटके देखे जा सकते हैं।

तृतीय—फॉकल—मिरगी के इन दौरो मे चेतना का लोप नही होता। व्यक्ति अपना सिर घुमाता रहता है। हाथ-पैर या अगुलियाँ हिलती रहती है।

चतुर्थ—अनवरत क्रम से मिरगी—मिरगी के दौरे अत्यल्प अन्तर से आते है। व्यक्ति इन दौरो मे हुई घटनाओं को भूल जाता है। ये दौरे अत्यधिक व्यापक हो जाते है एव प्रभावी व्यक्ति विकल रहता है। मस्तिष्क आघात के कारण भी यह रोग सम्भव है।

मिरगी एव सावधानी—विगत दो दशको मे मिरगी रोग निवारणार्थ अभूतपूर्व प्रगति हुई है। मस्तिष्क मे विद्युत लहरो की असामान्यावस्था साधारण व्यक्ति से मिरगी-ग्रस्त मे अधिक होती है। 'विद्युत चुम्बकीय आलेखन' द्वारा प्रमस्तिष्कीय लहरो का पता लगाया जा सकता है। यह रोग वशक्रम मे भी सम्भव है, विद्युत् चुम्बकीय आलेखन द्वारा ज्ञात हुआ है कि प्रमस्तिष्कीय लहरे इस रोग मे लयहीनता अकित करती है।

अध्यापक मिरगी रोग से ग्रसित छात्रो को 'विशेष एक्सरे' हेतु भेजे एव अन्य क्रिया का सुझाव दे। 'विशेष एक्सरे' रोगी के मस्तिष्क मे पडी रेखाओ को ज्ञात करता है जिससे

शल्य चिकित्सा मे सुविधा होती है या शरीर मे पडने वाली ऐठन दूर करने वाली ओपधि भी इस रोग पर प्रभावशाली नियन्त्रण करने मे सफल हुई है। नियन्त्रण ओपधि के साथ सवेगात्मक व्यवहार को शमन करने हेतु भी अस्थायी प्रभाव डालने वाली औपधियो का उपयोग अध्यापक चिकित्सक के निदेशानुसार कर सकता है।

मिरगीग्रस्त एव शैक्षिक समजन—विकलागावस्था मे चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, अध्यापक, विद्यालय या अन्य समाजसेवी वर्गों की दृष्टि मे सहयोग, शिक्षा एव समता का व्यवहार विकसित किया जाना पचास प्रतिशत सुधार है।

शैक्षिक समजन का प्रमुख आधार ही साथी बालको एव समाज के मन से भेद-दृष्टि को समाप्त करना है। मिरगीग्रस्त यदि सामान्य बुद्धि वाला हो तो उसे औसत विद्यालय मे प्रवेश दे देना चाहिये। मिरगीग्रस्तता सामान्य हो तो विशेष कक्षा सेवाओ की आवश्यकता नही है। यदि बालक पर मिरगी के गम्भीर दौरे नियन्त्रणहीन हो या देखभाल की उचित व्यवस्था न हो तो ऐसे छात्रो को अस्पताल मे प्रवेश दिलवा देना उपयुक्त होगा। जहाँ तक अन्य बालको पर प्रभाव का प्रश्न है वे प्राय घर और समाज मे रुग्ण बालको को देखते रहते है। असामान्य अवस्था कही पर कभी भी उत्पन्न हो सकती है। केवल गम्भीर अवस्था युक्त बालको को विद्यालय प्रवेश न दे।

मिरगीग्रस्त शैक्षिक समजन एव अध्यापक—अध्यापक एव विकलाग विद्यालय का यह सर्वोत्तम दायित्व है कि वह समाज मे उस अभिवृत्ति को उत्पन्न करे जो, आज तक विकलागो के प्रति घृणा और निरर्थक कृपा के स्थान पर, सामाजिक स्वीकृति की सूचक हो। विद्यालयो, सामाजिक सस्थाओ मे भी आगे बढकर व्यावसायिक क्षेत्रो (लिपि कार्य, लेखन कार्य जैसे कामो) की ओर विकलागो को आकृष्ट करना होगा।

घृणा, अपमान एव अवहेलना के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होने वाली क्षोभ एव आत्मग्लानि की भावना भी मिरगीग्रस्त मे सवेगात्मक विकार उत्पन्न कर सकती है। अध्यापक आत्म-विश्वास एव प्रयत्न के द्वारा मिरगीग्रस्त बालक मे अपना विश्वास उत्पन्न करे। साथ ही सह साथी छात्रो मे एक-दूसरे के प्रति बहिष्कार, अलगाव एव उपेक्षा भाव समाप्त करवा कर साथ खेलना, आना-जाना, उठना-बैठना एव व्यवहार को सजीव बनाये। साथी बालको को यह बताया जाये कि मिरगी भूत-प्रेतो का प्रकोप नही है अपितु तत्रिका-विकार के परिणाम-स्वरूप यह रोग उत्पन्न होता है।

हृदय-रोग एव शैक्षिक समजन

यह अत्यधिक विस्तार से फैलने वाला एव हानिकर-परिणाम को देने वाला रोग है। विश्व मे सर्वाधिक मृत्यु सख्या हृदय रोग के कारण है। आधुनिक शल्य-चिकित्सा विज्ञान ने हृदय रोग के क्षेत्र मे विशेष सफलता प्राप्त की है।

हृदय रोग एक चिन्तनीय व्याधि है, परन्तु आज हृदय-गति निर्धारक की सहायता से सफल शल्य-क्रिया सम्भव हो गई है। यथा आहत कोष्ठक परिवर्तित करना, धमनीय उपरोपण, काटना, जोडना, बाँधना या जैसा विकार हो उसी के अनुरूप चिकित्सा सम्भव है।

प्रारम्भिक अवस्था मे हृदय के आन्तरिक आवरण को रोगाणु सक्रमण के प्रभाव से सुरक्षित रखना भी उचित होगा।

हृदय-रोगी बालक एव अध्यापक—अध्यापक को हृदय-रोग क्षेत्र मे हुए परिवर्तनो एव अन्य शोधो से परिचित होना चाहिये, जिससे वह रोगी बालक को उचित निदेशन प्रदान कर सके। सदेहास्पद छात्रो को स्वास्थ्य परीक्षणार्थ स्वास्थ्य निरीक्षक के पास भेजे। चिकित्सक द्वारा प्रदत्त निदेशानुसार वह विद्यालयीय कार्यक्रम का समजन करे। यदि हृदय-गठिया हो तो आराम एव शिक्षा का समन्वय शिक्षण मे रहना श्रेयस्कर होगा। रोग-ग्रस्त बालक को प्रसन्न रखना, अधिक शारीरिक श्रम न करने देना, शिक्षण मे सहज सरल प्रणाली से काम लेना—कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ है जिनके परिणामस्वरूप बालक मे उत्साह एव आशा बनी रहे। नैराश्य या हत् आशा हृदय-रोग को बढाते है।

अध्यापक बालक के मनोवैयक्तिक स्वास्थ्य को ध्यान मे रखकर उससे कार्य ले। अनावश्यक निदेश, डॉट-फटकार बालको के स्नायुमण्डल को प्रभावित कर देते है जिससे बालक उत्तेजित हो जाते है। यह उत्तेजना शिक्षण मे एकाग्रता व ध्यान का अपहरण कर देती है। धीरे-धीरे बैचेनी, कब्जी एव निद्रा-रोग अल्पायु मे सक्रिय हो जाते है। क्रोध, मिथ्याभिमान, घृणा, स्वभाव को उग्र बना देते है। परवशता की स्थिति मे बालक अव्यवस्थित हो जाता है। प्राय सामान्य-सी घटना हृदय-गति को प्रभावित कर देती है; जिससे स्नायुमण्डल उत्तेजित या मन्द हो जाता है। हृदय-रोग पर घर व साथियो का वातावरण भी प्रभाव डालता है।

विद्यालय मे अध्यापक अत्यधिक सतर्कता से काम ले व ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने दे जिससे बालक के मन पर बोझ पडे। सहज, सरल, उत्साहवर्द्धक व्यवहार हृदय-रोगी बालको को सन्तुलित रखने मे सहायक होता है।

अन्य विकलागावस्थाएँ

विकलागावस्था के विभिन्न रूपो मे वे सभी विकार आ जाते है जो अल्पावधि मे बालक पर अपना प्रभाव डालते है। जैसे—रक्तचाप, क्षय, गठिया, वातज्वर, इन्फ्लुएञ्जा, नासूर, निमोनिया, मधुमेह, दर्द, शूल आदि।

शैक्षिक समजन की दृष्टि से अन्य विकलागावस्थाओ को निम्नलिखित प्रकार से सुविधा प्रदान कर विकार-मुक्त किया जा सकता है।

विद्यालय एव विकलागो हेतु व्यवस्था सुविधा	
	१ स्वास्थ्य परीक्षण आलेखन
	२ शिक्षण एव उपचार का समायोजन
	३ पौष्टिक भोजन
	४ विश्राम एव आराम
	५ व्यायाम एव खेल
	६. मनोरजन
	७. स्वास्थ्यप्रद स्वभाव
	८ वैज्ञानिक दृष्टिकोण

अध्यापक का दायित्व-क्षेत्र

अध्यापक का दायित्व इस दृष्टि से और भी अधिक बढ़ जाता है जबकि वह

विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य करता है। छात्रो के स्वास्थ्य की जाँच या लक्षण से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर रोगी बालको को सामान्य या नियमित चिकित्सा सेवान्तर्गत ज्ञान का परामर्श दे एव चिकित्सक के निर्देशानुसार उपचार हेतु प्रेरित करे। अध्यापक अपने छात्रो के समय-समय पर स्वास्थ्य विषयक विचार-विमर्श करता रहे एव उनकी निजी कठिनाइयो को विशेषज्ञ के निर्णयार्थ प्रस्तुत करे।

अध्यापक ऐसे छात्रो को उचित विश्राम, साधारण कार्य एव हलका शीघ्र पचने वाला भोजन निर्दिष्ट करे एव छात्र को निरुत्साहित न होने दे।

स्नायु विकृतियाँ

स्नायु-मण्डल के ठीक रहने पर मनुष्य मे सीखने के प्रति जिज्ञासा, उत्साह एवं स्फूर्ति बनी रहती है। इसके अस्तव्यस्त होने से शारीरिक-क्षीणता, कार्य मे अरुचि, ध्यान मे बाधा, निद्रा-रोग, रक्तचाप, अपच के रोग बढने लगते हैं।

मनोरजन, प्रात. भ्रमण, तैरना, मालिश आदि इसके लिए उत्तम उपाय हैं। विद्यालय मे ये साधन-सुविधाएँ सहज एव व्यवस्थित रूप से प्राप्त हो सकती हैं।

त्वचा

शरीर मे इसके तीन प्रमुख कार्य हैं—ताप नियन्त्रण, चेतनात्मक ज्ञान एव रक्षात्मक स्थिति। इसके विकृत होने से दाद, खुजली फोटे-फुन्सी आदि हो जाते है। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से हैजा, प्लेग, टाइफस, टाइफायड, चेचक एव पीत ज्वर अधिसूच्य रोग है जिनकी समाप्ति के लिए कानून एव व्यवस्था सक्रिय हैं। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय यात्रियो को विसक्रामक औषधियो द्वारा जीवाणु-मुक्त कर दिया जाता है।
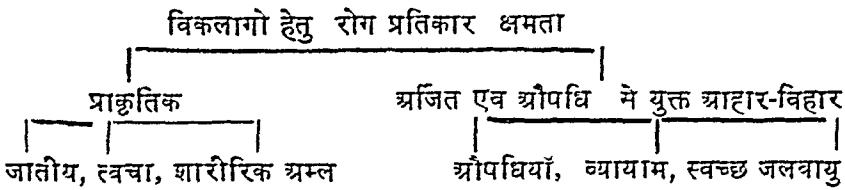
विद्यालय अपने क्षेत्र मे होने वाली बीमारियाँ एव उनके प्रभाव की जानकारी रखे एव उसी के अनुसार प्रतिकारात्मक एव रोग अवरोधक क्षमता बालको मे उत्पन्न करे। प्राय रोगोत्पादक जीवाणु शरीर मे प्रवेश करते ही अपना प्रभाव एक निश्चित अवधि मे प्रकट करते है —

हैजा—कुछ ही समय से चार दिन तक। चेचक १२ दिन। गल फुल्ली (मम्प्स) १० से १५ दिन। प्लेग २ दिन से ५ दिन। कुक्कुर खाँसी ५ से २५ दिन। खसरा १२ दिन। इन्फ्लुएजा ५ दिन। डिप्थेरिया एक सप्ताह। टाईफायड १० से २१ दिन।

कुष्ट रोग

यह विश्व के प्राचीन रोगो मे से है। पूरे विश्व मे लगभग पचास लाख रोगी हैं। यह असाध्य एव घृणित रोग समझा जाता था, परन्तु विज्ञान ने इसे साध्य सिद्ध कर कई देशो से समूल ही नष्ट कर दिया है। ग्रीष्म-प्रधान देशो मे इसके रोगी प्राय. धार्मिक

स्थलों या नगरों में परिवार सहित रहते हैं। महात्मा गाँधी ने कुष्ट रोगी की सेवा कर अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

दीर्घ स्थायी, सम्पर्क द्वारा फैलने वाला यह रोग मनुष्य को विकृत कर देता है। भौंहों के बालों का उड़ जाना या नाक का बैठ जाना, अगुंलियों का गल जाना आदि रोग की १५ से २० वर्ष की अवधि दर्शाते हैं। चिकित्सक प्रमाण-पत्र या परामर्श के बिना ऐसे रोगी को विद्यालय में प्रवेश नहीं देना चाहिये। कुष्ट रोगी परिवारों में उत्पन्न स्वस्थ बालकों को उनसे अलग कर देना चाहिये।

रति रोग

भारत में प्राय यौन विकृतियाँ या रति रोगों को बनाते हुये बच्चे भय खाते हैं। सामाजिक दृष्टि से इस रोग को हीनता की कोटि में लिया जाता है। रति रोग जननेन्द्रिय पर प्रभाव डालते हैं। इसमें उपदंश (गर्मी) सुजाक, रति-व्रण आदि मुख्य हैं। हृदय, यकृत एवं मस्तिष्क इसमें प्रभावित होता है। इसमें विकलांग मनोसामाजिक-हीनता से ग्रस्त हो जाता है। शिक्षण में बाधा उत्पन्न होती है। यह छूत का रोग है व अन्य बालकों को इससे बचाना चाहिये।

रोग नियन्त्रण उपाय

विकलांगों के लिये छूत नियन्त्रण टीकों की व्यवस्था (यथा—चेचक एवं यक्ष्मा के प्रतिरोधक टीके) हर चौथे वर्ष लगवाये जाएँ। पोलियो के टीके छोटे बच्चों को छ वर्ष तक चिकित्सक के निर्देशानुसार अवश्य लगवाते रहना चाहिये। छूत के रोगों के प्रति भी विद्यालय को सावधान रहना चाहिये, क्योंकि कोई भी बीमारी, अल्प आयु, धन-नाश, कार्य-शक्ति का ह्रास एवं पिछड़ेपन को देने वाली होती है। प्रदर्शनियाँ, स्वास्थ्य सेवा अधिकारियों या विशिष्ट आयोजनों द्वारा इन रोगों की भयंकरता एवं स्वस्थ रहने के उपाय बताने चाहिये।

विभिन्न विकलांगावस्थाएँ एवं विद्यालयीय दायित्व

"स्वास्थ्य सम्बन्धी अपूर्ण ज्ञान के अभाव में स्वस्थ बालक स्थायी विकलांगता के शिकार हो जाते हैं। अत विद्यालय का दायित्व है कि वह बालकों को उनकी शारीरिक वृद्धि एवं जननेन्द्रिय से परिचित कराएँ। यह दायित्व बालकों के क्षेत्र में और भी बढ़ जाता है।" प० फकीरचन्द कौशिक के इस विचार से, बालकों को उनके शरीर में होने वाली वृद्धि एवं परिवर्तन से अवगत होना चाहिये अन्यथा आकस्मिक परिवर्तन उन पर स्थायी प्रभाव डाल सकता है जो विकलांगता का कारण बनता है एवं विकलांग को और अधिक विकलांग बना सकता है।

शारीरिक वृद्धि

बालक एवं बालिका में, चाहे वे विकलांग ही क्यों न हों, १२-वर्ष के पश्चात् जननेन्द्रिय विशेष आकर्षण का केन्द्र बन जाती है। इस उम्र में बालकों के अण्डकोष की नलिकाओं में वीर्य का निर्माण एवं बालिकाओं के अण्डाशय में यौनकोष परिपक्व होने लगते हैं, जो मासिक धर्म के माध्यम से प्रतिमाह निकलते हैं। आवाज में भी अन्तर आ

जाता है। इस प्रथम परिवर्तन मे बालिकाएँ भयभीत हो जाती है। अपर्याप्त एव अस्वस्थकर भोजन मे शारीरिक क्षमता, वजन, कार्यशक्ति मे कमी होकर शरीर रोग-ग्रस्त हो जाता है। विकलाग को भी इस शारीरिक वृद्धि के समय स्वास्थ्य नियमो मे अवगत कराना समीचीन होगा।

शारीरिक क्षीणता या स्थूलता भी एक प्रकार की विकलागता है। शारीरिक अति स्थूलता से शिक्षण असुविधाएँ उत्पन्न हो जाती है। रक्तचाप, मधुमेह, यकृत जैसे रोग इसके विशेष उपसर्ग हैं। नल रहित ग्रन्थियाँ (एण्डोक्रीन्स) की विकृत क्रिया या चर्बी वाले पदार्थों से यह विकार बढता है।

कैंसर

शरीर के किसी भी भाग मे कोशो की अत्यधिक वृद्धि के फलस्वरूप अर्बुद (ट्यूमर) हो जाता है। यह अर्बुद तन्तुओ को नष्ट करके त्वचा, गिल्टियाँ, अन्न नली की श्लेष्मिक झिल्ली मूत्रनली, स्तन, गुर्दे, सन्धि स्थान मे, कही भी हो सकता है। प्राय पुनरावर्तनीय सताप ही इस रोग का कारण माना जाता है।

विकलांगावस्था के स्वरूप एव विकास

सार संक्षेप

विकलाग बालक असामान्य बालक ही हो यह आवश्यक नही है, शारीरिक दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट दिखलाई पडने वाले बालक मानसिक दृष्टि से असामान्य हो सकते है। मानसिक, शारीरिक एव मनोसामाजिक विकृतियो से युक्त बालक असामान्य बालक कहा जाता है।

मानसिक असामान्यावस्था—इससे सीखने-सिखाने की प्रक्रिया बाधित होती है। मानसिक विचलन की स्थिति मे बालक अति मन्द-गति से, या नगण्य अनुपात मे, सीखने वाला होता है। प्रतिभावान् बालको हेतु भी शिक्षण की विशेष व्यवस्था होनी चाहिये। घर का उत्तम एव अनुकूल वातावरण, -समृद्ध परिवार, सुशिक्षित माता-पिता, शैक्षिक वातावरण बालक को शिक्षित करने मे सहायक तत्त्व है।

मानसिक आयु को जानने हेतु बुद्धि मापन के मानकीकृत जाँच-पत्रो का उपयोग उत्तम है। इसमे मन्द, औसत एव तीव्र बुद्धि वाले बालको की निश्चित पहचान हो जाती है।

चक्षुहीन बालक एव शिक्षा—(१) शिक्षण मे वैयक्तिक विभिन्नता महत्त्वपूर्ण है। क्रियाशीलन के माध्यम से चक्षुहीन व्यक्ति वस्तु मे आनुपातिक स्पष्टता एव सौन्दर्य का अनुभव करने लगता है। (२) वैयक्तिक विभिन्नता की दृष्टि से निदेशन का महत्त्व सर्वविदित है। (३) सवेदी प्रतिबोध शक्ति को विकसित करने के लिये अध्यापक चक्षुहीन बालक मे निम्नलिखित शक्तियो का विकास करे।

स्पर्श
श्रवण
स्वाद

चक्षुहीन बालक एव अध्यापक—अनुभव की इकाइयो को विकसित करते जाना

उत्तम अध्यापक के लक्षण हैं। चक्षुहीन बालक मे जिज्ञासा के विकास हेतु वातावरण प्रस्तुत किया जावे। इसमे चार बाते विशेष हैं —

विद्यालयीय क्षेत्र मे विविधता
घर का विकसित वातावरण
सामाजिक सुविधाएँ
निर्दिष्ट एव पर्यवेक्षित भ्रमण के विस्तृत आयोजन

पाठ्यक्रम

बालको की आवश्यकता एवं सामाजिक उद्देश्यो के मिश्रित तथ्यो को आधार मानकर शिक्षाक्रम की सरचना ही समीचीन है। इसमे विशेष ध्यातव्य है—

विषय-वस्तु
शैक्षिक उपकरण
अभिवृत्ति
सामाजिक समजन
व्यावसायिक कौशल
अवधि

शिक्षाविदो का विचार है कि चक्षुहीनो की मूलभूत आवश्यकता एवं भावी उपलब्धियो को दृष्टिगत रखकर उन्हें वातावरण मे परिचित कराते हुये उनकी सवेदी प्रतिबोधक शक्तियों को जाग्रत करना चाहिये।

श्रवण विकलागता एव शिक्षा—मौखिक भाषाई स्वरूप को ग्रहण करने की स्थिति मे श्रवण विषयक बाधा होना। मौखिक विद्या भारतीय विद्यालयो मे शिक्षण की रीढ है। बधिरो हेतु यह कथन अपवाद है।

श्रवण विकलाग—पूर्णत बधिर
क्षीण श्रवण-शक्ति
ऊँचा सुनना

जन्मजात बधिर एव दुर्घटनावश श्रवण-दोष की अवस्थाओ का वर्गीकरण किया जाकर बधिर छात्रो को शिक्षण प्रदान किया जाये। श्रवण-शक्ति मापन की दो विधियाँ हैं—

(१) औपचारिक विधि (२) अनौपचारिक विधि

औपचारिक विधि यात्रिक विधि है एव अनौपचारिक विधि मे विभिन्न ध्वनियो की पहचान, वार्तालाप, फुसफुसाहट आदि मे बधिर अवस्था की जाँच की जाती है।

कारण —जन्मजात
गर्भावस्था मे विकार
असुरक्षित प्रसव
वश-परम्परा
दुर्घटना
बीमारी

कतिपय अवस्थाओ मे सवेदात्मक पक्ष भी श्रवण-शक्ति को क्षीण करने मे प्रभाव डालते हैं।

गैसल द्वारा वर्णित वधिर वालको का वर्गीकरण

सुनना
घोप एव अघोप ध्वनि
दृष्टि चैतन्य
सामाजिक ग्रहणीयता
सवेगात्मक व्यवहार

शारीरिक विकृति—दुर्घटना, वीमारी एव जन्मजात कारणो से शारीरिक विकृतियाँ सम्भव हैं। इनसे शिक्षण एव विद्यालय मे अनुकूलन विपयक वाधा उत्पन्न होती है।

प्रमुख शारीरिक विकृतियाँ :—
प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ
मस्तिष्क पर आघात
वाल पक्षाघात
पेशीय कुपोषण
अन्य

पैशिक क्षीणता मे प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ भयकर विकारावस्था है। लकवा, कम्पन, गतिभंग जैसे विकार इसके अन्तर्गत हैं।

शिक्षण—प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ मे उग्रता एव विविधता इतनी अधिक है कि शिक्षण सम्भव नही है। इसमे उपचार एव विशिष्ट शिक्षण का साथ-साथ चलना उपयुक्त है। विशेष स्मरणीय यह है कि वालक अकर्मण्यता की स्थिति मे न आये।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित वालक को अपनी विशिष्ट अशक्तता को पूर्ण करने की आवश्यकता होती है। इसके उपचार, शिक्षा एव उपकरणो का उपयोग तीनो ही प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलनी चाहिये। नियमित जाँच एव निर्देशन के लिए विशिष्ट अध्यापको की सेवाएँ ली जानी उपयुक्त है।

मस्तिष्क पर आघात—इससे अधिगम की समस्या एव पहचान की कमी उत्पन्न हो जाती है, ऐसे अस्थिर चित्त-वालको हेतु विशेप ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

वाल पक्षाघात—वाल्यावस्था मे इस बीमारी का भय रहता है। सूक्ष्म विपाणुओ द्वारा फैलने के कारण इसकी गति द्रुत रहती है। पक्षाघात रोकने की अवस्था मे टीका लगाना उत्तम है। परीक्षण एव उपचार के उपरान्त ही ऐसे वालको की शिक्षण के लिए व्यवस्था करना श्रेयस्कर है।

अध्यापक वालक मे सामाजिक तिरस्कार या घृणा की भावना न उत्पन्न होने दे। इसमे अभिभावक, विद्यार्थी एव अध्यापक द्वारा सद्भाव वृत्ति का अपनाना प्रभावकारी है।

पेशीय कुपोषण—विटामिन "ई" के अभाव से यह रोग होता है। तीन वर्प से तेरह वर्प की वय के वालक इससे ग्रसित होते हैं। यह ऐच्छिक पेशियो का रोग है।

रोग का प्रभाव मन्द-गति से होने के फलस्वरूप वालक का शिक्षण भी उसी गति से प्रभावित होता है। परन्तु ग्रहणीय क्षमता पेशीय अशक्तता के कारण त्वरित गति मे क्षीण होती है।

अध्यापक का दायित्व है कि ऐसे वालक को उपचार की प्राथमिकता प्रदान की

जाये। पहियेदार कुर्सी एवं अन्य उपकरणीय सुविधा दी जावे एवं इस रोग के प्रभाव में मस्तिष्क हेतु सावधानी नितान्त महत्त्वपूर्ण है।

जराठ्यग्रस्तता—सुषुम्ना में जटिल ग्रन्थियों के पट जाने के फलस्वरूप यह रोग होता है। इसमें रक्षात्मक झिल्ली निर्जीव हो जाती है। आँखों के आगे धुँधलापन एवं शरीर अशक्त होता चला जाता है। उदर के ऊपरी पार्श्व में प्रतिवर्त की कमी रहती है।

व्यायाम, विश्राम एवं मालिश जैसे अभ्यासों को अध्यापक प्रमुख रूप से इस प्रकार के बालकों हेतु प्रस्तावित करे। अन्त प्रवाही संक्रमण से रुग्ण बालक की रक्षा अत्यन्त आवश्यक है। चिकित्सक की नियमित सेवाएँ, औषधि का उपयोग और विशिष्ट अध्यापक का निर्देशन शिक्षण में सहायक सिद्ध होंगे। जराठ्यग्रस्तता में ग्रसित बालक में उत्साह और जिज्ञासा बनाये रखना भी लाभप्रद है।

मिरगी—तन्त्रिकाओं की व्याधियों में मिरगी एक प्रमुख बीमारी है। इसमें अनियन्त्रित दौरे पड़ते हैं, जिनमें चेतना का लोप होना, हाथ-पैरों में झटके, सिर हिलना, कम्पन एवं अत्यन्त तीव्र दौरे की अवस्था में विस्मृति या दौरे का अल्पान्तर से पड़ना है।

विद्युत चुम्बकीय आलेखन द्वारा प्रमस्तिष्कीय लहरों का पता लगा कर उपचार हेतु भिजवाने की व्यवस्था करे। अन्य समाज-सेवी संस्था एवं व्यक्तियों का सहयोग लिया जाना भी हितकर है।

बालक, परिवार एवं समाज के मस्तिष्क से अध्यापक मिरगीग्रस्त बालक के प्रति अवहेलना एवं घृणा की अभिवृत्ति निकाले। विद्यालय में अलगाव या बहिष्कार की भावना को समाप्त कराएँ जिससे व्यवहार में एकरूपता आये। मिरगी विषयक भूत-प्रेतों की कल्पित कहानियाँ एवं झाड़ा-फूँका की अपेक्षा अध्यापक चिकित्सा के महत्त्व को दर्शाएँ।

हृदय-रोग—सृष्टि में हृदय-रोग के फलस्वरूप सर्वाधिक मृत्यु होती है। आहत हृदय-कोष्ठक की सफल शल्य क्रिया करने में वर्तमान चिकित्सा विज्ञान सफलता की ओर है। हृदय-रोग से प्रभावित बालकों को विधिवत् चिकित्सा हेतु भेजा जाये।

अध्यापक हृदय-रोग में ग्रसित बालकों का विशेष ध्यान रखे। उन्हें अधिक श्रम-साध्य कार्य न दें व सहज सरल शिक्षा-प्रणाली को अपनाये।

अन्य विकलांगावस्थाएँ—रक्तचाप, क्षय गठिया, वात ज्वर, इन्फ्लुएन्जा, नासूर, निमोनिया, कैंसर, मधुमेह, शूल, स्नायु-रोग, हैजा, प्लेग, चेचक, कुष्ट-रोग, रति-रोग आदि।

शैक्षिक समंजन हेतु परीक्षण, उपचार, पौष्टिक भोजन, विश्राम, व्यायाम मनोरंजन, स्वस्थ स्वभाव एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित किया जाये। स्वास्थ्य विषयक कठिनाइयों को छात्र एवं विशेषज्ञ के सम्मुख प्रस्तुत कर शिक्षण-प्रक्रिया को विकसित किया जावे।

पाठ्यक्रम द्वारा बालक में सुरक्षा, आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता उत्पन्न की जावे। इसमें विकलांगों के प्रकार अवश्य ध्यान में रहे।

शारीरिक विकलांग—आंगिक कार्यक्षमता को विकसित करना प्रमुख है। इस हेतु वैज्ञानिक उपकरण प्रयुक्त किये जाएँ।

मानसिक विकलांग—मन्द, सामान्य एव जड बुद्धि—तीनो ही बालको हेतु विषय-वस्तु ग्रहणीय क्षमता एव रुचि अनुसार पाठ्यक्रम होना चाहिये।

आवेगात्मक—इस अवस्था मे बालक की आवेगात्मक अवस्थाओ को स्थानान्तरण सयुक्तिकरण, शयन एव उत्कर्ष आवश्यक है।

कोई भी रोग कार्य-क्षमता व शक्ति का ह्रास, समय, धन का व्यय व पिछडेपन का कारण होकर उम्र कम करने वाला होता है। अत रोग न हो इसलिये विकलागो की अवस्था, आवश्यकता, सादृश्यता एव भावी सम्भावनाओ को ध्यान मे रख पाठ्यक्रम की सरचना करना ही श्रेयस्कर है।

3. विभिन्न शारीरिक विकलांगावस्था एवं शिक्षा
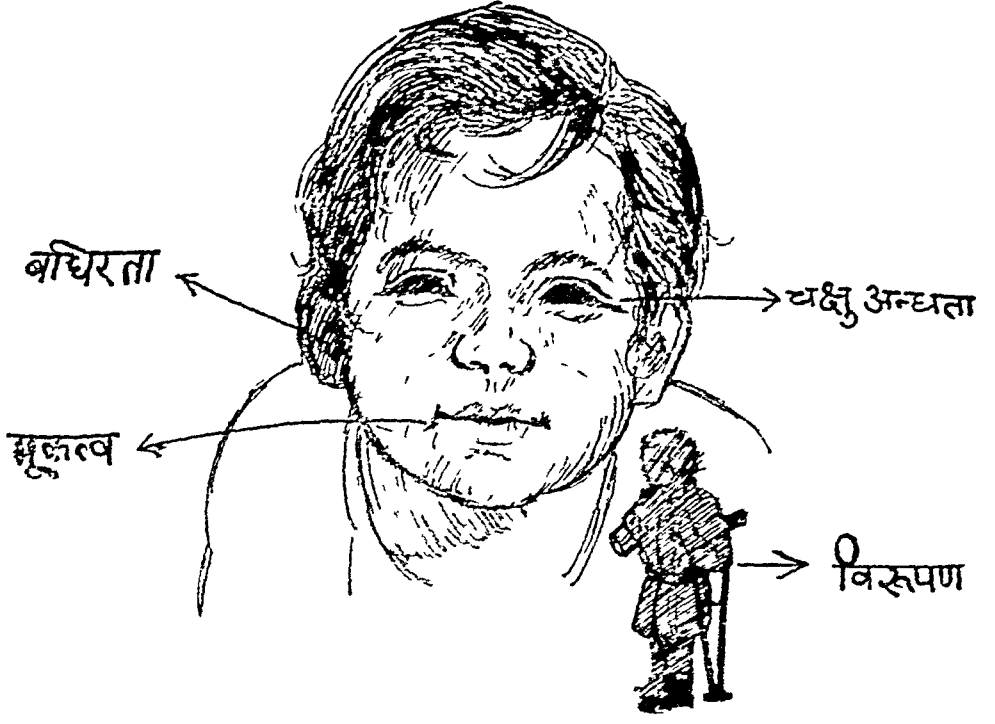
बधिरता
चक्षु अन्धता
मूकत्व
विरूपण

I विरूपित बालक एवं शिक्षा

शारीरिक विकलागता के क्षेत्र मे मूक, बधिर एव चक्षुहीन से भी बढकर विषमाग वर्ग को उनकी निर्योग्यताओ का ध्यान रखते हुए शिक्षण प्रदान करना श्रमसाध्य है। विरूपित बालको की श्रेणी मे वे बालक आ जाते है जो शारीरिक रूप से विकलाग, विकृत हड्डियो वाले, लूले-लगडे या विषमाग है। अत उसी के अनुसार अक्षम अगो की सहायता के लिये विशेष उपकरणो के माध्यम को अपनाना हितकर होता है। प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के परिणामस्वरूप लगभग ३० से ४० प्रतिशत तक बालक प्रभावित होते है। विरूपित बालको की शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु परिवर्द्धित एव सशोधित विधि को प्रयुक्त करना समीचीन होगा। यह सहायक उपकरण विरूपण की अवस्थाओ के वैज्ञानिक अध्ययन के उपरान्त निष्कर्षो के आधार पर प्रयोग मे लेने चाहिये।

विरूपित (विषमाग) बालक

औसत आयु के बालको मे विरूपित बालक शारीरिक सशक्तता मे कम होता है एव जो कार्य सामान्य रूप मे सम्पन्न हो सकता है उसके करने में विषमाग बालक बाधा अनुभव करता है। कतिपय बालको मे कुपोषण, बीमारी, पक्षाघात, यक्ष्मा, रक्ताल्पता या अन्य शारीरिक असामान्यवस्थाओ के कारण अथवा सहजत, जीवन-शक्ति मन्द होती है। इनके शिक्षण हेतु विशेष परिवेश, उपकरण एव निदेशन की आवश्यकता होती है, जो अध्यापक के सहज प्यार, सहानुभूति, धैर्य एव प्रेरणा के साथ सम्भव है। मात्र उपकरण, विद्यालय या निर्देशन अर्थहीन है। अध्ययन के आधार पर विकलाग दो वर्गों मे विभक्त हो सकते है

१ पगुता अथवा शारीरिक विकृति तथा

२ रोगो से ग्रसित होने के कारण विकृति

प्रस्तुत दोनो ही अवस्थाएँ कभी-कभी समान रूप से साथ-साथ चलती है। ऐसी अवस्था मे चिकित्सा, शिक्षण एव सीखने की क्षमता तीनो मे साम्य अत्यन्त आवश्यक है। असन्तुलित शिक्षण विकलाग के सीखने की प्रक्रिया को कुण्ठित कर देता है।

विरूपित बालक की पहचान

विरूपित बालक की पहचान अत्यन्त सहज है। विषमाग अवस्था को दो भागो मे विभक्त किया जाता है —

१ जन्मजात विरूपण तथा

२ दुर्घटना या बीमारी के फलस्वरूप विरूपण

१ जन्मजात विरूपण

जन्मजात विरूपण बालक के विकास मे अत्यन्त बाधक स्थिति है। बालक की अस्थियो का कूब के रूप मे उभर आना, हाथ-पैरो का टेढा या विकृत रूप, मुँह की आकृति का टेढापन, वाणी या कर्ण विकृति आदि दोष, यदि जन्म से ही हो तो शिक्षण की गति मे आरम्भ से ही बाधा उत्पन्न हो जाती है और ऐसा बालक साधारण बालक की भाँति शिक्षण प्राप्त नही कर सकता।

ये ऐसी अवस्थाएँ है जिन्हे चिकित्सा की अपेक्षा शिक्षा एव कौशल की आवश्यकता

अधिक है। भारत मे अभी ऐसी चिकित्सा सुविधाएँ सामान्य-स्तर पर उपलब्ध नही है। अत विद्यालय मे ही विशिष्ट उपकरणो के माध्यम से शिक्षण-व्यवस्था करना समीचीन होगा।

२ दुर्घटना या बीमारी के फलस्वरूप विरूपण

अस्थि सन्धियो, पेशियो एव आकृति मे विरूपण दुर्घटना या बीमारी के फलस्वरूप भी सम्भव है। जिनमे दुर्घटनाओ या सक्रामक रोगो के कारण शारीरिक विकृति आ गई है, उन बालको के सीखने की क्षमता मे भी अवश्य कमी आना स्वाभाविक है। उनकी शारीरिक गति अवरुद्ध हो जाती है। अत शिक्षण की अवस्था को भी परिवर्तित करना विचारणीय है। पक्षाघात से प्रभावित विकलाग को पक्षाघात अग की अवस्था एव प्रभाव आदि को ध्यान मे रखकर अभ्यास देना चाहिये। कटे अगो मे सहज गति होती है जबकि पक्षाघात मे अग सर्वथा शिथिल हो जाता है। अत पक्षाघात – अग को अभ्यास देने मे धैर्य और अभ्यास की सर्वाधिक आवश्यकता होती है।

यदि विरूपित बालको को नही सम्भाला गया तो वे परावलम्बी बन जाते है। समाज भी ऐसे बालको के प्रति उत्साह नही दर्शाता। भारत के औसत विद्यालयो मे विपमाग बालक कही-कही दिखाई पडते है परन्तु विद्यालय उनका स्वागत करता प्रतीत नही होता, अपितु उनको बोझ ही मानता है, "कितना अच्छा हो कि राजकीय अनुदान उन्ही विद्यालयो को प्राप्त हो जिनके यहाँ विकलाग शिक्षा प्राप्त करते हुए दिखाई दे। अनुदान आज विकलाग शिक्षण की प्रथम शर्त हो"। चन्द्रपति के इस कथन मे एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति की झलक है।

विरूपित बालक की स्वास्थ्य समस्या—बालक मे विरूपण का होना अपने आप मे एक अस्वस्थ अवस्था है। यदि पगुपन के अतिरिक्त भी स्वास्थ्य समस्या बढती है तो वह और भी बडी दुरवस्था है। ऐसे बालक मन्द रूप से कार्य करने वाले, निष्क्रिय, निस्स्तेज हो जाते है, बार-बार एक काम को करते रहने पर भी उसमे अशुद्धि करते है एव कार्य-दक्षता का सदा अभाव बना रहता है।

मिर्गी रोग से ग्रसित बालक कई बार साथी बालको मे भय उत्पन्न करने वाला बन जाता है। अत. अन्य बालको को रोग की अवस्था से परिचित कराना अत्यन्त आवश्यक है। बालक का मिर्गी की अवस्था मे गिर पडना एव अचेत हो जाना एक विकट समस्या है। यह गिर पडना इतनी शीघ्रता से होता है कि बालक समझ भी नही पाता। दूसरे, सामान्य रूप से मिर्गी का प्रभाव जो शीघ्र ही समाप्त हो जाता है, इस अवस्था मे भी वस्तु हाथ से गिर जाती है। कम्पन बढ जाता है। हाथ-पैर या आँखो मे थरथराहट होती है। अत इस प्रकार के बालको हेतु विशेष कक्षा की आवश्यकता होती है जहाँ पूर्ण ध्यान रखा जा सके एव सामान्य चिकित्सा सुविधा भी उपलब्ध हो। प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के कारण भी ऐसी विकृत अवस्थाएँ पगु बालको को प्रभावित कर देती है।

हृदय रोग भी बालक के शिक्षण मे बाधा पहुँचाते है। यद्यपि ऐसे छात्र औसत कक्षाओ मे अध्ययन कर सकते है परन्तु अध्यापक को चिकित्सक के निर्देशानुसार प्रभाव ग्रस्त बालक की देख-रेख करते हुये शिक्षण प्रदान करना होगा।

विभिन्न विरूपण अवस्थाएँ

विज्ञान ने अनेक दुस्साध्य रोगों पर विजय प्राप्त कर ली है। दुष्कर एव असाध्य

रोग साध्य बनते जा रहे है । कई अवस्थाओ मे रोगो का भय समाप्त हो गया है ।

१. मेरु धूसर रोग के लिये टीके उत्तम सिद्ध हुये हैं । चेचक आदि रोगो की तरह यह रोग भी नियन्त्रण मे आता जा रहा है ।

२ सक्रामक रोग भी विरूपण उत्पन्न करने वाले होते है । इनके लिये भी विशेप शिक्षण व्यवस्था की आवश्यकता होती है, यद्यपि चिकित्सा विज्ञान ने सक्रामक रोगो के द्रुत प्रसार को नियन्त्रित किया है ।

३. जन्मजात विकारो मे अस्थि विकृति, पैशिक विरूपण, गर्दन, हाथ, पैर, कूल्हो आदि मे आकृति दोप या कमर मे कूब, ऐसी अवस्थाएँ है जिनके उपचार के साथ उनकी विकृति मे भी शिक्षण कार्य को सामान्य बनाने की आवश्यकता रहती हे ।

४ दुर्घटना भी बहुधा विरूपण का कारण बन जाती हैं—यातायात, आग, जल या-अन्य कारण शरीर मे विकृति उत्पन्न कर देते है । अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे सीधी चिकित्सा सेवाओ की आवश्यकता होती है । इसके बाद अपने विद्यालय मे अध्ययन हेतु पहुँचने पर उन्हे विशेप निर्देश की आवश्यकता होती है ।

५ अन्य अवस्थाएँ जो बालक के विरूपण का कारण बनती है—हृदय-रोग, यक्ष्मा, रक्ताल्पता आदि हैं जिनके कारण अशुद्ध आसन, कूबापन, झुकी गर्दन, टेढे कन्धे, पैरो मे टेढापन आदि या पेशिक विकृति एव विपमागता भी शिक्षण मे बाधक रहती हे ।

६ युद्ध एव कुपोपण दोनो ही अवस्थाओ ने पगुता को विकसित किया हे । यह एक मानवीय दायित्व है कि विपमाग बालको को पोषण एव शिक्षा के समुचित अवसर मिले ।

विरूपित बालक एव शैक्षिक कार्यक्रम

विपमाग बालको हेतु शैक्षिक कार्यक्रम निर्धारित करते समय पगु बालक की अवस्था शिक्षण क्षमता, चिकित्सक के निर्देशन एव विशेष शिक्षण की आवश्यकताओ को परिलक्षित करना ही उचित होगा ।

घर—विरूपित बालक के लिये घर प्रथम विद्यालय है, जहाँ बालक सहानुभूति, सरक्षण, प्रेम, सहयोग, सेवा एव उपचार मे पोपण पाता हे । घर का पूर्ण सहयोग पगु बालक को प्रत्येक अवस्था मे मिलता रहना उत्तम है । परन्तु विद्यालयीय शिक्षा के ग्रहण की अवस्था बालक की क्षमताओ एव जाँच कार्यों के पश्चात् उचित होगी । उपचार के शीघ्र पश्चात् ही या विरूपण का प्रभाव साधारण हो तो साथ-साथ शिक्षण के अतिरिक्त घर पर भी शिक्षण निर्देश की व्यवस्था सम्भव है ।

चिकित्सालय कक्षा

चिकित्सा के साथ-साथ बालक मे शिक्षण के प्रति झुकाव प्राप्त करने एव मानसिक दृष्टि से उसे सशक्त करने के लिये यह उत्तम होगा कि चिकित्सालय मे अलग वर्ग बनाकर ऐसे बालको हेतु शिक्षण की व्यवस्था निर्देशन या कौशल के रूप मे हो ।

यक्ष्मा या अस्थिविकार मे ग्रसित बालको हेतु आवासीय आरोग्य केन्द्रो मे शिक्षण सुविधाएँ उपलब्ध करना उत्तम होगा ।

आवासीय शिक्षण संस्थाएँ

विरूपित बालको हेतु आवासीय शिक्षण संस्थाओ का महत्त्व अत्यधिक है जहाँ बालक घर के साधारण वातावरण से बाहर अपने ही वर्ग के बालको मे विशिष्ट देखभाल के अन्तर्गत चिकित्सा एव शिक्षण ग्रहण करता है। दीर्घकाल तक बनी रहने वाली विकृतियो से युक्त बालको हेतु ये संस्थाएँ अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई है। समुचित अवेक्षा की दृष्टि से दीर्घकालीन अवधि के लिये इनका अपना महत्त्व है। यहाँ बालक अपने मे आशा, विश्वास और आत्मनिर्भरता को विकसित होते अनुभव करता है। उसे अभ्यास की अवधि एव आवृत्ति अधिक मिलती है।

एक-कक्षीय व्यवस्था

आवश्यकता हो तो पगु बालको हेतु एक-कक्षीय व्यवस्था भी की जा सकती है। विषमाग बालको की सख्या विद्यालय मे इतनी अधिक नही होती कि कक्षा-क्रम मे सुविधा हो। अत. एक ही कक्षा मे कई स्तर के बालक पढ सकते हैं। ऐसा होने से पगु बालको की ओर विशेष ध्यान दिया जा सकता है एव कार्य मे बाधा भी नही पडेगी।

विशेष विद्यालय

विरूपित बालको के लिये विशेष विद्यालय की भी जिला स्तर या प्रान्तीय स्तर पर व्यवस्था की जा सकती है। इसमे आवासीय एव स्थानीय क्षेत्रो से चलकर आने वाले बालक भी सम्मिलित किये जा सकते है। पगु बालको हेतु विशेष आवागमन सुविधा प्रदान करना उचित होगा जिससे २५ किलोमीटर क्षेत्र मे रहने वाले विषमाग लाभान्वित हो सके।

एक पक्ष विशेष विद्यालय के प्रसग मे विवेचनीय है। अधिकाश विरूपित बालको की समस्या सीखने की समस्या नही होती है। वे आसानी से पढ-लिख सकते है, अन्य कौशल सापेक्ष कार्यों को भी कर सकते है। कतिपय अवस्थाओ मे तो बालको मे उत्साह एव गति को प्रदान करना मात्र ही पर्याप्त होता है जिसे सामान्य विद्यालय सहज भाव से कर सकते ह।

विशेष विद्यालयो के विभिन्न कार्यक्रम एव सुविधा व्यवस्थाएँ

विशेष विद्यालय विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे सभी सम्भावित अवस्थाओ को दृष्टि मे रखकर अपने यहाँ शिक्षण सुविधाएँ प्रदान करे जिसके वृत्त को इस प्रकार देखा जा सकता है।

१ विशेष शैक्षिक उपकरणो की व्यवस्था एव उपयोग।
२ विशेष कक्ष एव विशेषज्ञ सेवाएँ।
३ आवागमन सुविधाएँ।
४ परिभ्रामी अध्यापको द्वारा विकलाग बालको से सम्पर्क।
५. सामान्य विद्यालयो से सम्पर्क स्थापित करके आवश्यकतानुसार विशेष शिविरो का आयोजन।
६. पंगु बालको को शिक्षण निदेशन उपरान्त नियमित विद्यालयो मे प्रवेश सुविधा प्रदान करना।

७ वैयक्तिक निदेशन व्यवस्था एव अतिरिक्त अवेक्षा रखना।
८. अभिभावको एव विद्यालय की सगोष्ठियो का आयोजन।
९. शरीर विशेषज्ञ एव चिकित्सको के अभिलेख प्राप्त करना एव शिक्षण व्यवस्था हेतु उपकरण प्रदान करना।
१० प्रदर्शनी एव सास्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन।
११ खेल-कूद एव अन्य मनोरजन कार्यक्रम।

विरूपण एव सामाजिक समजन

विरूपण बालको मे सामाजिक समजन से दूरी बना देता है। बालक मुक्त रूप मे दूसरे बालको मे या समाज मे नही मिल पाते। अधिकाश बालक विषमाग बालको को उसी विरूप अग की सज्ञा से सम्बोधित करते हैं। इससे विकलाग बालक मे कुसमायोजन की भावना के साथ-साथ समाज से पलायन की वृत्ति विकसित होती है। उन्हे समाज मे अपना स्थान डावाडोल दिखाई देता है। ऐसे बालको को जब समाज स्वागत करता प्रतीत नही होता तो वे हिंसक तक हो उठते है।

कतिपय विकलाग समाज के साथ इतना स्वस्थ समजन स्थापित कर लेते है कि यह अनुभव भी नही होता कि उनमे कोई शारीरिक अक्षमता भी है। प्रेम, उद्योग, कारखाने, व्यापार, यन्त्र कार्य, रेडियो या अन्य उपकरण ठीक करने, चिकित्सा, कृषि एव अन्य क्षेत्रो मे उन्मुक्त मन से सक्रिय ही नही, सफल भी है। शारीरिक निर्योग्यताओ के होने पर भी विकलाग बालको को सामाजिक समजन के लिये आकर्षण देना उचित है। पगु बालको के पास पहिये वाली कुर्सियाँ या अन्य सुविधाओ सहित आवागमन तथा भ्रमण की सुविधा एव शिक्षण प्रदान किया जाना उत्तम है। सामाजिक समजन की यह अवस्था समाज एव विकलाग दोनो ही ओर से होनी चाहिये।

सामाजिक कुसमायोजन अनेक प्रकार से होता है। "समाज द्वारा विकलागो को उचित स्थान प्रदान न किया जाना एव उन्हे आवश्यक सेवा-सुविधाओ से वचित रखना सामाजिक कुसमायोजन का कारण बन जाता है।" (चन्द्रपति)

विकलाग एव वैयक्तिक समजन

कतिपय अध्ययन विवरणो से विरूपित बालको एव सामान्य बालको मे सीखने की दृष्टि से अन्तर प्रतीत नही होता। इन बालको का व्यवहार अधिक मर्यादित, सयत एव समजित होता है। कभी-कभी सामान्य बालको के व्यवहार की समस्या भी कई अवस्थाओ मे बडी विकट हो जाती है। वे उग्र, असयत, पलायनवादी, भीरु या अन्य प्रकार का व्यवहार विकसित करने लग जाते हैं।

शिक्षा कार्यक्रमो के लिए वैयक्तिक समजन को विकसित करने की भावना का विकास अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हुए भी दुष्कर है क्योकि वैयक्तिक व्यवहार शारीरिक अक्षमता के कारण हो या विकलाग विशेषावस्था के परिणाम-स्वरूप व्यवहार मे कोई विशिष्ट परिवर्तन उत्पन्न होगा यह अध्ययन के आधार पर अशुद्ध सिद्ध हुआ है। प्रायः व्यवहारगत समस्याएँ माता-पिता का विकलाग बालको के प्रति व्यवहार जैसे, अतिरक्षण, अवहेलना, तिरस्कार या हर समय दुःख प्रकट करते रहना आदि अवस्थाओं पर पर्याप्त निर्भर करती हैं।

माता-पिता या ग्रभिभावको की ग्रभिवृत्ति विकलाग बालको मे वैयक्तिक व्यवहार के समजन हेतु किसी न किसी रूप मे उत्तरदायी ग्रवश्य ही कही जायेगी । फिर भी वैयक्तिक समजन की ग्रवस्था मे सामान्य एव विकलाग बालक मे समजन का रूप विकलागो मे ही ग्रधिक होता ह । विशिष्ट गुणात्मक ग्रवस्था मे दोनो ही प्रकार के बालको मे कोई विशेष ग्रन्तर नही होता क्योकि सीखने के सामान्य सूत्र प्राय एक ही है । व्यवहार समजन मे सवेदीय स्थिति का भी ग्रपना विशिष्ट स्थान होता है । जिसके ग्रभाव मे नैराश्य ग्रौर तनाव फैलता है । सन्तुष्टि को प्रदान करने वाले प्रेरक तत्त्व यथा—वात्सल्य, करुण, प्रेम, दया, उत्साह ग्रादि जो ग्रसन्तोष, तनाव, पीडा एव उपेक्षित व्यवहार के कारण विलोडित जीवन को मुक्त कर उसके स्थान पर सहानुभूति, सेवा, सहयोग, एव मान्यता के माध्यम से व्यवहार को समजित करते है । यही ग्रनुकूलन की प्रवृत्ति विकलाग को समाज का सक्रिय ग्रग बनाती है ।

विरूपित बालक की शिक्षा एव ध्यातव्य बिन्दु

प्रस्तुत प्रसगान्तर्गत विरूपित बालक की शिक्षा के क्षेत्र मे जहाँ विरूप या विपमाग बालक सीखने की स्थिति मे सामान्य बालको की तुलना मे ग्रधिक ग्रन्तर नही रखता, ऐसे बालको की विकलागता विपयक विशिष्ट समस्याग्रो के ग्रतिरिक्त ग्रन्य निम्नलिखित बिन्दु भी ध्यातव्य हैं —

१ **सुरक्षा**—प्रत्येक विकलाग सुरक्षा चाहता हे जिससे वह ग्रपने जीवन मे विकास की दिशाग्रो को समुन्नत कर सके एव सशक्त लोगो द्वारा उत्पीडन से मुक्त हो सके । दैनिक जीवन मे कई बार ऐसी ग्रवस्थाएँ उत्पन्न हो जाती हे जहाँ शारीरिक सुरक्षा तक ग्रनिश्चित हो जाती है । इसकी ग्रोर विकलाग को, विशेषकर विरूपण की ग्रवस्था मे, शारीरिक दृष्टि से ग्रनेक क्षेत्रो मे कठिनाई का सामना करना पडता है उसे ग्रनेक स्थानो पर ग्रपनी सुरक्षा के लिए प्रतिस्पर्धा मे ग्राना पडता हे । सामाजिक सुरक्षा के ग्रभाव मे विकलाग बालक मे होने वाली प्रतिक्रियाएँ कुत्सित होगी ।

२. **मनोवैज्ञानिकता**—मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सामाजिक समजन शारीरिक इतना नही हे जितना कि सवेदीय । ग्रत विकलाग बालक के व्यवहार को मनोविज्ञान की दृष्टि से भी देखना चाहिये । विकलाग बालको की भावनाग्रो को समादर एव महत्त्व प्रदान करना चाहिये । निर्योग्यताएँ एव सन्देह को लेकर बार-बार कहना सुनना ग्रहितकर ही होगा । निदेशन एव सहायता के सहारे विकलाग की भावात्मक ग्रवस्थाग्रो का उन्नयन करना चाहिये ।

३ **ग्रात्म-विश्वास**—बाधाग्रो को विजित करने के लिए स्वानुभव के साथ ग्रात्म-विश्वास को विकसित करना भी ग्रत्यावश्यक है । ग्रपाहिज बालक के प्रयासो को सहायता देकर उसे सफलता की ग्राशा होते जाना, जिससे बालक मे सन्तोप एव ग्रानन्द की ग्रनुभूति हो । सुन्दर ग्रौर स्वस्थ शरीर बालक की विचारधारा एव कल्पना पर उसके कार्य एव भावी योजनाग्रो पर शारीरिक प्रभाव होता है । विकलाग बालक मे उसी उन्मुक्त स्थिति मे कार्य करने योग्य बना देने की ग्रभिवृत्ति का विकास एक बहुत बडी सफलता है क्योकि विपमाग बालको मे ग्रपने शरीर के कारण निराशा, भय, क्षोभ एव ग्लानि बनी रहती है । ग्रात्म-विश्वास एव मनोबल के विकास से वह ग्रपने स्वभाव का मार्गान्तरीकरण, सशोधन एव परिवर्धन कर लेता है ।

४. भग्नाशा—विकलाग वालक की भी अपनी आवश्यकताएँ होती है, परन्तु वह उन अभावो की पूर्ति उस प्रकार तीव्रता एव स्वच्छन्दता से नही कर पाता जैसे एक सकलाग वालक करता है। सामाजिक, सास्कृतिक एव पारिवारिक आयोजनो मे उसे सम्मिलित न होने पर असन्तोप होता है। अपाहिज अवस्था, एव सामाजिक स्वीकृति का महजत प्राप्त न होना, दोनो ही अवस्थाओ मे भग्नाशा के कारण वालक शिक्षण की ओर से प्रवृत्त नही हो पाता। विकलांग शारीरिक अक्षमतावश अपने आक्रोश को भी पूर्णत व्यक्त नही कर पाता, जिससे उसके मन मे और भी अधिक पलायन या अपराध-वृत्ति विकसित होती है। शैक्षिक लक्ष्यो की पूर्ति मे यही प्रमुख वाधक तत्त्व है। अशैक्षिकवृत्ति का क्षेत्र स्वयं विकलाग वालक तक ही सीमित नही होता अपितु वह साथी वालको को भी प्रभावित करता है जिससे समूह शिक्षण मे वाधा, अरतव्यस्तता या अव्यवस्था उत्पन्न होती है।

विपमाग वालक भग्नाश होकर समाज के साथ अपने व्यवहार मे असन्तुलित हो जाता है, यथा, अभद्र वोलना, दूसरो को दोप देना, अन्य हीन माध्यमो से अपने को सन्तुष्टि देना, दूसरो की सफलताओ पर खीझना, हवाई किले गढना, या फिर प्रयत्न एव प्रयासो का त्याग। इन सभी अवस्थाओ को दृष्टि मे रखकर शिक्षण प्रदान करना चाहिये। भग्नाशाग्रस्त वालको का पर्यवेक्षण के आधार पर अध्ययन करके आने वाले कारणो को दृष्टिगत रख शिक्षण व्यवस्था करना फलदायक होगा।

५. सहानुभूति एवं स्वीकृति—विपमाग वालक के प्रति वैयक्तिक एव सामूहिक जन-सहानुभूति शिक्षण के क्षेत्र मे महान उपलब्धि है। जीवन के विकटतम क्षणो मे सहानुभूति रामवाण सिद्ध होती है। जो वालक अनवरत सहायता मिलते रहने पर भी सफलता प्राप्त नही कर पाता, ऐसी भग्नाश स्थिति पर विजय प्राप्त करने के लिए सहानुभूति के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प ही नही है। विपमाग वालक मे इस भावना का विकास इस वात मे सहज हो जाना चाहिये कि विकलागता कोई हेय दोप नही है और यह उसे स्नेह और सहानुभूति के अधिकार से वचित नही कर रही है। इस स्वीकृति के प्राप्त हो जाने पर वालक न्यूनताओ के वावजूद शिक्षण के प्रति जागरूक रहता है। सुरेन्द्र के शब्दो मे "सहानुभूति स्नायुतन्तुओ को अविचलित, मस्तिष्क को चेतन एव अगो को सक्रिय रखती है।"

इसी परिप्रेक्ष्य मे क्षतिपूर्ति को भी सामाजिक स्वीकृति के रूप मे ही देखना चाहिये। जैसे, कार्यो मे सफलता मिलते रहने से विपमाग द्रुतगति से कार्य करता हुआ समाज मे अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित करता है, असफलता प्राप्त होने की दशा मे पुन कार्य करने की स्थिति मे अपने को नही पाता। यही वह स्थिति है जहाँ असफलता यह दर्शाती है कि सफलता पाने के लिए उसे अभी कितना श्रम, क्षमता और अभ्यास करना शेप है। सहानुभूति का अर्थ कदापि यह नही है कि विकलाग की वर्तमान स्थिति पर आँसू वहाये जायँ या उसके भाग्य को कोसा जाये, वरन् इन सवसे अलग विकलाग मे आशा, उत्साह और नये सिरे से कार्य करने की स्फूर्ति उत्पन्न करना ही सहानुभूति के जीवत घेरे मे आता है।

६. मार्गान्तरीकरण—विपमाग हेतु मार्गान्तरीकरण से तात्पर्य है अक्षम अग की पूर्ति अन्य स्वस्थ पक्ष द्वारा पूर्ण ही नही करना अपितु स्वस्थ चेतन पक्ष को उसके चरम तक विकसित कर उसकी उपयोगिता ग्रहण करना है।

विषमाग अपने शारीरिक अभाव की पूर्ति मानसिक या बौद्धिक उन्नति करके कर सकता है। एक पक्ष मे उन्नति करके दूसरे पक्ष की क्षति की पूर्ति की जा सकती है। इस प्रकार, चक्षुहीन सगीत एव साहित्यिक क्षेत्र मे, मूक, वधिर या अन्य विकलाग यथोपयुक्त शिल्प अथवा कलाओ मे, दक्षता, प्राप्त कर सकते है। मार्गान्तरीकरण विपमाग मे संतुष्टि प्रदान करता है तो कार्य के परिणाम उसे समाज मे स्वीकृति दिलाते है।

विरूपण एव सहायक उपकरण—सहायक उपकरणों के माध्यम से कार्य को सुगम एव सीखने की प्रक्रिया को गतिमान बनाया जा सकता हे। पैरो से अपाहिज बालको के लिए पहिये वाली कुर्सी, हाथों से अपाहिज के लिए नकली हाथ एव पेशिक गतियाँ प्रदान करने वाले उपकरण हितकर होते हैं। विशेष मेजे, घोडियाँ, बैसाखी, पुस्तक निलय उन वालको के लिए जो सही ढग से पुस्तक पकड भी नही सकते। विद्युत टकण-यन्त्र जो विशेष रूप से नियन्त्रित किये जाते हे। इसके अतिरिक्त विशेष चारपाइयाँ, सहारे के लिए पट, पेन्सिल नियन्त्रक, विशेष आराम-कुर्सियाँ आदि की आवश्यकतानुसार सुविधा प्रदान की जाये।

महाविद्यालय एव छात्रावास का भवन सामान्य हो, परन्तु कुछ विशेष बातो का ध्यान इन भवनो के निर्माण करते समय अवश्य रखना चाहिये। फर्श चिकने न हों, दरवाजे खुले हो एव इनके नीचे देहली न हो। शौचालय एव स्नान-गृह विकलागो की दृष्टि से सुविधा-सम्पन्न होने चाहिये। शारीरिक अक्षमता की पूर्ति करने के लिए जो भी प्रयास सहज सम्भव है, उनकी सुविधा विकलाग विद्यालय को अवश्य एकत्रित करके प्रदान करते रहना चाहिये। विकलाग बालको हेतु कक्षा की दृष्टि से सहायक उपकरण बालक की व्यक्तिगत विकलागता की अशक्तता को दूर करने वाले हों। उपकरणो का निर्माण बालक के व्यक्तिगत प्रयोग के लिए हो न कि सामान्य रूप से पूर्ण कक्षा के लिए। विपमाग बालक की आवश्यकता एव सुविधा के अनुसार ही उपकरण श्रेयस्कर है।

सार संक्षेप

विरूपण एव शिक्षा

विपमाग वर्ग के बालक विरूपितो के क्षेत्र मे आते है। अन्य विकलागो की अपेक्षा विपमाग बालको को उनकी निर्योग्यता का ध्यान रखते हुए शिक्षण श्रमसाध्य है।

विपमाग बालक किसी कार्य को समझने एव दत्त कार्याभ्यास मे औसत बालको से अधिक बाधा अनुभव करते हैं। इन्हे दो वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है।

१ पगु एव शारीरिक विकृति वाले
२ रोगो से ग्रसित विकृति वाले

विरूपण के कारण

१ जन्म-जात—अस्थि विकृतिया एव पेशीय विकृतिया हैं जिनके फलस्वरूप कुबडापन, हाथ-पैरो का छोटा या टेढा होना, मुखाकृति का विकृत होना आदि आते है। अभ्यास के माध्यम मे इनमे गति एव कुशलता उत्पन्न की जाये।

२ दुर्घटना—दुर्घटना या बीमारी के कारण उत्पन्न शारीरिक विकृति या आगिक विरूपण किसी कार्य के करने या सीखने की सहज गति मे बाधक होता है। सक्रामक रोग भी **विरूपण का कारण बन जाते हैं।**

विरूपण के साथ-साथ बालक अस्वस्थ रहता हो तो शिक्षण की स्थिति दोहरी दुष्कर हो जाती है। कार्य-दक्षता का सर्वथा अभाव या मन्द हो जाना इसके अन्तर्गत आते है।

विभिन्न विरूपणावस्था

मेरु धूसर रोग, सक्रामक रोग, दुर्घटना आदि विभिन्न विरूपणावस्थाओ को जन्म देते है, जिसमे रक्ताल्पता, यक्ष्मा, हृदय रोग, दमा, कुबड़ापन, पेशिक विकृति या विपमाग अवस्था उत्पन्न हो जाती है। युद्ध के फलस्वरूप भी बहुत से व्यक्ति विपमाग हो जाते है।

सन्तुलित पोषक आहार एवं शिक्षा द्वारा विपमाग बालको मे आशा एव उत्साह का सचार किया जा सकता है।

शैक्षिक कार्यक्रम—विपमाग बालक का अध्ययन करके चिकित्सा, निर्देशन एव विशिष्ट शिक्षण साथ-साथ चले।

घर—विद्यालय कार्यक्रम का घर मे भी ध्यान से निर्वहन किया जावे। आवश्यकतानुसार आवासीय आरोग्य केन्द्रो मे भी यथासम्भव शिक्षण सुविधाएँ उपलब्ध कराई जायँ।

आवासीय शिक्षण सस्थाएँ

समुचित अवेक्षा एव उपचार की दृष्टि से अत्यधिक विपमाग बालको हेतु चिकित्सा सुविधा से सम्पन्न इन आवासीय शिक्षण सस्थाओ का अपना महत्त्व है।

साधारण विद्यालयो मे एक-कक्षीय व्यवस्था भी उत्तम है। विशेष विद्यालय शोध शिक्षण उपकरण एव, दीर्घकालीन अवधि के लिए उत्तम है। अपग बालको हेतु आवागमन सुविधा व्यवस्था अवश्य होनी चाहिये।

ध्यातव्य विन्दु

उपकरण
विशेषज्ञ की नियमित सेवाएँ
आवागमन सुविधा
परिभ्रामी अध्यापक सम्पर्क
विशेष शिविर, सगोष्ठी, व्याख्यान आदि
निदेशन
प्रदर्शनी एव अन्य आयोजन
मनोरजन

सामाजिक समंजन

विपमागो के प्रति अलगाव की भावना सामाजिक कुसमायोजन का कारण बन जाती है। सद्भाव एव स्नेह और आशा के सहारे सामाजिक समजन प्रदान किया जाये। वैयक्तिक समजन का भी ध्यान विद्यालय के लिए आवश्यक है। समजन मे सवेदीय अवस्थाओ का भी अपना विशिष्ट स्थान है। सामाजिक एव वैयक्तिक स्वीकृति ही समजन मे प्रमुख है।

विरूपित बालक की शिक्षा का विशिष्ट पक्ष

सुरक्षा (सामाजिक एव वैयक्तिक, आजीविका)
मनोवैज्ञानिक—निर्योग्यताओ को लेकर बार-बार टोकना अनिष्टकर होगा।

आत्मविश्वास—(आशा एव आकर्षण)
भग्नाशा— (पलायन की वृत्ति को रोकना)
महानुभूति—(सामाजिक एव वैयक्तिक स्वीकृति)
मार्गान्तरीकरण—(क्षमताओ का विकास, शोधन आदि)

विरूपण एव सहायक उपकरण

यह सम्पूर्ण सामग्री विपमाग वालक की अवस्था एव आवश्यकता के अनुसार होनी चाहिये। दृश्य-श्रव्य उपकरण आदि का समायोजन भी इसी आधार पर होना चाहिये। वधिर एव ऊँचा सुनने वालो हेतु विशेप श्रवण-सहायक की व्यवस्था हो।

अध्यापक का विपमाग वालको के शिक्षण मे स्वय प्रशिक्षित होना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। विपमाग वालक की रुचि, सवेगात्मक समस्याएँ आदि का पूर्ण ज्ञान अध्यापक को होना चाहिये। सहायक उपकरण किसी भी प्रकार के क्यो न हो उनमे सक्षिप्तता, स्पष्टता, सरलता, विचार व्यवस्थानुसार आकृति, क्रमानुसार वोधगम्यता के साथ आकर्षक एव त्वरित गति से प्रेष्य वस्तु को प्रकट करने की क्षमता होनी चाहिये। वर्ण्य-विषय मे अस्पष्टता या विरोधाभास दर्शाने वाले उपकरण शिक्षण मे सहायक न होकर वाधक होते है।

II प्रमस्तिष्कीय संस्तम्भ (अंगघात) एवं शिक्षा

सम्पूर्ण शरीर का नियन्त्रक मस्तिष्क है। शारीरिक, मानसिक एव आवेगात्मक असन्तुलन की अवस्था का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि मस्तिष्क से नियन्त्रण हट गया है। विज्ञान आज भी मस्तिष्क की गुत्थियो को सुलझाने के लिए प्रयत्नशील है। वह अनुभव, आवेग, तर्क आदि की अवस्था को तन्त्रिकाओं (नाडियो) मे ढूंढ रहा हे। सम्भवत वहुत पहले यह विचार किया जाता रहा है कि मस्तिष्क के विभिन्न अगो के पास अलग-अलग काम हे। यही कारण रहा है कि वडे मस्तिष्क वाला व्यक्ति वुद्धिमान माना जाता रहा।

वैज्ञानिक आज यह अनुभव करने लगे हैं कि मस्तिष्क दो प्रकार से अपना कार्य करता है—

१ मस्तिष्क द्वारा मिश्रित कार्य—इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि मस्तिष्क किसी वस्तु को पूर्ण मे ग्रहण करके नियन्त्रित या सचालित करता है।

२ कतिपय कार्य ऐसे है जो मस्तिष्क के विशिष्ट भाग द्वारा ही नियन्त्रित या सचालित होते हैं, अर्थात् विशिष्ट कार्यों हेतु मस्तिष्क मे विशिष्ट विभाजन है, परन्तु किस अक्षमता का किस नाडी प्रणाली से सम्वन्ध हे यह निश्चितत. आज भी स्पष्ट नही है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ का अर्थ

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ का अर्थ है, मस्तिष्क द्वारा शारीरिक या वौद्धिक नियन्त्रण मे वाधा उपस्थित हो जाना। आग्ल भापा मे सेरिव्रल का अर्थ प्रमस्तिष्कीय एव पालसी का अर्थ है अगघात या अयोग्य होना, अर्थात् मस्तिष्क के कार्य वैकल्प की अवस्था। जागृत अवस्था मे मस्तिष्क द्वारा विभिन्न पेशिक क्रियाओ को सक्रिय रखने या गति देने का कार्य होता है।

मस्तिष्क पर आघात, या अविकसित मस्तिष्क, अनेक शारीरिक अयोग्यताओ को उत्पन्न कर देता है। मास्तिष्की स्वस्थता के अभाव मे अनेक खामियाँ उत्पन्न हो जाती है, इसी प्रकार मस्तिष्क पर हुये आघात से आंगिक सचालन वाधाग्रस्त हो सकता है, साधारण आघात की अवस्थाओ मे यह आवश्यक भी नही है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ की परिभाषा

शारीरिक पेशिक असामान्यावस्था, जो कर्पर रन्ध्र मे चोट या बीमारी के फल-स्वरूप उत्पन्न हो जाती है, प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के रूप मे जानी जाती है। बहुधा मस्तिष्क पर चोट लगने से शारीरिक प्रेरक क्षमता मे अस्तव्यस्तता उत्पन्न हो जाती है। "बाल्या-वस्था मे उत्पन्न होने वाली ऐसी अवस्था जो शारीरिक क्षीणता, पक्षाघात, शारीरिक बाधा आदि के कारण मस्तिष्क नियन्त्रण के वृत्त से दूर हो जाये या स्वय मस्तिष्क नियत्रक के आघात युक्त होने पर आंगिक सचालन मे बाधा उत्पन्न हो प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ का कारण बनती है।

शैक्षिक दृष्टि से प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के लक्षण इस प्रकार हैं —

१. सीखने की प्रक्रिया मे एकाएक कठिनाई एव बाधाएँ उत्पन्न हो जाएँ या अपेक्षित अधिगम सम्भव न हो।
२. व्यावहारिक समस्याएँ सामाजिक सन्तुलन को खो दें या व्यवहार मे असामान्यता उत्पन्न हो जाये।
३. मनोवैज्ञानिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाएँ।
४ ज्ञानेन्द्रियो या कर्मेन्द्रियो विषयक अन्य दोष उत्पन्न हो जाएँ।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एकमात्र कर्पर रन्ध्र मे विकार की अवस्था के परिणामस्वरूप ही नही होता, अपितु अन्य विकारग्रस्त स्थितियो के प्रभाव से भी उत्पन्न हो जाता है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ मे बालको मे दृष्टि-दोष, कर्ण-दोष, वाणी-दोष एव असामान्य सवेगीय विकलागता उत्पन्न हो जाती है। बौद्धिक क्षमता एव सीखने की गति भी बाधित होती है या मन्द पड जाती है। सामाजिक व्यवहार मे भी विचलन उत्पन्न हो जाता है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के कारण

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के प्रमुख कारण निम्नलिखित है—

१ प्रजनन की अहितकर परिस्थितियाँ,
२ जन्म के समय केन्द्रीय तन्त्रिका मण्डल पर प्रभाव पडना,
३. माता को हृदय रोग, रक्तहीनता या मस्तिष्क मे एकाएक रक्तस्राव। सहसा मानसिक आघात या गर्भपात की अवस्थाएँ बहुधा प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ का कारण बन जाती हैं,
४ बाल्यावस्था मे गहरी चोट लगना।

जन्म-काल मे लगने वाली चोट निश्चितत प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ का कारण बनती हैं। गर्भावस्था मे माता की उचित देखभाल न होना, अपूर्ण भोजन, मादक द्रव्य अफीम, विषाक्त भोजन एव गन्दे, अन्धेरे व दुर्गन्धयुक्त घर भी कारण हो सकते हैं।

बाल्यावस्था मे अनेक बीमारियो से आक्रान्त होना, जैसे हैज़ा, जीर्ण ज्वर,

इन्फ्लुएन्जा या अन्य बीमारियों के अतिरिक्त विष या शराब का प्रभाव भी प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ का कारण बन जाता है। राजस्थान मे शिशुओ को सुलाने के लिए गाँवो मे अफीम का प्रयोग बहुतायत मे होता है। इस रोग के फैलने का यह भी कारण बन सकता है।

सामान्यत गर्भावस्था एव जन्म-वेला मे असावधानीवश प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के अवसर अधिक रहते हैं। शारीरिक क्षीणता या दुर्बल-शरीर इस विकार मे अपनी रक्षा नही कर सकता। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की विकलागता भी प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ का कारण बन जाती है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के प्रकार

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ क्षय या चेचक की भाँति कोई रोग नही है, अपितु यह एक असामान्यावस्था है जिसे पाँच प्रमुख भागो मे विभक्त किया गया है।

१. **ग्रहीतांगता**—शारीरिक अवयव इससे प्रभावित होते हैं। ये हाथ-पैर या अन्य कोई भी अग हो सकते है जो कि ऐच्छिक रूप से गति करते है। मस्तिष्क के निश्चित खड कार्यो की गति, उद्दीपन आदि का सनिरोध करने के कारण सनिरोधक कहलाते हैं। जब सनिरोधक निष्क्रिय हो जाते है उस अवस्था मे पेशियाँ या तो ग्रहीतागता की अवस्था मे होती है या तनाव की स्थिति मे। साधारणत. सनिरोधक एव पेशिक क्रियाओ मे एक सन्तुलन होता है जिसके विलोपन से पेशिक गतिया अनियन्त्रित हो जाती हैं।

कई बार बालक प्रभावित होते हुए भी गतिशील होता है। परन्तु क्षमता अत्यन्त मन्द रहती है अत उसमे निपुणता नही आ पाती। पेशिक विभिन्नावस्थाएँ इससे प्रभावित हो जाती हैं। अधिकाशत हाथ एव पैर ग्रसित होते हैं परन्तु कई बार इससे ग्रीवा एव सिर भी प्रभावित हो जाते हैं।

ग्रहीतांगता की अवस्था का शारीरिक अवयवो पर प्रभाव

प्रथम—शारीरिक दृष्टि से पेशिक अनियन्त्रण प्रमुख है।

द्वितीय—प्रभाव की अवस्था तीव्र, मन्द या मध्यम

तृतीय—श्रवण, दृष्टि, वाणी, सीखना एव बुद्धि की अक्षमताएँ।

२ **हावभाव गतिभग**—अभिव्यक्ति के समय बालक के मुख-मण्डल पर पडने वाले प्रभाव अनियन्त्रित हो जाते हैं। उनमे गतिभग उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार चलते, उठते, बैठते, समय आगिक क्रियाएँ भी प्रभावित होती है। बालक मे समुचित आसन की अवस्था गडबडा जाती है। प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ की इस अवस्था मे सम्पूर्ण अक्रियाए चेतनावस्था मे घटित होती हैं। जैसे, पानी का गिलास होठो के न लगकर ठोडी से या नासिका से टकरा जाये, या भोजन करते समय रोटी का कौर मुह तक सीधा न पहुँचे। प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के इस रूप मे बालक बेबस रहता है। मुँह पर प्रकट होने वाले हाव-भाव अपना तारतम्य खो बैठते हैं।

३ अनन्वय—प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ का यह प्रकार, जब पैशिक सन्तुलन एवं सह-सम्बन्ध मे बाधा उत्पन्न हो, जाना जाता हे। आँखो मे जोर से झपकन, पैर को तेजी से उठाना या धीरे रखना आदि इसके लक्षण कहे जा सकते है।

प्रकम्प एव कठोरता—प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ की इस अवस्था मे सम्पूर्ण शरीर अनैच्छिक रूप से प्रकम्प की अवस्था मे आ जाता हे। पैशिक असतुलन बना रहता है। पैशिक कठोरता या गतिमन्दता या वाछित गति न दे सकना इसके लक्षण है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के परिणामस्वरूप, वाम हस्तता, बौद्धिक अभाव, श्रवण, वाणी तथा दृष्टि के दोष आदि शिक्षण मे बाधा उत्पन्न कर देते है। श्रवण दोष से दृष्टि दोष अधिक रहता हे, क्योकि नेत्रो की पैशिक क्रियाये कर्ण पैशिक अवस्था से अधिक द्रुत होती हैं। इसी प्रकार विलम्ब करके बोलना, हकलाना, वाणी घोष का अव्यवस्था क्रम भी इस ग्रस्तता के कारण होता है। प्रतिबोधन क्षमता का अभाव या क्रम-भगता, ध्यान या दृष्टि सबोधन का सही कार्य न कर सकना प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के स्पष्ट प्रभाव है।

मस्तिष्क के दाहिने पार्श्व का अर्धगोल यदि प्रमुख है तो वाम हस्तता होगी एव वाम अर्धगोल के प्रमुख होने से दाहिना हाथ सक्रिय होगा। प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ अनेक विकलागावस्था को उत्पन्न कर देता है। अत अध्यापक और अभिभावक इस रोग से ग्रसित बालक को गम्भीरता से लें व पूर्ण सावधानी रक्खे।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ और सीखना

चक्षुहीनता एव मूक-बधिर की भाँति वाह्य रूप से स्पष्टत प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ को नही जाना जा सकता। चक्षुहीन व्यक्ति का दृश्य सृष्टि अध्ययन दुष्कर है एव वह सीधे दृष्टि परिसीमा मे आने वाली वस्तुओ को देख नही पाता। इसी प्रकार बधिर व्यक्ति श्रवणीय ध्वनियो को सुनने मे असमर्थ है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ का प्रभाव बालक मे आन्तरिक शरीर से उत्पन्न होता है। कतिपय अवस्थाओ मे प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ को उचित विशिष्ट यान्त्रिक उपकरणो के अभाव मे निश्चित नही किया जा सकता। बाल व्यवहार एव भाषाई या वाचन सम्बन्धी निर्योग्यताओ को उचित पद्धति के प्रयास से सुधारने की आवश्यकता होती है।

यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि सीखने मे प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के अतिरिक्त मन्दता के और कितने कारण है। फिर भी इस सन्दर्भ मे निम्नलिखित पॉच अवस्थाओ का उल्लेख ध्यातव्य है —

१ उचित शैक्षिक निदेशन का अभाव।

२. अपर्याप्त एव उपयुक्त अवसर पर शिक्षा का आरम्भ न होना।

३ रुचि एव उत्साह का अभाव, बालक एव अध्यापक दोनो मे ही होना।

४ अति खण्डित गृह, जहाँ बालक को ताडना, तिरस्कार या अवहेलना का जीवन जीना पडा हो।

५ दुष्पोषण का प्रभाव।

प्रस्तुत अवस्थाओ मे भी बालक सामान्य शिक्षण ग्रहण करने मे औसत गति ग्रहण नही कर पाता। इसी प्रकार प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ की अवस्था मे सीखना सामान्यत संभव नही होता, इसका कारण शारीरिक अवयवो द्वारा पर्याप्त एव उपयुक्त नियन्त्रण-निर्देश ग्रहण नही कर पाना है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव शिक्षा

प्रमस्तिष्कीय मस्तम्भ मे प्रभावित वालक मे वहु-विकलागता का प्रकोप भी सम्भव है। वहु-विकलागता मे तात्पर्य है आगिक दृष्टि से शरीर के अन्य भागो का प्रभावित होना। अत शैक्षिक कार्यक्रम निर्धारित करते समय वहु-विकलागावस्थाग्रस्त वालको को भी दृष्टि मे रखना समीचीन होगा।

"प्रमस्तिष्कीय मस्तम्भ मे युक्त वालको हेतु शिक्षाक्रम की समुपयुक्तता उसी समय सम्भव है जव वालको का वर्गीकरण हो। यद्यपि शैक्षिक दृष्टि मे ज्ञानार्जन मे मस्तिष्क या बुद्धि का ही अधिक काम रहता है, फिर भी शारीरिक विकलागता का अपना एक दवाव भी है जो मस्तिष्क को प्रभावित कर सकता है।" (चन्द्रपति) कार्य योजना की दृष्टि से प्रमस्तिष्कीय मस्तम्भ का पाठ्यक्रम तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है प्रथम, शारीरिक अक्षमता सम्वन्धी, द्वितीय, मानसिक अक्षमता सम्वन्धी, तृतीय, मानसिक-शारीरिक मिश्रित अक्षमता सम्वन्धी। तृतीय प्रकार का पाठ्यक्रम दोनो ही प्रकार की अवस्थाओ को ध्यान मे रख कर निर्मित किया जाना श्रेयस्कर होगा। पाठ्यक्रम इतना लचीला होना चाहिये कि जिसमे विना औपचारिकता के आवश्यकतानुसार परिवर्तन, परिवर्धन एव सम्वर्धन करके वर्गीकरण किया जा सके।

पाठ्यक्रम की दृष्टि से वर्गीकरण का आधार

१ पूर्णत मन्द बुद्धि जो किसी भी प्रकार की शारीरिक विकलागता से ग्रसित है जिन्हे प्रशिक्षित किया जाना असम्भव हो।

२. शिक्षा के योग्य मानसिक मन्दता से युक्त वालक।

३ ऐसे वालक जिन्हे प्रशिक्षित किया जा सके।

४ मानसिक दृष्टि मे औसत बुद्धि वाले या जिनकी सीखने की गति मन्द हो।

५ पर्याप्त बुद्धि मे युक्त, परन्तु शिक्षण अक्षमता वाले।

६ मस्तिष्कीय अकर्मण्यता एव सीखने की अयोग्यता वाले परन्तु वे जो प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ मे ग्रसित न हो।

इस वर्गीकरण मे इतनी महज अवस्था है कि प्रत्येक वालक किसी न किसी वर्ग मे निश्चितत आ जाता है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव शैक्षिक अवस्थाये

शिक्षण प्रदान करते समय प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से प्रभावित वालको के समक्ष एक विस्तृत क्षेत्र खुला रहना चाहिये। विभिन्न शैक्षिक प्रक्रियाओ के होने से वालक, विकार ग्रस्त होते हुए भी, जिसे ग्रहण करना चाहेगा उसे अपनी क्षमताओ के अनुसार ग्रहण कर लेगा। जैसे, प्रमस्तिष्कीय मस्तम्भ मे प्रभावित तीव्र बुद्धि एव कम शारीरिक विकार युक्त वालक नियमित कक्षा मे अपना समजन सहज ही वना लेता है। इसके विपरीत मन्द बुद्धि एव अधिक शारीरिक विकारग्रस्तता से प्रभावित वालक को अधिक सुरक्षा एव अवेक्षा की आवश्यकता होगी।

अत प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के वालको के लिए शिक्षा व्यवस्था निम्नलिखित प्रकार मे सम्भव है।

१. **शैक्षिक पुरोगम**—प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के कारण प्रभावित वालको का

वर्गीकरण एव आयुवर्ग निर्धारित करके

(i) पूर्व-प्राथमिक (शिशु मन्दिर), प्राथमिक या माध्यमिक स्तर के वालको हेतु शिक्षा का प्रवन्ध करना।

(ii) प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से युक्त वालको को समजन के लिए सुअवसर एव सुविधा हेतु शारीरिक अक्षमताओ की परिसीमा मे सुविधा प्रदान करना।

(iii) सामान्य शैक्षिक प्रक्रियाओ की सुविधा उपलब्ध करना।

(iv) वैयक्तिक विभिन्नता के आधार पर विशिष्ट उपकरण एव व्यवस्था-सुविधा प्रस्तुत करना जिससे वाणी, भाषा, लेखन या पढने विषयक क्षमताओ का विकास हो सके।

प्रारम्भिक अवस्था (शिशु को शिक्षण हेतु तैयार करना)—प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से प्रभावित वालक को जन्म के पश्चात् से ही पूर्ण अवेक्षा की आवश्यकता है। माता-पिता का दायित्व है कि वे शिशु के विकास हेतु विशेषज्ञो से विचार-विमर्श करके तदनुसार कार्य करें। प्रारम्भ के दो वर्ष शिशु हेतु असहायावस्था के ही होते है, इस पर ऐसे विकार और भी जटिल स्थिति पैदा कर देते है। अत विद्यालयीय अवस्था मे पूर्व ही वालक को शरीर विशेषज्ञ, मनोविश्लेषक, शिक्षा विशेषज्ञ आदि के परामर्शानुसार पालना उत्तम है।

वाणी विकास, समझ एव शारीरिक क्षमता प्रदान के लिए माता-पिता का विशेष ज्ञान होना चाहिये। मुक्त रूप से पूर्ण अवेक्षा की स्थिति मे वालक के शारीरिक विकास मे योग देने के लिए उसकी क्षमताओ के अन्तर्गत ही प्रयास करे। साथी वालको की सहायता अत्यधिक हितकर होती है। मानसिक विकास, सामाजिक समजन, स्वय-सुरक्षा, खेलना, बोलना आदि प्रक्रियाओ मे वह स्वस्थ लगता है परन्तु विकास साधारण ही रहता है। एक महत्त्वपूर्ण वात जो प्रारम्भिक अवस्था मे विचारणीय है वह है शिशु को शाला के लिए तैयार करना।

पूर्व-प्राथमिक शिक्षा एव प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के प्रभावित शिशु को जितना शीघ्र हो सके शिक्षण व्यवस्था मे सक्षम वना देना श्रेयस्कर होगा। इससे वालक की आगिक चेष्टाये उसी के अनुरूप विकसित होने लगेंगी एव सीखने मे सहायक होगी। शिशु मन्दिर या वालोद्यान की व्यवस्था प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ मे प्रभावित वालको हेतु चिकित्सालय मे ही होनी समीचीन है। ढाई वर्ष की अवस्था से वालक को इन विद्यालयो मे समुचित शैक्षिक प्रयासो के लिए प्रवेश दे देना चाहिये।

अभिभावक या माता-पिता के दायित्व के पश्चात् दूसरा क्षेत्र शाला-पर्व कार्यक्रमो का आता है जिसका उद्देश्य निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है
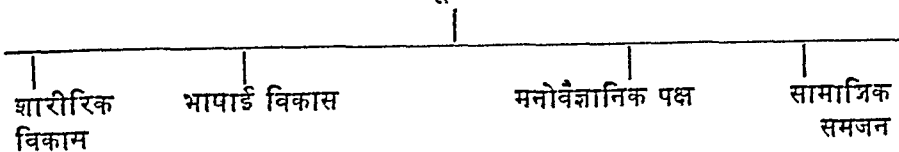
प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से प्रभावित वालको को नियमित शारीरिक चिकित्सा सुविधा, एव शरीर विशेषज्ञ चिकित्सक द्वारा जाँच आवश्यक है।

१. शारीरिक विकास—शारीरिक विकास से अभिप्राय शारीरिक क्षमताओ के विकास से है । इस निमित्त पूर्व-प्राथमिक स्तर पर विशेष उपकरण, आगिक चेष्टाओ हेतु सहायक उपकरण एव विशेषज्ञ का प्रावधान रहना चाहिये ।

२. भाषाई विकास—प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से प्रभावित बालको मे भाषाई विकार यथा ग्रहणशीलता का अभाव, स्पष्ट उत्तर न दे पाना या हकलाना या मन्दबुद्धित्ता ऐसे स्थल है जिसके लिए वाणी सुधारक एव विशेषज्ञ की आवश्यकता होती है ।

३. मनोवैज्ञानिक पक्ष—प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से प्रभावित बालक मे स्मृति, अन्तर भेद, सूझ, या ग्रहणशीलता को विकसित करना आवश्यक है । सीखने की प्रक्रिया मे इनका योगदान सर्वोपरि है, जैसे सुनना, वाक्य प्रयोग, अभिनयीकरण या समस्या-समाधान आदि पक्षो को विकसित करने हेतु खिलौने, सगीत, अन्य उपकरण एव वातावरण निर्मित करना अत्यन्त आवश्यक है । अध्यापक एक-एक करके बालक मे गतिशीलता को उत्पन्न करे, वह एक साथ उस पर कार्य का भार न आने दे ।

४ सवेगात्मक एव सामाजिक समजन—प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से प्रभावित बालको को सुअवसर प्रदान करना, उन्हे सवेगात्मक सुरक्षा प्रदान करना, जिससे वे आत्म-निर्भरता अनुभव कर सके, आवश्यक है । विद्यालयीय स्थिति बालको के साथ व्यवहार मे सहज होती है, जहाँ साथी बालको से समजन ही सामाजिक समजन है । ऐसी प्रक्रिया जो बालक मे अनुकरण की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करे एव प्रयास और जिज्ञासा को विकसित करे, बहुत लाभदायक सिद्ध होगी ।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि बालक को अनावश्यक सहायता देना हितकर नही है । उसे वातावरण प्रदान करना एव अक्षम अगो को क्षमता युक्त बनाते हुये अवेक्षापूर्वक स्वय विकसित होने देना उचित है ।

घर का दायित्वपूर्ण स्थान

सामान्यत घर एक सुरक्षित, अवेक्षापूर्ण एव वैयक्तिकता को समुचित विकसित करने वाला वातावरण है, जहाँ बालक को पोषण और स्नेह जन्म से ही प्राप्त है ।

साधारण बुद्धि-लब्धि से सम्पन्न बालक को प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ की अवस्था मे भी घर पर भली प्रकार शिक्षित किया जा सकता है । इसके लिये परिभ्रामी अध्यापक की व्यवस्था भी की जा सकती है ।

घर पर प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के उपचार या शिक्षण मे कठिनाई अनुभव होते देखकर यह भी सहज व्यवस्था की जा सकती है कि निकटस्थ प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ केन्द्र या चिकित्सालय के विशेष कक्ष मे ग्रसित बालको को कुछ समय के लिये प्रविष्ट करा दिया जाये । इन चिकित्सालयो मे या इन केन्द्रो पर अध्यापक द्वारा अध्यापन की सुविधा भी विद्यालय प्रदान कर सकता है । "चिकित्सा और शिक्षा या शिक्षा और चिकित्सा विकलाग बालको के विकास मे साथ-साथ चलने पर ही विकलाग बालक को स्वाश्रयी बनाया जा सकता है ।" (चन्द्रपति)

प्रस्तुत कथन के आधार पर यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि "चिकित्सा-विद्यालयो" का जन्म हो रहा है ।

चिकित्सा-विद्यालय एव शिक्षा

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से प्रभावित बालक मे जब विकारग्रस्तता विकसित होती

अनुभव होती है तो अल्पकाल के लिये या आवश्यक अवधि के लिये बालक को चिकित्सालय मे प्रविष्ट करा दिया जाता है। बालक एक निश्चित अवधि हेतु उपचारात्मक एव निदानात्मक परीक्षण के अन्तर्गत रहता है। यह एक ऐसा सुअवसर है जबकि बालक को शिक्षित किया जा सकता है। अच्छा होगा यदि प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से गम्भीर रूप से ग्रसित बालक को, जिनमे शारीरिक विकलागता की भी वृद्धि हो रही है, चिकित्सा विद्यालयो मे प्रविष्ट करा दिया जाये। आज हमारे चिकित्सालय उपचार तो अग का करते है एव मस्तिष्क को पगु बना देते हैं। अब चिकित्सालयो को नया इतिहास देना होगा जबकि विद्यालय शिक्षण के साथ चिकित्सा एव स्वास्थ्य निदेशन देंगे और चिकित्सालय उपचार के साथ अध्यापन सुविधा प्रदान करेगे।

प्रशिक्षण योग्य प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ

ऐसे शिक्षण योग्य बालक जो शारीरिक दृष्टि से विकलाग हैं, परन्तु बौद्धिक दृष्टि से औसत बालक है, या ऐसे बालक जो मन्द-बुद्धि है, परन्तु उनकी शारीरिक क्षमता ठीक है, उन्हे शिक्षित किया जा सकता है। साधारण प्रयत्न के साथ विद्यालय यह उत्तरदायित्व वहन कर सकता है। प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित, एव गम्भीर शारीरिक विकलाग बालको हेतु जिन्हे माता-पिता भी नही सम्भाल सकते, विशेष अवेक्षा के साथ-साथ मानसिक असामान्यता के क्षेत्र मे कार्य करने वाली सस्थाओ मे प्रवेश दिलाना श्रेयस्कर होगा। डा० आर० सी० महरोत्रा ने कहा, "विद्यालय उम्र का बालक, चाहे वह कोई भी क्यो न हो, विद्यालय से बाहर इस उम्र को नही जियेगा।"

विशिष्ट कक्षा व्यवस्था—कतिपय अवस्थाओ मे, जबकि प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ अधिक गम्भीर नही हैं, परन्तु जब सीखने मे बाधा है, सामान्य विद्यालय भी विशिष्ट कक्षा-व्यवस्था द्वारा इस क्षेत्र मे कार्य कर सकता है। विद्यालय एव सस्थाएँ अब इस दिशा मे प्रयत्नशील हैं व प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ की विभिन्न अवस्थाओ हेतु विशिष्ट कक्षा की व्यवस्था भी कर रही है। सामान्य रूप से ग्रसित अनेको बालक औसत छात्रो के साथ अध्ययन करते है।

परिभ्रामी अध्यापक एव विशेषज्ञ—विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे परिभ्रामी अध्यापक और विशेषज्ञ का महत्त्वपूर्ण स्थान विकसित होता जा रहा है। सामान्य विद्यालय मे ऐसे बालको हेतु जिनमे सीखने की अक्षमता है, भाषा, वाणी, लेखन या व्यवहार की समस्या का निराकरण व निदेशन सहज हो सकता है।

शिक्षा एव प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ विशिष्ट विन्दु

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित बालको की शिक्षा मे निम्नलिखित विन्दुओ का अपना एक विशिष्ट स्थान है। शिक्षा कार्यक्रम की रूपरेखा की सरचना इसी आधार पर हो तो अच्छा है —

१ विभिन्न आयु वर्ग एव प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ की अवस्था व स्तर के अनुसार बालको का शिशु, बाल एव किशोर अवस्था मे वर्गीकरण।

२ बालक प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से विशेष ग्रसित किन्तु कम शारीरिक अक्षमता।

३. बालक शारीरिक अक्षमता से विशिष्ट रूप से ग्रसित एव साधारण प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से प्रभावित।

४ सामान्य शिक्षा हेतु निदेशन वर्ग ।
५. विशिष्ट निदेशन एव अवेक्षान्तर्गत बालको का वर्ग ।
६ शारीरिक अक्षमताओ के अनुसार सुविधा ।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव बालावस्था

बालावस्था को शारीरिक आयु की दृष्टि से ६ वर्ष से १२ वर्ष तक स्वीकार किया जाता है । प्राथमिक स्तर पर शिक्षा ग्रहण करने वाले बालक इसी आयु वर्ग मे आ जाते है । प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित बालको मे, जिनमे सीखने की गति मन्द होती है एव जो औसत बुद्धि के बालक होते है, उन्हे शारीरिक एव व्यावसायिक क्षेत्र मे सुधार की ओर ले जाने वाली पद्धतियो द्वारा शिक्षण प्रदान करना श्रेयस्कर होगा, क्योकि यह प्रक्रिया एक दीर्घ अवधि तक चल सकती है जो निश्चय ही लाभप्रद होगी ।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव पाठ्यक्रम

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित बालको हेतु पाठ्यक्रम का निर्माण विकारग्रस्त बालक की विभिन्न अवस्थाओ को दृष्टि मे रखकर करते हुये उन सभी सम्भावनाओ पर भी विचार करके करना समीचीन है जो बालक की अक्षमताओ को यथासम्भव दूर करते हुये गत्यात्मकता प्रदान करने मे सहायक हो। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम के निम्नलिखित आधार द्रष्टव्य है —
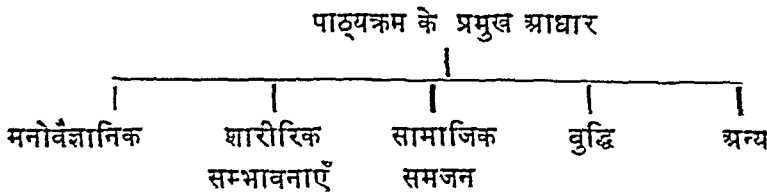
मनोवज्ञानिक आधार

पाठ्यक्रम निर्माण मे बालक की रुचि, वातावरण का अनुकूलन एव पठनीय सामग्री की एकरूपता को सन्तुलित रूप से उतारना अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है । बालक की वैयक्तिकता को एव बाल भावनाओ को विकसित करने हेतु व्यवस्था होनी चाहिये । पाठ्यक्रम मे विविधता और लचीलापन विकलाग बालक एव अध्यापक दोनो को लक्ष्य प्राप्ति मे सुगम होगा ।

शारीरिक सम्भावनाएँ

पाठ्यक्रम व्यापक एव शिक्षण की दृष्टि से बालक की शारीरिक सक्षमता के वृत्त मे आने वाला हो । विशेषकर लेखन, उद्योग, अभिनय, मुक्त क्रिया, मनोरजन आदि का प्रावधान सुलभ हो । कौशल क्षमता के साथ प्रत्येक कार्य जीवन के अविभाज्य अग के रूप मे हो जो विकलाग की आवश्यकताओ से जुडा हुआ हो ।

समाजिक समंजन

सम्पूर्ण शिक्षण-क्रम बालक को समाज के प्रति एक निष्ठावान प्राणी बनाता है । अत. यह आवश्यक होगा कि मानसिक दृष्टि से बालक सामाजिक समजन हेतु अपने को

तैयार करे एव स्वय समाज मे अपना दायित्वपूर्ण स्थान बनाये। कौशल क्षमता का विकास जीवन व समाजोपयोगी कार्य एव उद्योगो से हो जिससे विकलाग एक उत्पादक सदस्य अनुभव करे।

बुद्धि

शिक्षण कार्य जितना वातावरण, बाल रुचि, समाज या अन्य सम्भावनाओ को दृष्टिगत रख होता है उसे यदि बुद्धि-लब्धि से समन्वित नही किया जाता तो पाठ्यक्रम की सफलता अनिश्चित है।

अन्य—जो भी प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ विशेषज्ञ की टिप्पणी हो उसी के अनुसार शिक्षण सुविधा व्यवस्था उपलब्ध कराना आवश्यक है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव विषय

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित बालको हेतु प्रमुख शिक्षण विषय औसत छात्रो हेतु विषयो के सदृश ही हो, परन्तु बालको की समस्याओ का निराकरण एव सामाजिक मान्यताओ को पूर्ण करने वाले हो। ये विषय इस प्रकार हो सकते है —

१ भाषा एव साहित्य
२ गणित
३ सामाजिक अध्ययन
४ इतिहास
५ भूगोल
६ सामान्य विज्ञान
७ ललित कलाएँ (अभिनय, सगीत, चित्र)
८ विद्यालयीय सहगामी क्रियाएँ
९ खेल एव मनोरजन

विशेष—(विकलाग बालक का स्तर एव क्षमताओ को ध्यान मे रख प्रस्तुत विषयो की सीमा व क्षेत्र निर्धारित किये जाएँ।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव माध्यमिक स्तर

प्राथमिक स्तर पर समजित होने वाले छात्र सहज भाव से माध्यमिक स्तर पर अपने को नियोजित कर लेते है। इस समय तक आनुपातिक रूप से इनमे आत्मनिर्भरता का पर्याप्त सीमा तक विकास हो जाता है। वे अपनी शारीरिक विकलागता के अभाव की पूर्ति अन्य सक्षम अगो मे करने लग जाते है।

माध्यम स्तर पर शिक्षण पद्धति मे अन्तर कर देना चाहिये एव बालको मे स्व-क्रियाओ के प्रति आकर्षण जाग्रत करते हुये उन्हे स्वय सीखने की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त करना चाहिये।

युद्ध, प्राकृतिक प्रकोप, दुर्घटनाएँ आदि ऐसी अनिवार्य अवस्थाएँ है जो समाज मे अपग, विकलाग, प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव अन्यान्य विकारो से युक्त बालको को ला खडा करती है। अत यह उचित होगा कि औसत विद्यालय विशिष्ट कक्षा व्यवस्था की सुविधा प्रदान करे।

विद्यालयो मे विकलागो हेतु विशेष शाखा की स्थापना माध्यमिक स्तर पर न्याय-सगत है। बालको को घर से लाने ले जाने के लिये यातायात सुविधा की व्यवस्था भी आवश्यक है। विद्यालय अपने नियन्त्रण मे या स्वतन्त्र रूप से प्रमस्तिष्कीय संस्तम्भ ग्रस्त बालको हेतु निम्नलिखित सगठनो का निर्माण कर सकता है

१. विशेषज्ञ एव अभिभावक परामर्श मण्डल—प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित

बालकों की उचित जांच करके विशेषज्ञ परामर्श मण्डल के द्वारा सही निदेशन एवं बालकों में असन्तोष, आघात या अन्य प्रभावों का पता लगा लेता है। अभिभावक प्राप्त परामर्श अनुसार बालक की देखभाल करते हुये विद्यालयीय कार्यों में योग देते हैं। विशेषज्ञों द्वारा अभिभावकों को परामर्श प्राप्त होने का तात्पर्य प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ-ग्रस्त बालक का निश्चित निदेशन के अन्तर्गत पालन-पोषण एवं विकास होना है।

२. चिकित्सा सुविधा एवं शल्य चिकित्सा—चिकित्सा विशेषज्ञ की सुविधाएँ गंभीर परिस्थितियों में उपयोगी होती हैं एवं उस रोग में प्रभावित बालक को चिकित्सालय द्वारा प्राप्त उपचार सुविधा सहायक सिद्ध होगी। चिकित्सालय प्रवेश गम्भीर अवस्था में उचित होगा। आवश्यकतानुसार शल्य क्रिया भी सम्भव है, या किसी अंग को काटकर छोटा, या जोड़कर बड़ा भी किया जा सकता है। यांत्रिक सहायक भी उपयोग में लाये जा सकते हैं जिनमें हाथ-पैरों के संचालन में बालक को सुविधा हो सके।

३. शारीरिक प्रशिक्षण—शारीरिक शिक्षा के विशेषज्ञ से परामर्श करके बालक को उचित खेलों हेतु तैयार करना चाहिये जिसमें पैशिक सन्तुलन, गति, विकास एवं मस्तिष्क से सह-सम्बन्ध बन सके। शारीरिक प्रशिक्षण शनैः शनैः बालक के मस्तिष्क को भी नियन्त्रित करने लग जाता है। पैशिक शिक्षण के उपरांत बालक को स्वयं प्रयास करने की प्रेरणा देनी चाहिये क्योंकि आंगिक विकलांगता में गति अभ्यास से ही मस्तिष्क के नियन्त्रण में आती है।

शारीरिक प्रशिक्षण में खेचना, उठाना, गति देना आदि अभ्यास उपचारात्मक रूप में एवं पैशिक सशक्तता की दृष्टि से उत्तम रहता है। गेंद, खो-खो, झूला, तैरना आदि के अभ्यास से पैशिक एवं आंगिक दृढ़ता आती है। प्रातः भ्रमण साधारण अवस्था में उत्तम होगा।

पैशिक गतियों को नियन्त्रित एवं संचालित करने हेतु मस्तिष्क को स्वामित्व प्रदान करते हुये कौशल का विकास करना चाहिये। बाल रुचि के अनुसार पैशिक क्रियाओं के विकास हेतु कार्यक्रम निश्चित किया जाये। स्वयं सहायता प्रदान करने वाली क्रियाओं के अभ्यास में भोजन करना, कपड़े पहनना, कपड़े बदलना आदि कार्य सम्मिलित हैं। अभि-भावक, अध्यापक एवं विशेषज्ञ को बालक के विकास हेतु सामूहिक रूप से कार्य करना चाहिये।

संचार क्रियाओं को सुनियोजित करने के लिये दृष्टि एवं श्रवण का विशिष्ट स्थान है। अतः दृष्टि-दोष एवं कर्ण-दोष को दूर करने हेतु व्यायाम या उचित चिकित्सा का प्रबन्ध होना चाहिये। प्रायः प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से प्रभावित बालक को दृष्टि-दोष होना साधारण बात है, अतः नेत्र विशेषज्ञ से उपचार करवाना आवश्यक है।

सीखने की निर्योग्यता

भारत अब भी एक ऐसा देश है जो अपने बालकों को पूर्ण शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करने में असमर्थ है। विकलांग शिक्षा के क्षेत्र में यह और भी दुष्कर है। फिर भी प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित बालकों में वाणी का विकास, पढ़ना, लिखना साधारण गणित के प्रश्न हल कर सकना आदि की एक समस्या ही बनी रहती है।

सीखने की यह निर्योग्यता बालक की अन्य क्षेत्रों में गति को भी मन्द कर देती है। यद्यपि कभी-कभी विकलांगता विशेष में किसी विशिष्ट निर्योग्यता का सम्बन्ध अन्य

क्षमताओं को स्पर्श भी नही करता, यथा चक्षुहीनता का अर्थ श्रवण निर्योग्यता कदापि नही है। निर्देशन एव परामर्श मन्द गति से सीखने वालो मे गति देता है जिसके लिये किसी भी सीमा तक अभ्यास दिया जा सकता है।

सीखने मे निर्योग्यता के लक्षण

बालक मे उत्पन्न निर्योग्यता, अशुद्धि, अव्यवस्था, आवृत्ति, अशुद्धि, वाचन, लेखन, वाणी विषयक दोष को प्रकट करती है। कौशल-परक कार्यो मे बनावट, रूपरेखा, पहचान तक को प्रभावित करती है। अधिकाश अवस्थाओ मे सवेदीय असन्तुलन और मानसिक क्षोभ बढता रहता है। प्राय स्मृति विषयक दोष बुद्धि एव रचना व आकृति दोष शारीरिक या आगिक प्रभाव के कारण होते है।

शैक्षिक दृष्टि मे निर्योग्यता वह अवस्था है जहाँ बालक पर्याप्त निर्देशन एव शिक्षण उपक्रम के पश्चात् भी सीखने मे निर्धारित स्तर तक नही पहुँच पाता। इसी प्रकार लेखन, वाचन, गणित एव अन्य क्षेत्रो मे निर्योग्यता प्रकट होती है। निर्योग्यता यदि शरीर के आतरिक अगो मे है तो शरीर विशेषज्ञ या चिकित्सक की सहायता ले लेनी चाहिये।

निर्योग्यता जॉच के तत्व

अध्यापक का यह दायित्व है कि बालक मे निर्योग्यता की जॉच (१) क्षमता, (२) दो क्रियाओ मे अन्तर, (३) विशिष्ट लक्षण, (४) सम्भाव्य दक्षता, (५) उपचार एव (६) सुझाव को ध्यान मे रखते हुये करे।

विकलाग मे निर्योग्यता-अवस्था-जॉच के उपरात एक चार्ट तैयार कर लेना चाहिये। वरिष्ठ-अध्यापिका कुमारी ललिता एरी (आग्ल भाषा) जो १६६८ अर्थात् गत सात वर्षो से अन्न नही खा रही हैं, स्वभाव निर्माण पर बल देती है। उनका विचार है कि, "विकलाग शिक्षा उन सम्भाव्य अवस्थाओ का योग है जो आचरण, ज्ञान, व्यवसाय एव कौशल पर अभ्यासपूर्वक अपना अधिकार प्रकटाती है जहाँ विकलागता गौण होकर अपना रूप खो देती है।" इस दृष्टि से स्पष्ट है कि सम्भाव्य शिक्षण दिशा चार्ट व्यक्तिश प्रत्येक विकलाग के लिये सरल एव अच्छे परिणाम लाने वाला होगा। इस चार्ट मे विशेष उल्लेखनीय वह अवधि सीमा होगी जो अभ्यास के उपरात अग्रिम स्थल तक अध्यापक के लिये मार्ग खोल देगी। वस्तुत यह प्रगति-अभिलेख-सूचना निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने के सोपान का कार्य करेगी।

(श्रीमती) विद्या कौशिक के शब्दो मे, "इन निर्योग्यताओ के साथ निरकुश परिवार, कर्कश माता-पिता, दैन्य ग्रस्त सामाजिक अस्वीकृति, मनोवेदना, अन्य परम्पराएँ एव रुढियाँ, भग्नाशा, प्रेम-कुण्ठाएँ, अवि-व्यावसायी चिन्ता, घृणित व्यवहार जुडे हुये है। फिर भी व्यक्ति, घर, विद्यालय, धर्मस्थल, चिकित्सालय व्यवसाय केन्द्रो व सार्वजनिक सस्थानो से इस वर्ग के लिये सम्भाव्य विकास अवस्थाएँ खोज निकालनी होगी जिनकी सहायता से इनमे नवजीवन का सचार होगा।"

सार सक्षेप

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ (अगघात)

मस्तिष्क ही सम्पूर्ण शरीर का नियन्त्रक है। आघात, बीमारी या मानसिक दबाव

की स्थिति मे जव मस्तिष्क इस नियन्त्रण प्रक्रिया का सही सचालन नही कर पाता, प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ की अवस्था जानी जा सकती है।

शैक्षिक दृष्टि से सस्तम्भ के अन्तर्गत निम्नलिखित दोप प्रकट होते है —

सीखने की प्रक्रिया मे वाधा
व्यावहारिक समस्याएँ
सवेगात्मक समस्याएँ
ज्ञानेन्द्रियो एव कर्मेन्द्रियो मे असन्तुलन
अन्य दोप

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के कारण

गर्भावस्था एव जन्म के समय की घटनाएँ
माता का रुग्ण होना
आघात एव वीमारी
अन्य प्रकार की विकलागता।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के प्रकार

ग्रहीतागता—सनिरोधक एव पैशिक क्रियाओ मे असन्तुलन होना। इससे हाथ-पैर के अतिरिक्त सिर एव ग्रीवा भी प्रभावित हो जाते है। प्राय प्रभाव की अवस्था मन्द, मध्यम एव तीव्र होती है। तीसरी अवस्था मे नेत्र, कर्ण, वाणी आदि भी प्रभावित हो सकते हैं।

हावभाव गति भग—यह परवशता की स्थिति है, इसमे आगिक क्रियाएँ असन्तुलित हो जाती है।

अनन्वय—पैशिक सन्तुलन एव कार्य के सह-सम्वन्ध मे वाधा उत्पन्न हो जाती है।

प्रकम्प एव कठोरता—पैशिक असन्तुलन हकलाना, कम सुनना, दृष्टि-दोप एव शिक्षण मे वाधा अनुभव करना आदि प्रमुख है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ की पहचान दुष्कर है। इसका प्रभाव वालक के शरीर के आन्तरिक अगो से आरम्भ होता है। कुपोपण इस विकार मे सहायक है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव शिक्षा

पाठ्यक्रम को दो खण्डो मे विभक्त किया जाना उत्तम है।

पाठ्यक्रम

शारीरिक निर्योग्यता सम्वन्धी | मानसिक निर्योग्यता सम्वन्धी

शैक्षिक पुरोगम क्रमश (१) पूर्व प्राथमिक, (२) प्राथमिक, (३) माध्यमिक एव (४) व्यक्तिगत क्षमताओ एव विभिन्नता को दृष्टिगत रखकर।

शाला-पूर्व कार्यक्रम को भी इसी आधार पर चार वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है

शारीरिक विकास

भापाई विकास

मनोवैज्ञानिक पक्ष

सामाजिक समजन

मूलत इस विकार मे प्रयास यही रहे कि वालक चेतनापूर्वक जिज्ञासा का विकास करे। घर एव विद्यालय मे पूर्ण अवेक्षा का वातावरण हो।

शिक्षा मे घर को जीवन की महत्त्वपूर्ण पाठशाला कहा है। विकलाग वालको हेतु घर का दायित्व और भी वढ जाता है। विकलागो की अवस्था को देखते हुये विश्व मे चिकित्सा एव विद्यालय की सयुक्त स्थापना हो रही है। "विकलागो हेतु शारीरिक उपचार के उपरान्त शिक्षा हेतु अव प्रतीक्षा नही की जा सकती। उसे शिक्षण और चिकित्सा की सयुक्त विधि के माध्यम से ही शिक्षा प्रदान की जायेगी।" सुरेन्द्र की इस विचारधारा के अन्तर्गत गम्भीर प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से प्रभावित वालक भी आशान्वित हो सकते है।

विशिष्ट कक्षा व्यवस्था जिसमे नियमित चिकित्सा सेवा भी उपलब्ध हो सके।

परिभ्रामी विशेषज्ञ अध्यापक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित वालको की शिक्षा मे चिकित्सा, निर्देशन एव धैर्य की गति निर्वाध रहनी चाहिये।

विषय—प्राय समस्त विषयो की व्यवस्था हो तो उत्तम है। इसी प्रकार व्यावसायिक कुशलता को विकसित करने हेतु उद्योग भी आवश्यक है।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ मे कुछ वालक शारीरिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ मिलेगे। दूसरी ओर शारीरिक निर्योग्यता से युक्त मानसिक रूप से स्वस्थ हो सकते हैं। दोनो प्रकार की अवस्थाओ की तो पूर्ण सम्भावना हैं ही।

भापा, गणित, सामाजिक अध्ययन, सामान्य विज्ञान, ललित कला के अतिरिक्त विद्यालयीय सहगामी प्रवृत्तियाँ, खेल-कूद, मनोरजन एव रुचि कार्य। यह सुविधा साधारण विद्यालयो को भी प्रदान की जा सकती है।

विशेषज्ञ एव अभिभावक परामर्श मण्डल

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित वालको का पोपण एव शिक्षण इस मण्डल द्वारा विचार-विमर्शो पर आधारित होना चाहिये। आवश्यकतानुसार चिकित्सा सुविधाएँ भी प्रदान की जाएँ।

शारीरिक प्रशिक्षण द्वारा अक्षम अगो को शक्ति अर्जन अभ्यास दिये जा सकते है। सीखने और निर्योग्यता को दूर करने हेतु भी यह अभ्यास लाभप्रद है। अशुद्धि, अव्यवस्था, मानसिक क्षोभ एव अन्य दोपो के निवारण हेतु समय-समय पर जाँच भी उचित है। इसके अन्तर्गत—

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ की अवस्था, शारीरिक क्षमता, विकृति अन्तर, लक्षण के पश्चात् सम्भाव्य दक्षता, उपचार एव शिक्षण प्रकार, निर्देशन एव सुझाव प्रमुख हैं।

III वधिर एवं ऊँचा सुनने वाले बालक और शिक्षा

शिक्षण की दृष्टि से वधिर एव ऊँचा सुनने वाले वालक दोनों को शिक्षा देने मे पद्धति का अन्तर स्पष्ट है। ऊँचा सुनने वाले वालको मे भापाई ग्रहण योग्यता रहती है।

श्रवण सहायक यन्त्रो के माध्यम से इन्हे सहज भाव से शिक्षा प्राप्त करने की शीघ्र ही टेव पड जाती है, जिससे यह पढना, बोलना या सवेगात्मक नियन्त्रण प्राप्त कर लेते है । भारत मे लगभग १,५०,००० पूणत एव १४,००,००० आशिक वधिर है । इनके विधिवत् शिक्षण पर ध्यान देना आवश्यक है । वधिर बालक इससे विभिन्न अवस्था मे शिक्षित किये जाते है । उनकी समस्या जटिल है, जिन्होने कभी वाणी ध्वनि को नही सुना । अत उनमे स्वय वाणी का विकास नही होता, जिससे यह और भी दुष्कर कार्य हो जाता ह । विशिष्ट शिक्षा के क्षेत्र मे वधिर विकलागो का शिक्षण शेप विकलागावस्था के शिक्षण मे आवारत अत्यन्त दुष्कर ह ।

वधिर एव ऊँचा सुनने वाले बालको को शिक्षा प्रदान करते समय दोनो ही प्रकार के छात्रो का वर्गीकरण अवश्यम्भेव होना चाहिये । वधिर बालको को शिक्षा देते समय विशिष्ट रूप मे प्रशिक्षित अध्यापक एव उपकरणो की आवश्यकता होती है ।

शिक्षण से पूर्व ध्यातव्य विन्दु

वधिर एव ऊँचा सुनने वाले बालको को शिक्षित करने से पूर्व निम्नलिखित तथ्य प्रशिक्षक के समक्ष उपस्थित हो जाने चाहिये .—

१. अभिज्ञान—वधिर कक्षा मे प्रवेश करने से पूर्व सम्बन्धित अध्यापको को वधिर की अवस्था का ज्ञान लेना अत्यन्त आवश्यक है । इसके लिये एक ओर जहाँ तकनीकी जाँच हो वहाँ पर्यवेक्षण के आधार पर भी तथ्य प्राप्त कर लेने चाहिये । जैसे (१) रुचि, (२) बुद्धि-लब्धि, (३) सवेगात्मक समस्याएँ एव (४) समजन की स्थिति । वर्ग जाँच एव वैयक्तिक विभिन्नता-जाँच-पद्धति का प्रयोग भी सम्भव है ।

ध्यान की गति मन्द होना, असावधान रहना, असम्बन्धित प्रत्युत्तर का आना आदि का अभिज्ञान प्रवेश से पूर्व होना चाहिये । ध्वनि-तरग मापक द्वारा यह वर्गीकरण किया जा सकता हे । यह श्रवण-शक्ति मापक हज (HERTZ) कहलाता है ।

२ वधिर बालक का निर्धारण एव शिक्षण पुरोगम (कार्यक्रम)—वधिर बालक की पूर्ण जाँच विशेषज्ञ एव चिकित्सक दोनो द्वारा की जाने के पश्चात् प्राप्त अभिलेख द्वारा अयोग्यता एव अक्षमता को जानकर ही बालक हेतु शिक्षण पुरोगम की व्यवस्था करना समीचीन होगा । कतिपय बालक गम्भीर श्रवण विकार से प्रभावित होते है । इन्हे विशेष अवेक्षा एव प्रशिक्षण की नियमित आवश्यकता होती है । अत वर्तमान समय मे विकसित वैज्ञानिक पद्धतियो के माध्यम से जिज्ञासा को विकसित किया जाकर बधिर बालको हेतु विशेष कक्षाओ का प्रावधान किया जाना चाहिये ।

ऊँचा सुनने वाले बालक अपने औसत साथी बालको के सदृश ही होते है । आधुनिक समय मे यह उपयुक्त समझा जा रहा हे कि ऊँचा सुनने वाले बालक को नियमित कक्षाओ मे शिक्षा प्राप्त होनी चाहिये एव वह विशिष्ट क्षेत्रो मे शिक्षण प्राप्त करने हेतु विशेष अवबोध वर्ग मे निश्चित अवधि हेतु नियमित रूप से जाता रहे । विद्यालय प्रारम्भिक अवस्था मे विशेषज्ञ परिभ्रामी अध्यापक की भी व्यवस्था कर सकता है जिसे प्रवेश के अवसर पर, एव पश्चात्, अन्य जटिल अवसरो पर भी, आमन्त्रित किया जा सकता है । पूर्णत वधिर बालको को मूक-वधिर विद्यालय मे ही शिक्षण के लिये भेजा जाना चाहिये ।

(१) श्रवण-सहायक यन्त्र के नियमित प्रयोग का अभ्यास, (२) श्रवण-शक्ति के

विकास हेतु प्रयास, (३) फुसफुमाहट, (४) वाणीगत मुधार ।

श्रवण-सहायक के प्रयोग अवमर पर निश्चित निदेशन अध्यापक द्वारा छात्र को दिया जाना अत्यन्त आवश्यक है । पूर्ण दिन तक प्रारम्भिक अवस्था मे श्रवण-सहायक को कान मे नही रखा जा मकता । इमके प्रयोग की मर्वोत्तम विधि है प्रारम्भ मे निदेशित क्रम से तत्पश्चात् अल्पान्तर से, एव इमके वाद आवश्यकता होने पर ही श्रवण-सहायक का उपयोग । शून्य नलिका का प्रयोग भी उत्तम है ।

श्रवण शक्ति का विकास

श्रवण-शक्ति के विकाम मे अभिप्राय है विभिन्न ध्वनियो मे अन्तर कर सकने की क्षमता का विकास । वालक मे यह विकास जितना शीघ्र उत्पन्न हो सके उतना ही हितकर होगा । अभिभावक एव माता-पिता भी इस प्रक्रिया मे अध्यापक की सहायता कर सकते हैं । घर का वातावरण, नियन्त्रण एव निदेशन प्रारम्भिक अवस्था मे सहज सम्भव है ।

ओष्ठ द्वारा पढना--वाणी द्वारा वोले गये अश को समझना, उसका प्रत्युत्तर देना या उसे यथावत् दोहराना, हाव-भाव को अनुभव करना, वधिर वालको के लिये जटिल है । जो ऊँचा सुनने वाले वालक है—उनके लिये टेलिविजन की व्यवस्था सर्वोपरि है । इसमे दोनो ही प्रकार की स्थितियाँ हैं । दृश्य-श्रव्य उपकरण वालक की दोनो इन्द्रियो (श्रवण एव चक्षु) को चेतन रखना है । शिक्षण के ममय ऊँचा सुनने वाले वालको के टेलिविजन सैट को सक्रिय करते समय आवाज को कम और अधिक करके श्रवण-शक्ति या निर्धारण शक्ति को विकसित किया जाता है । ओष्ठ गति द्वारा, एव हाव-भाव प्रदर्शन द्वारा, ऊँचा मुनने वाला वालक एक धुँधला अर्थ निकालने का प्रयास करता है ।

ऊँचा मुनने वाले वालको की श्रवण-शक्ति एव उनके कथन को वल प्रदान करने हेतु एवं उनकी सूझ को वढाने के लिये अभ्यासार्थ कतिपय शव्दो का प्रयोग भी किया जा सकता है, जैसे-- ऊपर, नीचे, गेद, कुत्ता, विल्ली आदि अनेको ऐसे शव्द है जिनका प्रयोग एव अभ्यास देना निम्नलिखित विन्दुओ की दृष्टि से आवश्यक है --

१ शव्द का स्पष्ट स्वरूप,
२ पूर्ण इकाई को प्रकट करके वोध की स्थिति,
३ दृश्य ध्वनियो को प्रकट करके शिक्षण देना ।

वाणी ध्वनि का प्रशिक्षण--जो वालक उच्चरित ध्वनियो को स्पष्ट रूप से सुन नही पाते या ध्वनि को ग्रहण भी नही कर सकते, उनका वाणी-विकास या तो हो नही पाता, और यदि होता भी है तो दोपपूर्ण रहता हे । वहरे वहुत जोर से वोलते है, जिसका कारण स्पष्ट है कि वह अपनी ही ध्वनि नही सुन पाते । इनमे से कतिपय वातावरणीय शोर मे अपनी आवाज का समजन नही कर पाते । कुछ वहुत धीरे वोलते है । जोर मे वोलने का कारण प्रतिवाधी शक्ति का ह्रास एव धीरे वोलने का कारण सवाही शक्ति का ह्रास होना है । शिक्षण की दृष्टि से इनका आकलन अत्यन्त आवश्यक है, जिससे प्रभावित वालक को शिक्षित करने मे सुविधा हो ।

वाणी-ध्वनि की भूलो या अशुद्धियो को एकत्रित करके उनके प्रकार एव उनकी आवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त ही वाणी-दोप को दूर करने हेतु जाँच एव सुधार अभ्यास कार्य ममीचीन होगा । इसके साथ ही अध्यापक को वाणी ध्वनि मे

अस्पष्टता, बुलबुलाहट या किसी ध्वनि विशेष के लोप होने की बात भी सम्बन्धित बालक के अभिलेख मे अंकित करनी चाहिये ।

उपचार, प्रयास एव विधि

वाणी दोष दूर करने हेतु किये गये उपचार एव प्रयासो का अभिलेख भी अध्यापक को अकित करते रहना चाहिये, जिससे सुधार या भूल का तुलनात्मक ज्ञान बना रहे । इसका लक्ष्य यही है कि अध्यापक बालक की असामान्यावस्था के वर्तमान स्वरूप से परिचित रहे । प्राय प्रयास वैयक्तिक रूप से अधिक प्रभावी होता है । पाँच-छ बालको के वर्ग मे भी सुधार कार्य सहज सम्भव है । इसमे विशेषज्ञ की सहायता आवश्यकतानुसार ली जानी उचित है ।

शैक्षिक कार्यक्रमो मे ओष्ठ द्वारा पढे जाने का प्रयास एव ओष्ठ गति देखकर बधिर बालको द्वारा कथन का रूप, अभिप्राय एव सवेदना को ग्रहण करके उत्तर देना या स्पर्शाभास मौखिक विधि के रूप है । हावभावाभिव्यक्ति तथा हाथो के सकेत द्वारा शिक्षण विधि, जिसमे शून्य मे निश्चित सकेत बनाना जिनका निश्चित भाषाई अर्थ होता है, प्रभावी एव सरल विधियाँ है । यन्त्रो एव अन्य उपकरणो का प्रयोग भी यथासम्भव उत्तम रहता है । वस्तुत कोई एक विधि शिक्षण मे अन्तिम सफल विधि नही है । यह अध्यापक की दक्षता, बालक की ग्रहणशीलता एव वातावरणीय प्रभावो पर निर्भर करती है । बालक बालक मे जितना सीखता है वह स्वाभाविक रूप से किसी भी विधि से उतना नही सीख पाता ।

शिक्षण को प्रभावित करने वाले तत्त्व

सुनिश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि बधिर एव ऊँचा सुनने वाले बालको को शिक्षित करने मे पाँच निम्नलिखित तत्त्व अत्यन्त सक्रिय रहते हैं ।

विशिष्ट पाठ्यक्रम एव वधिर

श्रवण-शक्ति के ह्रास के साथ-साथ सीखने मे अत्यन्त बाधा उपस्थित हो जाती है। शैक्षिक एव सामाजिक समजन की दृष्टि से वधिर बालक को अत्यन्त कष्टकर स्थिति मे जीवन व्यतीत करना पड़ता है, जिससे मुक्ति दिलाने हेतु सुनियोजित पाठ्यक्रम की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योकि श्रवण-शक्ति-क्षीणता अनेको अक्षमताओ की शृङ्खला उत्पन्न कर देती है।

ज्ञान एव सूझ का विकास तभी सम्भव है जब भाषाई विकास एव वाणी की शक्ति का विकास हो। कौशल क्षमताओं का विकास भी इसी बात पर अवलम्बित है। अत वधिर बालको हेतु पाठ्यक्रम बनाते समय निम्नलिखित अवस्थाओ को ध्यान मे रखना अत्यन्त आवश्यक है।
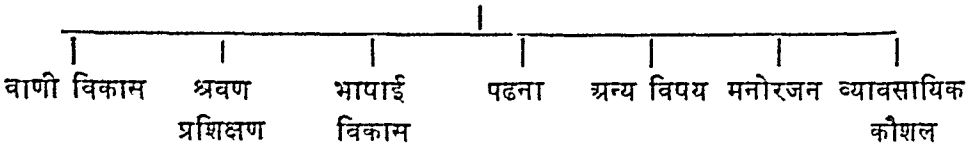
विशेषीकृत पाठ्यक्रम के निर्माण की आवश्यकता सम्बन्धित बिन्दुओ के अन्तर्गत वधिर एव ऊँचा सुनने वालो के लिये शोध परिणामो के आधार पर आँकी गई है। जितने प्रकार की वधिरता होगी उसी अनुक्रम से शिक्षण योजना का प्रावधान रखना समीचीन होगा। वधिर बालक को विषय ज्ञान के साथ-साथ उपचारात्मक निदेशन भी प्रदान कराना इस पाठ्यक्रम को सफल बनाना है।

पाठ्यक्रम निर्धारण काल मे ध्यातव्य बिन्दु

१ विद्यार्थी क्रमगत स्तर पर शिक्षण ग्रहण कर सके एव अध्यापक परिवर्तन को स्पष्ट रूप मे अनुभव कर सके।

२ भाषाई या वाणी विकास हेतु ध्वनि-खिलौनो के प्रत्युत्तर मे बालक अवश्य प्रयास करे।

३ पाठ्यक्रम इतना जटिल नही हो कि बालक या अध्यापक उसकी अनुपालना ही न कर सकें।

४ पाठ्यक्रम अत्यन्त लोचपूर्ण होना चाहिये जिसे वधिर बालको की आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जा सके।

५ पाठ्यक्रम बालक के जीवन मे जुडा हुआ होना चाहिये। यथा ध्वनि सिखाते समय 'मा', 'दा', 'चा', 'बा' आदि शब्दो का चयन, क्योकि बालक की अनुकरण प्रकृति मे घर से ही यह प्रयास विकसित होने लगता है।

६ पाठ्यक्रम सरल, सहज, रुचिकर एव सामाजिक मान्यताओ के अनुरूप होना चाहिये।

७ तकनीकी पद्धति जटिल और बोझिल न बने इस बात का समुचित ध्यान अपेक्षित होगा।

भाषाई विकास

भाषा का शिक्षण जितना सरल है उतना भाषा का ज्ञान देना जटिल है। भाषा

को समझने के लिये वस्तुओ के विभिन्न पक्षो की स्थिति का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। अनुपात-क्रम—वडा, छोटा, टेढा, सीधा, रग-भेद, रग-अन्तर, दूर का ज्ञान एव अन्तर, आदि के मिश्रण सभापाई विकास सम्भव नही हो पाता। कतिपय शब्दो का आशय स्पष्ट करना अत्यन्त दुष्कर है जैसे 'कल' जिसका अर्थ है, "चैन", "अगला दिन", "मशीन"—वाक्य प्रयोग की दृष्टि से, कल मे बैठो, वह कल जायेगा, कल ठीक नही है। अत अनवरत अभ्यास बधिर हेतु आवश्यक है। जटिल एव साहित्यिक मुहावरो का प्रयोग इस वर्ग के लिये नही करना चाहिये।

अभ्यास विधि—मूलत भाषा का ज्ञान प्राप्त करना दुष्कर कार्य है। बधिर को भाषा पढकर सीखनी पडती है और पढने का कार्य ही भाषा के माध्यम से सम्भव है। बधिर प्राय पढने का कार्य करने मे जी चुराता है। कुछ शब्दो का अन्तर अनवरत प्रयोग के पश्चात् ही स्पष्ट होता है। यथा मैन (एक वचन) मेन (बहुवचन) यह शब्द ओष्ठ ध्वनि द्वारा प्रकट नही हो पाते। इसी प्रकार हिन्दी मे 'श', 'ष' एव 'स' का अन्तर स्पष्ट करने मे बाधा आयेगी। अत इनके लिये वैज्ञानिक विधियो का सहारा लेना पडता है।

प्राकृतिक विधि—यह विधि अपने स्वाभाविक रूप मे अत्यन्त सरल विधि है परन्तु इसमे समय अधिक लगता है। यह विधि मनोवैज्ञानिको की देन है। इस विधि मे ऊँचा सुनने वाले विद्यार्थी प्राय सफल रहते है।

वाचन क्षमता का विकास

वाचन बधिरो के लिये अत्यन्त श्रम-साध्य होता है एव शिक्षण मे इसकी गति भी मन्द रहती है। शोध निष्कर्षो के आधार पर यह तथ्य सामने आया है कि बधिर बालक बुद्धि-लब्धि की दृष्टि से मन्द बुद्धि की श्रेणी मे आते हैं। प्राय वाचन की शिक्षा-वाणी का विकास, भाषा का शिक्षण अध्यापक के लिये एक जटिलतर कार्य होता चला जाता है। पढने मे अर्थ-ग्रहणशीलता से पता लगता है कि कितनी गति प्राप्त की है। सीधा या सक्षिप्त मार्ग बधिर को पढाने के क्षेत्र मे कभी भी अपनाया नही जा सकता। विभिन्न अवस्थाओ मे शिक्षण हेतु महती सावधानियो की आवश्यकता होती है जिसे निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया गया है।

१ **घर**—बालक चाहे कैसा ही हो, घर उसके लिये प्रथम विद्यालय के रूप मे जाना जाता है। माता की गोद, प्यार और दुलार मे जिस स्वाभाविक ढग से वह शिक्षा ग्रहण करता है वह अत्यन्त स्वाभाविक है।

बधिर बालक भी घर मे सर्वप्रथम हँसी, खुशी, प्रसन्नता, दु ख के भाव परिवार के मुखमण्डल पर पाता है वह मुँह को खुलते एव बन्द होते देखता है। विशेषज्ञो का कथन है कि जहाँ तक सम्भव हो माता-पिता हाथ के सकेतो से बालक को न समझाएँ क्योकि ऐसा करने मे वाणी को जो घु डियाँ, मोड या उतार-चढाव है उनका अनुभव बालक नही कर पाता है। माँ इस कार्य मे बालक को सर्वाधिक सहायता प्रदान कर सकती है। ओष्ठो की गति, मुखमण्डल के भाव, एव ध्वनि की गतियो से बालक समझने लगता है।

बधिर शिक्षाविद् का यह दायित्व है कि वह माता-पिता से निवेदन करे कि बालक को प्राकृतिक वातावरण मे ही बोलने या समझने का प्रयास देते रहे। माता-पिता एव अभिभावको को जानकारी प्रदान करने हेतु बधिर विद्यालय परिभ्रामी विशेषज्ञ या

अध्यापक विशेष आयोजन भी रख सकते हैं जिनमे वधिर बालको के माता-पिता भी सम्मिलित हो ताकि वे अपनी जिज्ञासा एव कठिनाई के निराकरण हेतु व्यावहारिक परामर्श भी ले सकें।

अभिभावको हेतु पत्राचार व्यवस्था

वधिर विद्यालय अपने यहाँ माता-पिता एव अभिभावको हेतु यह सुविधा भी प्रदान कर सकते हैं कि वे पत्र द्वारा अभिभावको को उनकी समस्या पर सुझाव एव निदेशन की व्यवस्था करे जिससे दूरस्थ प्रभावित लोग भी लाभान्वित हो सकें।

पूर्व प्राथमिक विद्यालय स्तर

माता-पिता या अभिभावक साधन के अभाव मे वधिर बालक विषयक जिन समस्याओ को घर मे अनुभव करते आये हैं वही पूर्व-प्राथमिक स्तर पर प्रशिक्षण हेतु प्रयुक्त किये जाने वाले शैक्षिक खिलौने, वाद्य-ध्वनियाँ, ड्रम, लेजियम एव अन्य उपकरणो की ध्वनि को उनकी ध्वनि तरगो के माध्यम से पहचानने लगते हैं जो शनै शनै वाणी को समझने मे सहायक होती है। आंशिक वधिर अभ्यास के पश्चात् अन्य विधाओ के सहयोग से प्रेष्य विषय-सामग्री को जानने लगते हैं।

अध्यापक के मुख को देखकर वे अपने नाम का आभास पा लेते है। पूर्व-प्राथमिक शाला मे खेलना, कूदना, दौडना, नाचना, रुकना आदि सीखते है। पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का क्षेत्र ढाई से छ वर्ष तक के बालको को खेल-खेल के माध्यम से साथी बालको के सम्पर्क मे लाना एव उनसे परिचित कराना है। दूसरे, बालक मे वाणी एव पढने के विकास का काम है। तीसरे, बालक को सख्या का ज्ञान देना, एव श्रवण-सहायक के प्रयोग का ज्ञान देना है। इन अवस्थाओ मे दिया जाने वाला अभ्यास यद्यपि श्रमसाध्य है परन्तु इसका फल अत्यन्त लाभप्रद है।

प्राथमिक स्तर

भाषा, पढना, वाणी आदि का ज्ञान प्राथमिक स्तर पर निश्चय ही अधिक सगठित होगा। इस स्तर पर बालक ६ से १० वर्ष की आयु मे रहता है। आवश्यकता हो तो इस वय के बालको को आवासीय सस्थाओ मे प्रविष्ट करा देना चाहिये।

माध्यमिक स्तर

माध्यमिक स्तर तक आते-आते बालक किशोरावस्था को प्राप्त होने लगता है। शरीर मे पुष्टता एव वृद्धि अत्यन्त तीव्र गति से होने लगती है। ऐसी अवस्था मे विशिष्ट कक्षाओ की व्यवस्था का सुनियोजन उत्तम प्रतीत होता है। साथ ही विशेषज्ञो एव परिभ्रामी अध्यापको के सम्पर्क मे आने की सुविधा उत्साहवर्धक परिणामो को देने वाली होती है।

व्यावसायिक जीवन

किशोरावस्था के साथ-साथ बालक मे व्यावसायिक कौशल के विकास हेतु भी रुचि उत्पन्न करनी चाहिये। वधिर बालक अच्छे कौशल-परक कार्य कर सकते है, जैसे वे काष्ठ-कला-विद्, कृषक, श्रमिक, यन्त्र-चालक बन सकते है एव कल--कारखानो मे सफलतापूर्वक अपनी क्षमताओ का उपयोग कर सकते है। पाश्चात्य देशो मे कुछ विशिष्ट वधिर औषधि, विधि, व्यापार एव यन्त्र के क्षेत्र मे भी कार्यरत हैं।

वधिर शिक्षा एवं अध्यापक

वधिर शिक्षा के क्षेत्र मे अध्यापक के दायित्व एवं उसकी परिसीमा के विशद् विवेचनोपरात शब्द के विभिन्न अर्थ-भेदो को समझाना, क्यो, क्या, कैसे, कितने आदि प्रश्नो के उत्तर प्राप्त करना, दोहरा दुष्कर कृत्य है। अत कतिपय ध्यातव्य पक्षो को इस प्रकार देखा जा सकता है :

१ भाषाई विकास बालक के जीवन से जोड़कर सिखाना।

२ भाषा शिक्षण अवधि निश्चित नही की जानी चाहिये। यह अनवरत प्रक्रिया है जिसे जीवन के सन्दर्भ मे ही सिखाना श्रेयस्कर होगा।

३ बालक की जिज्ञासा एवं रुचि को दृष्टिगत रखकर उसे विभिन्न स्वाभाविक अवस्थाओ की सुविधा देना उचित है।

४ औपचारिक या यान्त्रिक उपकरणो के प्रयोग मे सावधानी रखनी चाहिये। शीघ्रता हानिकर हो सकती हे।

५ विद्यालय, घर, बालक, अध्यापक एवं विशेषज्ञ अपना योगदान एक शृङ्खला के रूप मे प्रदान करे।

६ भाषाई विकास मे भाषाई जटिलताओ पर बल न देकर उसे स्वाभाविक रूप से विकसित होने देना अच्छा है।

७ अध्यापक, विशेषज्ञ एवं अभिभावक को बाल स्वभाव का सम्मान करना चाहिये। कोई आदेश वधिर पर थोपना अहितकर है।

सार संक्षेप

वधिर एवं ऊँचा सुनने वाले बालक और शिक्षा

विशेष रूप मे प्रशिक्षित अध्यापक एव शैक्षिक उपकरणो का प्रयोग सफलता देने वाला है। वधिर की पूर्वावस्था, बुद्धि-लब्धि, उसके पर्यावरण, उसकी सवेगात्मक अवस्थायें, एव रुचि आदि विषयक बातो का ज्ञान आवश्यक है।

शिक्षण पुरोगम (प्रोग्राम)

अन्य प्रक्रियाओ के अतिरिक्त श्रवण-सहायक का उपयोग, फुसफुसाहट एव निर्देशित क्रम मे चिकित्सा सेवाये प्राप्त करना। गम्भीर आघात से प्रभावित बालको को विशिष्ट विद्यालयो मे प्रविष्ट कराना चाहिये। साधारण अवस्था मे श्रवण शक्ति का विकास हितकर है।

शब्द का स्पष्ट स्वरूप

पूर्ण इकाई की स्थिति मे प्रतिबोध शक्ति

दृश्य ध्वनि को प्रकट करके शिक्षा

दूरदर्शन का प्रयोग

ध्वनि दोषो का सकलन कर उन्हे सुधारने हेतु विधिवत् प्रयास। हाव-भाव प्रदर्शन, ओष्ठ गति आदि का अभ्यास देना भी हितकर है।

उपचार प्रयास एव विधि

नियमित अभिलेख निर्मित करना, तदनुसार निर्देशन एव उपचार सेवाओ को ग्रहण

करना। बालक की ग्रहणक्षमता के अनुसार विधि का प्रयोग। बालक-बालक से जितना सीखता है वह स्वाभाविक रूप से किसी भी विधि से नही सीख पाता।
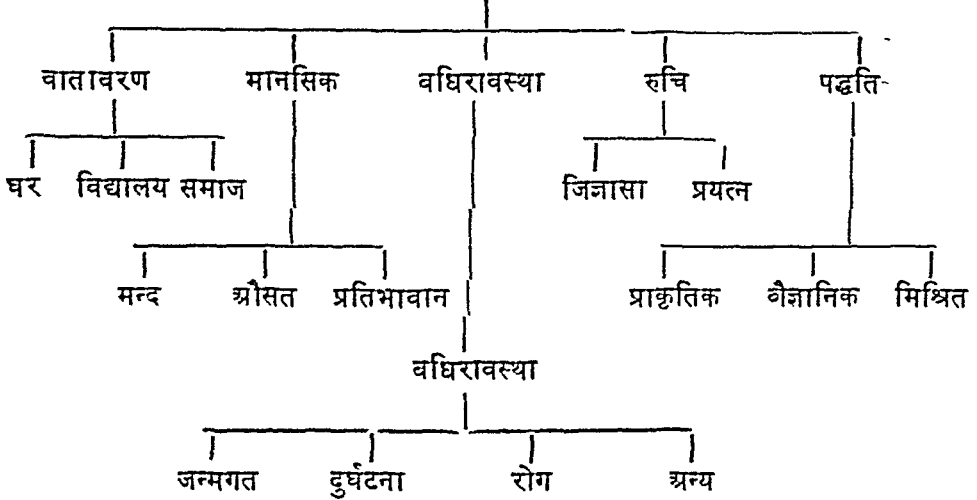
विशिष्ट पाठ्यक्रम व्यवस्था शिक्षण की दृष्टि से उत्तम है। व्यावसायिक पाठ्यक्रम बधिर बालक मे जीवन के प्रति एक विश्वास उत्पन्न करेगा।

भाषाई विकास
कौशल व्यावसायिक, सृजनात्मक एवं उपयोगी
मनोरंजन
अन्य विषय
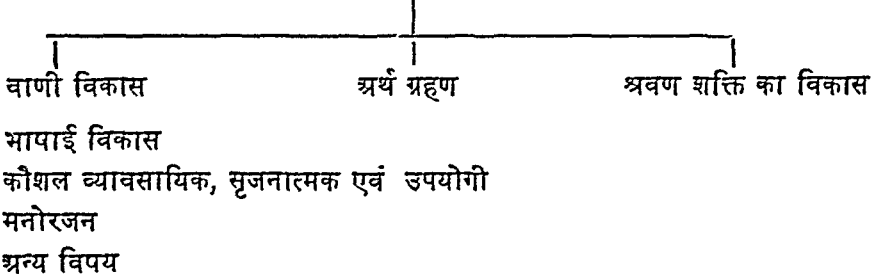
पाठ्यक्रम क्रमगत विकासोन्मुखी हो, लोच, जीवन से सम्बन्धित, रुचिकर, सामाजिक मान्यताओ से युक्त एव तकनीकी हो, जो बालक का समजित विकास करने मे सहायक हो।

बालक को प्राकृतिक वातावरण मे ही बोलने और अभ्यास का अवसर प्रदान करें। आवश्यकतानुसार अभिभावको हेतु भी विशिष्ट व्याख्यान, पत्राचार व्यवस्था, एव गोष्ठियाँ आयोजित की जा सकती हैं।

शिशु (प्रारम्भ से ६ वर्ष) बालक (६ वर्ष से १२ वर्ष) किशोर (१२ से १८ वर्ष तक)

व्यावसायिक जीवन की ओर उन्मुख पाठ्यक्रम वर्तमान युग की प्रमुख माग है। शिक्षण का जीवन से समवाय सरल विधि है।
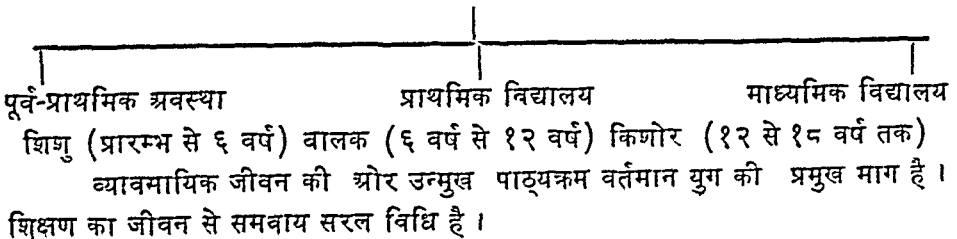
शिक्षण को जीवन पर्यन्त प्रक्रिया मानना
जिज्ञासा, रुचि एव आकर्षण
वैज्ञानिक यन्त्रो या उपकरणो का प्रयोग
विशेपज्ञ सेवाये
वातावरण
समायोजन।

II चक्षु विकलांग एवं शिक्षा

चक्षु विकलाग वालक

सृष्टि के सम्पूर्ण इतिहास मे शारीरिक विकलागता के क्षेत्र मे मर्वाधिक दु खद अवस्था दृष्टिहीन की स्वीकारी जाती रही है। मानव मात्र को अधिकाधिक मुखी वनाने हेतु किये गये प्रयामो मे विज्ञान के नेत्रो से विकलाग वर्ग भी ओझल नही हो सका।

सूर का चित्र

"बीसवी सदी मे विकलागो के प्रति समाज का दृष्टिकोण परिवर्तित करने की दिशा मे जो प्रयास हुआ वह स्तुत्य है। वैज्ञानिक शैक्षिक उपकरणो ने विकलागो की क्षमता, शक्ति एव विश्वास को व्यावहारिक रूप से जाग्रत किया एव उन्हे आत्म-निर्भरता के क्षेत्र मे औसत समाज के साथ ला खडा किया।" (शिक्षा सन्त स्वामी केशवानन्द) विश्व स्तर पर अनेकानेक शोध कार्यो के पश्चात् विभिन्न विकलागावस्था युक्त बालको को शिक्षित करने हेतु विकलाग विद्यालयो की स्थापना की गई।

चक्षुहीन विद्यालयो ने चक्षु विकलाग बालको मे अभूतपूर्व परिवर्तन किये। आदि-काल से ही चक्षुहीन का जीवन समाज की दया एव भीख वृत्ति पर आश्रित रहा है, यद्यपि भारत मे चक्षुहीन को 'प्रज्ञा चक्षु' एव 'सूरदास' की सम्मानित सज्ञा तक दी गई है। सगीत, साहित्य एव वाद्य यन्त्रो के क्षेत्रो मे कतिपय चक्षुहीनो ने विश्व ख्याति तक अर्जित की है। प्रख्यात कृष्णभक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास ने लगभग सवा लाख पद ससार को दिये। लुई ब्रेल जिन्होने चक्षुहीनो को स्पर्श माध्यम से पढाने हेतु सफल विधि विश्व को देकर चक्षुहीनो का बहुत बडा उपकार किया, स्वय चक्षुहीन थे। आज चक्षुहीन क्रिकेट जैसे खेल खेलना, पेराशूट द्वारा वायुयान से कूदने जैसे अद्भुत प्रदर्शन करने लगे है।

चक्षुहीनता से अभिप्राय

चक्षुहीनता जीवन के प्रत्येक स्तर पर आकी जाती है, यथा स्वार्थान्ध, मदान्ध, पदान्ध आदि यह प्रयोग समय एव कार्य के अनुसार समाज मे होता रहता है। आयुर्विज्ञान मे चक्षुहीनता से तात्पर्य है चक्षुओ से कुछ भी न देख पाना अर्थात् पूर्णत दृष्टिहीनता। शैक्षिक दृष्टि से चक्षुहीनता से अभिप्राय है, "ऐसा दृष्टि विकार, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षण अश रूप मे भी सम्भव न हो सके, चक्षुहीनता के रूप मे आका जायेगा।" (जगदीश चन्द्र मिश्र)

सामान्य रूप मे चक्षु विकार को शैक्षिक दृष्टि से चार भागो मे विभाजित किया जा सकता है

१ पूर्णत चक्षुहीन या जिन्हे प्रकाश या दिन के होने का भान नही होता।
२ ऐसी चक्षुहीनता जिससे बडी आकृतियो का मात्र छाया रूप आभासित हो।
३ ऐसी चक्षुहीनता जिससे तीन फुट से पाँच फुट की दूरी तक के मोटे अक्षर पढे जा सके या हस्त सकेत पहचाने जा सके।
४ अति क्षीण दृष्टि चक्षुहीनता जिसके होने से अनिवार्य दृष्टि कार्य करने मे बालक को थकान, बाधा या पूर्ण पहचान का भान करने मे कठिनाई हो।
५ रग हीनता या रग अन्धता भी शिक्षण मे बाधक होती है। प्रभावित बालक चित्रण एव प्राकृतिक अध्ययन मे रग का अन्तर नही कर पाता।

चक्षुहीन बालको का वर्गीकरण

शिक्षण कार्य को ध्यान मे रखते हुए यह उपयुक्त है कि कक्षा मे प्रवेश देते समय चक्षु विकार युक्त बालको का, उनकी शारीरिक एव दृष्टि की जाच के पश्चात् वर्ग निश्चित किया जाये। प्रवेश के मास पूर्व से चक्षुपरीक्षण या उपचार का कार्ड है तो वह भी लिया जावे। ऐसा करते समय चार बातो को दृष्टि मे रखना उचित होगा

१. स्वास्थ्य परीक्षण का चक्षु परीक्षण के विशेप सन्दर्भ मे प्रभावित छात्र का कार्ड तैयार करके उसमे नियमित चक्षु परीक्षण विवरण अकित करते रहना, जिससे अध्यापक को शिक्षण की उचित दिशा मिलती रहे ।
२ औपधोपचार के उपरान्त चक्षु कार्य का सामान्य होना ।
३ चश्मे की सहायता से शिक्षण मे सुविवा अनुभव करना ।
४ उपचार एव शिक्षण का साथ-साथ एक अन्तराल के पश्चात् क्रम से चलना ।

चक्षु विकलागता के क्षेत्र मे वेरथोल्ड लॉवनफैल्ड का वर्गीकरण शिक्षण की दृष्टि से अत्यन्त सन्तुलित है ।
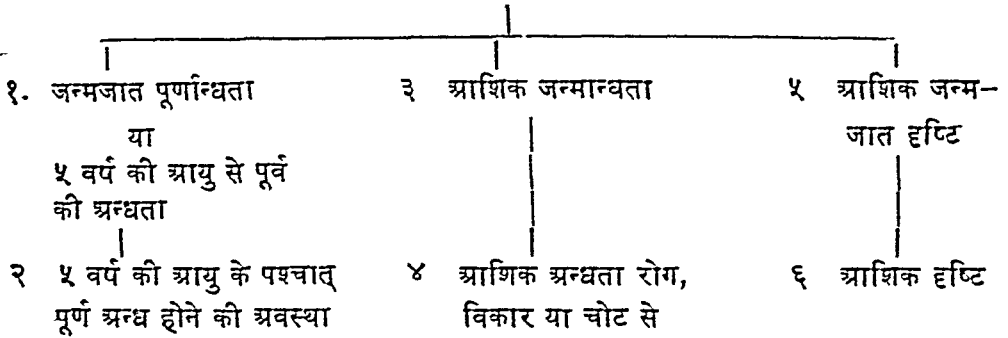
शैक्षिक दृष्टि से प्रथम चार स्थितियाँ चक्षुहीन वर्ग के अन्तर्गत आएँगी । प्राय यह अनुभव किया जाता है कि ५ वर्ष तक की आयु मे चक्षुहीन होने की स्थिति मे वालक के स्मृति पटल पर दृष्टि-चित्र कोई स्थायी प्रभाव नही छोडते । भारत मे विद्यालयीय अवस्था के वालको मे लगभग १५ से २० हजार पूर्णत अन्ध एव डेढ लाख से दो लाख आशिक अन्ध है ।

चक्षुहीनता के सामान्य कारण

नेत्र रोग विशेपज्ञो ने विभिन्न कारणो से उत्पन्न चक्षुहीनता के उपचारोपरान्त चक्षु-हीनता के सामान्य कारण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि चक्षुहीनता लापरवाही, उचित उपचार न करवाना एव वीमारी (विशेपकारी चेचक आदि) मे सुनिश्चित अवेक्षा न कर सकने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है । धूल, धूआ और धूप राजस्थान मे चक्षुहीनता के सामान्य कारणो मे से है जो आशिक अन्धता, रतौंधी या रग अन्धता को देते हैं ।

चक्षुहीनता के कारण

१. संक्रामक रोग—प्राय ६० से ७० प्रतिशत तक वालक सक्रामक रोगो मे असावधानी के कारण चक्षुहीनावस्था को उत्पन्न हुये है । रक्त के विकार भी अन्धता का कारण वन जाते हैं ।

२ दुर्घटना एवं चोट—सुरक्षा एव निर्देशन के अभाव मे मारपीट या दुर्घटना चक्षुहीनता का कारण वन जाती है ।

३ वशगत प्रभाव—परिवार मे अन्धता एव उससे ग्रसित सदस्यो की शृ खला का प्रभाव भी वशगत चक्षुहीनता का कारण वन जाता हे ।

४. साधारण रोग—नेत्र रोग व अन्य शारीरिक रोग भी चक्षुहीनता का कारण वन जाते है ।

५. विष का प्रभाव—विप का प्रभाव भी चक्षुहीनता का कारण हो सकता है ।

वाल विकास एव चक्षुहीनता

वाल विकास मे चक्षुहीनता निश्चितत एक स्पष्ट अवरोध हे । शारीरिक विकास के साथ-माथ मानसिक विकास के क्षेत्र मे दृश्य ससार का अपना महत्त्व सर्वोपरि है । ज्ञानेन्द्रियो के विकाम मे दृष्टि का अभूतपूर्व योग है । "सम्पूर्ण प्रकृति चक्षुहीन के लिए वेवस प्रकट है, सामाजिक जन-जीवन एक कल्पना मात्र हे । अवोध शिशु की भाँति उसके लिए नानी और दादी द्वारा कही गई परी लोक की कथा से वढकर कुछ भी नही ।" (ओम प्रकाश गौड़)

चक्षुहीनता वाल व्यक्तित्व के कई क्षेत्रो को प्रभावित करती हे, परन्तु सर्वाधिक परिलक्षित होने वाले दो प्रभाव हे ·—

१ वालक मे क्रियात्मकता का प्रभावी होना

प्रारम्भिक अवस्था मे जव वालक अपने घर, पास-पडौस एव ससार से परिचित होना चाहता है, वह अत्यन्त अल्प अवधि मे सभी कुछ जान लेना चाहता है । प्राय दृश्य सृष्टि के अतिरिक्त प्राकृतिक आकर्पण, ध्वनि, माँ-वाप का प्यार, वालक को आकृष्ट करता है । गतिवान वालक स्वप्रयास से ही जानने लगता है जवकि चक्षुहीन वालक के समक्ष सुरक्षात्मक प्रश्न प्रथम है । गिर न पडे, यह आशका तथा आग, पानी, पशु, सभी का तो भय उसे रहता है । "सच तो यह है कि चक्षुहीन वालक को प्रारम्भिक अवस्था मे सुरक्षा के नाम पर गतिहीन कर दिया जाता है, जिससे उसका ज्ञानात्मक विकास रुक जाता है ।" (चन्द्रपति) साधारणत माता-पिता भी चक्षुहीन वालक को अपने ऊपर भारस्वरूप मान-कर उसकी ओर से उदासीन हो जाते है ।

२. सामुदायिक जीवन की सर्वथा मन्द गति

चक्षुहीन वालक निष्क्रिय होकर एक ही स्थान पर अधिकतर पडे रहने की स्यिति मे आ जाते हैं । यह निष्क्रियता उन्हे अपने साथी वालको मे सम्मिलित नही होने देती, जिससे सामुदायिक व्यवहार का विकास वालक मे जिस अवस्था मे होना चाहिये था उस अवस्था मे नही हो पाता । दृष्टि के अभाव मे सामान्य औपचारिक विकास भी उसमे नही हो पाता ।

१ सामाजिक समजन की समस्या चक्षुहीन के समक्ष हर समय वनी रहती है ।
२ शारीरिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने पर भी चक्षुहीनता के कारण दृष्टि निर्णय न होने से पहचान की क्षमता केवल श्रवणेन्द्रियो पर ही आश्रित रहती है ।

विकलाग शिक्षा विशेषज्ञो के समक्ष आज भी चक्षुहीनो के शिक्षण को लेकर निम्न-लिखित कुछ प्रश्न सामने है :—

१ क्या चक्षुहीनो का चयन करके उन्हे अन्य आवासीय विद्यालयो मे प्रवेश दिया जाये ?
२. क्या चक्षुहीनता वालक की वुद्धि को प्रभावित करती है ?

३ क्या चक्षुहीनता बालक की शारीरिक वृद्धि, यथा ऊँचाई एव भार, को प्रभावित करती है ?

प्रस्तुत प्रश्नो का उत्तर इस वात पर अवलम्वित करता है कि वालक मे चक्षुहीनता किस अवस्था या किस कारण मे उत्पन्न हुई है। सामाजिक समजन एव वुद्धि मापन के जाँच पत्रो के मौखिक स्वरूप से प्राप्त निर्णयो के आधार पर चक्षु सम्पन्न एव चक्षुहीन वालको के स्तर मे कोई विशेप अन्तर प्राप्त नही हुआ।

ऊँचाई एव भार और चक्षुहीन

साधारणत यह अनुभव किया जाता है कि शैशवावस्था मे चक्षुहीनता के कारण, एव वालक की विकासावस्था मे शारीरिक पुष्टता न होने से, माता-पिता ऐसे वालक को अति-रक्षण प्रदान करते है जिससे वालक का विकास अवरुद्ध हो जाता है। पर्यवेक्षण के आधार पर कुछ तथ्य इम दिशा मे अवश्य प्रकट हुए ह (जिन्हे एक दृष्टि मे इम प्रकार जाना जा सकता है)। परिपक्व वालावस्था के आरम्भ के साथ वालक की वृद्धि ऊँचाई एव भार मे तीव्रता से विकास होता है।

शारीरिक क्षमता

चक्षुहीन वालको मे शारीरिक क्षमता का विकास भी वातावरण पर अत्यधिक निर्भर करता है। जिन चक्षुहीन वालको को अपनी शिशु अवस्था मे अपने साथी वालको के साथ खेलने, कुश्ती लडने, वृक्षो पर चढने, रस्सा खेचने, खुदाई का कार्य करने, भार उठाने आदि के कार्य करते रहने के अवसर मिले है उनकी शारीरिक क्षमता चक्षुवान वालको के समान अनुभव की गई है।

वाणी विकास

शोध के आधार पर चक्षुहीन बालको का वाणी विकास भी विलम्ब से होता है। कारण स्पष्ट है। परिवार को चक्षुहीन वालक के लिए स्वाभाविक रूप से जितना प्रयत्न वाणी विकास हेतु करना चाहिये वह नही हो पाता और न ही सम-वयस्क वालक ही चक्षु-हीन वालक से हिलते-मिलते है।

प्राय पर्यवेक्षण के आधार पर यह पाया गया है कि—

१ चक्षुहीन वालक दृष्टि सम्पन्न वालक से अधिक जोर से वोलता है।
२ हाव-भाव प्रदर्शन एव आगिक चेष्टाये प्राय दृष्टियुक्त वालक से भिन्न होती है।
३ चक्षुहीन मे कथन की गति मन्द होती है।
४ चक्षुहीन के ओष्ठ भी वोलते समय साधारण से भी कम गति करते है।
५ मौखिक अभिव्यक्ति के समय चक्षुहीन की वाणी मे उतार-चढाव या वाणी कौशल औसत वालको से कम होता है।

साथ ही यह भी स्पष्ट है कि श्रवण एव वाणी दोनो ही इन्द्रियाँ चक्षुहीन के जीवन विकास क्रम मे महत्त्वपूर्ण सहायक सिद्ध हुई है। चक्षुहीन व्यक्ति अपनी श्रवणेन्द्रियो को इतना चेतन रखता है कि साधारण सी ध्वनि उसे आकृष्ट कर लेती है।

भाषाई विकास

चक्षुहीन के समक्ष दृष्टि अन्तर से स्पष्ट होने वाली अवस्थाओ मे एक रग रूपता

नहीं होती यथा रात्रि के लिए अन्धेरा शब्द वह प्रयुक्त कर सकते हे। आशिक अन्ध बालक दृश्य वस्तुओ की पहचान मे अन्तर स्पष्ट कर सकते है। अनवरत अभ्यास एव श्रवण शक्ति के द्वारा चक्षुहीन अपनी भाषाई क्षमता का सहज विकास पा सकता है। कतिपय अवस्थाओ मे तो चक्षुहीन का भाषाई विकास दृष्टि सम्पन्न बालको से भी सशक्त प्राप्त हुआ हे। मानव दर्शन वेत्ता प्रज्ञा चक्षु स्वामी शरणानन्द विश्वख्याति के विद्वान, दार्शनिक, चिन्तक एव विचारक थे।

भाषाई विकास की दृष्टि से चक्षुहीनो मे सूचनाये, सामान्य जानकारी, गाँव या नगर मे विभिन्न सस्थाओ की स्थितियाँ, वैज्ञानिक एव गणित सम्बन्धी तथ्यो मे दृष्टि युक्त बालको से स्पष्ट अन्तर हे। इसमे अभ्यास की प्रक्रिया केवल स्पर्शज है, अत दृष्टि युक्त बालको से दुरुह है। योग्यता की दृष्टि मे सम्भवत चक्षुहीन अपने प्रयास से दृष्टि सम्पन्न बालको से अधिक योग्य हो सकते हैं। "भाषाई विकास अर्जित सम्पत्ति है, जो सतत प्रयत्न एव अध्ययन से प्राप्त होती हे।" (वि०वि० वाजपेयी)।

चक्षु विकलाग एव लेखन

वर्तमान ब्रेल पद्धति से पूर्व, सामान्य अक्षर ही उभरे रूप मे चक्षुहीनो हेतु पढने के लिए प्रयुक्त होते थे। इस माध्यम द्वारा पढना सम्भव था परन्तु लिखना अत्यन्त दुष्कर। प्राय अक्षरो की बनावट मे कठिनाई आती थी। "लगभग डेढ सौ वर्ष पूर्व दृष्टिहीन व्यक्ति पढते हुए भी अभिव्यक्ति के लिखित क्षेत्र मे लाचार थे, परन्तु स्वय विधाता ने एक दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति को दृष्टिहीन इसलिए बनाया कि वह ऐसा प्रयास करे जिससे शताब्दियो मे अवरुद्ध अन्ध-लेखनी गतिमान हो सके और यह थे लुई ब्रेल" (चन्द्रपति)

लुई ब्रेल

जन्म—पेरिस से २५ मील दूर कूप्रे (फ्रास) ग्राम के साधारण निवासी श्री सिमन ब्रेल की सबसे छोटी सन्तान, लुई ब्रेल, का जन्म ४ जनवरी १८०९ को हुआ।

परिचय—लुई ब्रेल के पिता पल्याण (चमडे का काम) बनाने का व्यवसाय करते थे। एक रोज तीन वर्ष के लुई ब्रेल की आँखो मे चमडा काटने की छुरी लग गयी। श्री सिमन ब्रेल अपने कार्य मे व्यस्त थे और बालक लुई ब्रेल वही पास बैठा खेल रहा था। इसके पश्चात् आँखे ठीक नही हुई। १० वर्ष का अन्धा लुई पेरिस की अन्ध पाठशाला मे पढने लगा। अपनी अभ्यास क्षमता एव एकाग्रता ने लुई ब्रेल को आशातीत सफलता और सम्मान दिलाया।

अध्यापक लुई ब्रेल—पेरिस के अन्ध विद्यालय मे अध्यापक लुई ब्रेल परम्परित माध्यम मे अनेकानेक जटिलताये अनुभव करने लगे। श्री चार्ल्स बारबियर—फ्रासीसी सेना अधिकारी—इनके अच्छे मित्र थे। एक रोज बात ही बात मे सेना के गुप्त सदेश प्रेषण विधि को लेकर विचार विमर्श इस सीमा तक बढा कि लुई ब्रेल ने बारह बिन्दुओ पर आधारित गुप्त सन्देश प्रेषण विधि का दृष्टिहीनो की समस्याओ को ध्यान मे रख अध्ययन आरम्भ किया एव कुछ ही समय के पश्चात् छ बिन्दुओ की कम से कम सहायता से चक्षु-हीनो के लिए जिस लिपि की सरचना की वही आज ब्रेल के नाम से विख्यात है। इस समय इनकी आयु २३ वर्ष की थी। दुर्भाग्य रहा कि लुई ब्रेल इस विकसित पद्धति का निर्माण करके भी स्वय इसे प्रचारित एव प्रसारित करने मे सकोच करते रहे। दूसरी ओर तत्कालीन सम्बन्धित अधिकारियो ने भी इसे चक्षुहीनो के लिए उपयोगी माध्यम नही समझा।

४३ वर्ष की आयु मे लुई ब्रेल का स्वर्गवास हो गया। १८५४ ई० मे पेरिस के अन्ध विद्यालय मे ब्रेल लिपि का अध्यापको के आग्रह के फलस्वरूप कठिनाइयो मे शुभारम्भ

लुई ब्रेल का चित्र

हुआ। इस विधि से पढने और लिखने की सरलता ने सम्पूर्ण विश्व का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया एव अपनी भाषा मे विश्व ने चक्षुहीनो के लिए इस लिपि को मान्यता और रक्षण प्रदान किय।

जन्म शताब्दी एव सम्मान—१९५२ मे लुई ब्रेल की जन्म शताब्दी मनाई गई। कूप्रे मे इनके घर मे ब्रेल सग्रहालय की स्थापना, ग्राम मे ब्रेल की प्रस्तर प्रतिमा की प्रतिष्ठापना, एव इनके शव को कूप्रे के मरघट से निकलवा कर, पेरिस के विशिष्ट श्मशान घाट पैंथिग्रान मे फ्रास के राष्ट्रीय पुरुषो की समाधियो के मध्य १४३ वर्ष बाद जन्म शताब्दी पर सम्मानपूर्ण स्थान प्रदान किया गया।

चक्षुहीन एव लेखन

चक्षुहीन को शिक्षण मे अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ एव कर्मेन्द्रियाँ हृष्ट एव सक्रिय होनी चाहिये। लिखने के क्षेत्र मे ब्रेल लिपि ने चक्षुहीनो को नव चेतना एव सफलता प्रदान की है। छ विभिन्न उभरे बिन्दु सकेतो के माध्यम से यह लिपि मोटे कागज पर अकित की जाती है। दोनो हाथो की अनामिका के अग्रभाग से इन उभरे बिन्दु सकेतो को स्पर्श करके अक्षर सकेत को जाना जाता है। विश्व की समस्त भाषाओ मे, जो चक्षुहीनो के निमित्त हैं,

इन्ही छ उभरे विन्दु सकेतो को विभिन्न प्रकार से अकित करके अक्षर, शब्द, सख्या, विराम-चिह्न आदि को स्पर्श द्वारा पहचाना जाता है ।

ब्रेल लिपि (छ विन्दु सकेत)

शिक्षण की दृष्टि से ब्रेल लिपि मे छ विन्दु सकेत है । यही छ विन्दु दो पक्तियो मे तीन-तीन की सख्या मे विभक्त होते है । ध्वनि सकेत या अक्षरो की रचना केवल उभरे विन्दुओ के आधार पर होती है । (पहचान की दृष्टि से — सकेत (–) रिक्त एव (•) उभरे विन्दु का सकेत है ।)

इस पद्धति के माध्यम से सगीत, गणित तथा सामाजिक एव वैज्ञानिक अवस्थाओ के रूपो का ज्ञान हो जाता है । मून का शब्दावली सकेत भी परिवर्धित रोमन रूप मे प्रचलित है । विश्व स्तर पर सयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक, सास्कृतिक सगठन ने १९५० मे ब्रेल लिपि के प्रसार हेतु प्रयत्न किया था, सम्भवत वह फलदायक नही हो सका ।

ब्रेल लेखन

मोटे कागज पर लेखन पाटी तथा सूचिका की सहायता से ब्रेल चिह्न उभारे जाते है । इन्हे सूचिका द्वारा कागज पर दवाव डालकर अकित किया जाता है । ब्रेल लेखन यन्त्र का भी प्रयोग अव सहज हो चला है । इसमे एक ध्वनि-सकेत के निर्धारित दवाव सकेत एक साथ अकित होते है । उदाहरणार्थ "पूर्ण विराम" अकित करते समय '– –' • • – • विन्दु २, ५, व ६ की विन्दु तालिकाये एक साथ दबाई जायेगी ।

स्टेन्सवी लेखन यन्त्र द्वारा कागज के दोनो ओर लिखा जा सकता है । मारवुर्ग एव पर्किन्स यन्त्र कागज के एक ओर लिखते है और लिखित वस्तु को साथ-साथ पढा भी जा सकता है परन्तु स्टेन्सवी लेखन यन्त्र या लेखन पाटी पर लिखा हुआ कागज को उलट कर पढना पडता है ।

स्पेनी, चीनी, एस्प्रान्ती, कोरियाई आदि भापाओ ने इसे अपने रूप मे ढाल लिया है । ब्रेल की एक व्यावहारिक कठिनाई यह है कि आकार और विस्तार की दृष्टि से छोटी सी रचना मुद्रित कृति से १० गुना अधिक स्थान व कागज घेर लेती है । यथा ब्रेल मे 'रीडर्स डाइजेस्ट' पत्रिका चार भागो मे अकित होती है एव आकार मे भी साधारण रीडर्स डाइजेस्ट से तीन गुनी वडी है । साधारण सा शब्दकोश १५ खण्डो मे पूर्ण होगा । परन्तु इतना होने पर भी मानवीय आधार पर चक्षुहीनो द्वारा ब्रेल लिपि मे अकित पत्र-पत्रिकाये नि शुल्क विश्व स्तर पर आती जाती रहती है ।

ब्रेल, एक उपलब्धि

चक्षुहीनो के लिये लिखित अभिव्यक्ति के रूप मे ब्रेल लिपि एक महान् उपलब्धि है । सन् १९३२ मे आग्ल भापाई स्तर पर विश्व ने आग्ल ब्रेल के स्वरूप को स्वीकार किया । इसकी सरचना मे ६३ विभिन्न उभरे विन्दु सकेतो की व्यवस्था है । चक्षुहीनो मे सूर और मिल्टन जैसे प्रतिभाशाली कवि हुये है, आज भी विश्व मे अनेको चक्षुहीन व्यक्ति ऐसे विद्वान् हैं जिन्होने अपने ज्ञान का ब्रेल लिपि के माध्यम मे सृष्टि मे प्रसार किया है ।

विज्ञान के इस युग ने नई आशा का संचार किया है। वह दिन दूर नहीं जब एक विशेष सूइयों की कलम के माध्यम से चक्षुहीन साधारण लिपि को भी पढ़ने लग जाएँगे। चक्षु-सम्पन्न लोगों ने नहीं, चक्षुहीनों ने चक्षुहीनों का मार्ग दर्शन किया है।

भारती ब्रेल

राष्ट्र की सभी प्रमुख भाषाओं में ब्रेल लिपि प्रचलित है। यथा हिन्दी, संस्कृत, गुजराती, पंजाबी, बंगला, असमिया, उर्दू, मराठी, तमिल, तेलगू, मलयालम, कन्नड, उड़िया आदि।

हिन्दी ब्रेल संकेत चिह्न

स्वर —

• –	– •	– •	– –	• –	• –
– –	– •	• –	– •	– –	• •
– –	• –	– –	• –	• •	– •
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ

• –	– •	• –	– •	– –	– –
– •	– –	– •	• –	– •	– –
– –	• –	• –	– •	– •	– •
ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः

व्यंजन —

'क' वर्ग —

• –	– •	• •	• –	– •
– –	– –	• •	• –	– –
• –	– •	– –	– •	• •
क	ख	ग	घ	ङ

'च' वर्ग —

• •	• –	– •	– –	– –
– –	– –	• •	– •	• •
– –	– •	– –	• •	– –
च	छ	ज	झ	ञ

'ट' वर्ग —

– •	– •	• •	• •	– •
• •	• •	• –	• •	– •
• •	– •	– •	• •	• •
ट	ठ	ड	ढ	ण

'त' वर्ग —

–●	●●	●●	–●	●●
●●	–●	–●	●–	–●
●–	–●	––	●●	●–
त	थ	द	ध	न

'प' वर्ग —

●●	––	●–	–●	●●
●–	●●	●–	–●	––
●–	●–	––	––	●–
प	फ	ब	भ	म

अन्य —

●●	●–	●–	●–	●●	●●	–●	●–
–●	●●	●–	●–	––	●–	●–	●●
●●	●–	●–	●●	–●	●●	●–	––
य	र	ल	व	श	ष	स	ह

●●	●–	●●	––●–	––●●
●●	–●	●●	–●●●	–●●●
●–	–●	–●	––●–	–––●
क्ष	ज्ञ	ड़	ऋ	ढ़

विराम चिह्न एवं अन्य चिह्न

––	––	––	––	––	––	––	––
●●	●–	●–	●–	●●	●●	●–	–●
–●	––	●–	●●	●–	––	●●	●●
।	,	,	?	।		“	”

–– ––	––	–– ––	–– ––	–– –– ––
●● ●●	––	–– ––	–● –●	–– –– ––
●● ●●	●●	●● ●●	●– ●–	●– ●– ●–
( )	-	—	*	...

संख्या सूचक —

–●
–●
●●

हलन्त —

–●
––
––
्

विशेष

समस्त भारतीय भाषाओ मे विराम चिह्न एव अन्य सकेत एक से ही प्रयुक्त होते हैं।

ब्रेल लिपि मे आधे अक्षर नही लिखे जाते।

मात्राओ के स्थान पर स्वतन्त्र रूप से स्वरो का प्रयोग होता है।

अनुस्वार, चन्द्र-बिन्दु एव विसर्ग अक्षर के पश्चात् लिखे जाते हैं।

सयुक्ताक्षर मे सकेत बिन्दु ४, सयुक्त अक्षरो के पूर्व लगता है।

ब्रेल लेखन

ब्रेल लेखन चक्षुहीनो के शिक्षण पाठ्यक्रम मे एक क्रान्तिकारी विधा का आगमन है, जिसने चक्षुहीनो को अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे स्वतन्त्रता प्रदान की है।

विभिन्न उपकरणो के माध्यम से द्रुतगति से लेखन कार्य सम्भव है। ब्रेल लेखन यन्त्र या ब्रेल टकण से एक मिनट मे अच्छा ब्रेल टाइपिस्ट चालीस से साठ अक्षर टकित कर सकता हे। टकण यन्त्र के कुन्जीपटल पर भी वही छ बिन्दुओ की उभरे मानो (सकेतो) को प्रकट करती पद्धति रहती है।

हस्त ब्रेल लेखन के लिये विशेष पट्टी या स्लेट विधि का प्रयोग होता है। ये ब्रेल पट्टियाँ बडी एव जेबी आकार मे उपलब्ध है ये दोहरी होती हैं। इनके मध्य कागज लगा दिया जाता है, एव स्लेट पर अकित चिह्नो को कथन या विचारानुसार दबाते रहने से नीचे कागज पर बिन्दुओ के उभार अकित हो जाते हैं।

टकण कार्य (टाइप)

टकण कार्य को प्राथमिक स्तर पर प्रयुक्त नही किया जा रहा है। तीसरे एव चौथे स्तर तक आते-आते मानकी टकण यन्त्रो का चक्षुहीनो द्वारा प्रयोग सम्भव होता है। वर्त-मान समय मे चक्षुहीनो को हस्ताक्षर करना भी सिखाया जाता हे। स्वतन्त्र लेखन का प्रयास या सुलेखन का अभ्यास बालको को प्राय कम दिया जाता है।

कतिपय सस्थाओ ने इस क्षेत्र मे अपना अभूतपूर्व योगदान दिया है। टाटा कृषि एव ग्रामीण चक्षुहीन प्रशिक्षण केन्द्र फानसा (गुजरात) एव वॉरली (बम्बई) चक्षुहीनो को सेवा कार्य प्रदान करते है।

सवेदी प्रतिबोध

स्वाभाविक रूप से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि जब एक अग अक्षम हो जाये तो शेष अग या कोई अग-विशेष उस अभाव की पूर्ति निमित्त अधिक सक्षम होकर सक्रिय हो जाते हैं, जैसे, चक्षुहीन व्यक्ति अधिक सजगता से सुन सकता है, एव मन्द से मन्द ध्वनि को अति दीर्घ काल तक स्मरण रख सकता है।

चक्षुहीन अपनी अन्य सवेदनात्मक स्थितियो का, कार्य के विभिन्न क्षेत्रो मे, अधिक प्रभावशाली उपयोग कर सकता है। आवश्यकता इस बात की हे कि चक्षुहीन की योग्यताओ का अधिक सुगठित योग जीवन के सभी क्षेत्रो मे लिया जाये। शैक्षिक क्षेत्र मे चक्षुहीन की योग्यताओ को विकसित करने हेतु वातावरण का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

सवेदी प्रतिबोध की अवस्थाओ मे चक्षुहीन की स्पर्शीय शक्ति से प्राप्त होने वाली जानकारी विकसित होती है जिसमे औष्मिक एव शीत प्रभावो का ज्ञान होता है। इसके

साथ ही नासिका (गन्ध क्षमता) द्वारा विभिन्न खनिजो, गन्धो एव उनके प्रभावो से ज्ञान का विकास तथा स्वादशक्ति का विकास आदि सहज सम्भव है। चक्षुहीन अपने सवेदी प्रतिबोध को जाग्रत करके शिक्षण मे अपनी तीव्र गति बना सकता है।

सवेदी प्रतिबोध का चक्षुहीन हेतु महत्त्व

चक्षुहीन की काल्पनिक शक्ति के विकास हेतु यह अत्यन्त आवश्यक है कि ऐसे बालकों का सवेदी प्रतिबोधात्मक विकास अन्य इन्द्रियो के माध्यम से हो। यह चक्षुहीन के वैयक्तिक विकास मे शिक्षण की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है।

वाचन क्षमता

चक्षुहीन मे वाचन क्षमता का विकास स्पर्शीय सवेदी प्रतिबोध द्वारा ही सहज रूप से सम्भव है। अत चक्षुहीनो हेतु सवेदी प्रतिबोध को चेतन करना शैक्षिक दृष्टि से अपेक्षित है। ब्रेल लिपि द्वारा वाचनाभ्यास स्पर्श-सवेदी प्रतिबोध के विकास पर ही अवलम्बित है। शोध निष्कर्षों के आधार पर यह तथ्य भी सामने आया है कि प्रारम्भ मे स्पर्श-माध्यम द्वारा अध्ययन करने मे वाचन-गति साधारण रहती है। अष्टम स्तर का ब्रेल लिपि से पढने वाला चक्षुहीन व्यक्ति षष्ठ स्तर के चक्षुयुक्त बालक के समान ही पढ सकता है।

सगीत चक्षुहीन की विशिष्ट रुचि

सामान्यत विश्व स्तर पर यह देखने मे आया है कि चक्षुहीन की प्रतिभा का विकास सगीत एव वाद्य-यन्त्रो मे उभरा है। ससार के सुविख्यात सगीतज्ञो मे चक्षुहीन सगीतज्ञो ने अनेक रागो की सरचना की है। सगीत मुख्यत श्रवण-शक्ति को परिमार्जित करके उसे इतना सवेदनशील बना देता है कि सगीत की सुकोमल धुन बालक मे आनन्दानुभूति को जाग्रत कर देती है। चक्षुहीन विकलागो के पाठ्यक्रम मे सगीत शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया गया है।

चक्षुहीन शिक्षा की विभिन्न पद्धतियो मे यान्त्रिक उपकरण, विशेष टकण यन्त्र (टाइपराइटर) एव ब्रेल लिपि का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। सगीत-ध्वनियों को स्मरण करने हेतु विशिष्ट उभरे हुये बिन्दुओ के माध्यम मे सफलता प्राप्त हुई है।

चक्षुहीन एव बुद्धि

चक्षुहीन का बौद्धिक स्तर प्राय सवेदी अवस्थाओ एव अनुभवो पर आधारित रहता है। प्राय वातावरण के सम्पर्क मे प्राप्त या सहयोग से अर्जित ज्ञान ही बुद्धि के स्तर को निर्धारित करता है। मापन एव मूल्याकन की दृष्टि से पूर्णत मानकीकृत बुद्धि-जाँच-परीक्षण चक्षुहीन बालको के क्षेत्र मे कठिन है। चक्षुहीन बालको हेतु विने का बुद्धि-परीक्षण आधुनिकतम एव विश्वसनीय माना जाता है। प्राय जांच के पश्चात् प्रकट हुआ है कि आयु एव चक्षुहीनता के आरम्भ की उम्र मे बुद्धि का कोई सह-सम्बन्ध नही है।

वर्तमान परिवर्तनकारी, प्रगतिशील एव विशेषकर वैज्ञानिक युग मे चक्षुहीन को भी वातावरणीय प्रभावो ने प्रभावित किया है। इसके साथ ही माता-पिता, अभिभावक एव समाज की अभिवृत्ति मे भी अन्तर आया है। इसके अतिरिक्त अन्य जाँचो के आधार पर भी ये तथ्य सामने आये हैं कि चक्षुहीन औसत दृष्टि से सामान्य मे नीचे का ही होता है, औसत स्तर अन्य विकलागो की तुलना मे अच्छा होता है। कतिपय तीव्र-बुद्धि या प्रतिभा-सम्पन्न भी कहे जा सकते है।

शिक्षा एव चक्षुहीन

चक्षुहीन-शिक्षा के क्षेत्र मे भारत मे दो तरह की सस्थाएँ कार्य कर रही हैं। (१) राज्य द्वारा सचालित, (२) निजी या समाज सेवी सस्थाओ द्वारा चलने वाले अन्ध-विद्यालय।

आज समाज यह अनुभव करने लग गया है कि प्रत्येक चक्षुहीन बालक को उसकी क्षमता एव आवश्यकता के अनुसार शिक्षा मिलनी ही चाहिये। विद्यालय इस बात का सहज परीक्षण कर सकते है कि किस प्रकार के बालक सामान्य विद्यालय मे अध्ययन हेतु प्रवेश पा सकते है एव अन्ध-विद्यालयो मे किस प्रकार के चक्षुहीन बालको को आवासीय सुविधा सहित प्रवेश देना उपयुक्त होगा। शिक्षा अनिवार्य दायित्व है जिसे समाज को अपने बालको को हर अवस्था मे, एव हर प्रकार के बालको को सुलभ करना चाहिये। उन्हे अति सरक्षण मे रखना उनके आगिक विकास मे बाधक हे। अभ्यास के द्वारा जूतो के फीते बाँधने से लेकर अतिथियो हेतु चाय तक लाने ले जाने मे दक्ष हो सकते हैं।

आवासीय विद्यालय

चक्षुहीनो हेतु आवासीय विद्यालय का अपना विशिष्ट स्थान है, यद्यपि आवासीय विद्यालय के अपने दोष भी है। वे सामुदायिक जीवन एव वातावरण के सम्पर्क से वचित रह जाते है। दूसरी ओर सामान्य परिवार से आने वाला चक्षुहीन बालक, जिसे घर पर साधारण-सी भी शैक्षिक सुविधा प्राप्त न हो, उसके लिये इन आवासीय विद्यालयो का अत्यधिक महत्त्व है। क्योकि अपनी नियमित एव प्राकृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु उन्हे नौकर नही मिलेगा। पर्यवेक्षक का निर्देश ही मुख्य होगा।

अभ्यास, नियमितता, शिक्षण एव नवीनतम शिक्षण सुविधाओ का काम आवासीय विद्यालय मे ही सम्भव है। विशेषज्ञ प्रशिक्षित अध्यापक की सुविधा का उपलब्ध होना एव विकटावस्था मे निदेशन या चिकित्सा की व्यवस्था, आवासीय विद्यालय मे विशेष रूप से भी सम्भव है।

चक्षुहीन-शिक्षा के क्षेत्र मे रत शिक्षाविदो की एतद् विषयक धारणा के तीन पक्ष हैं —

१ ऐसे चक्षुहीन जिन्हे औसत विद्यालयो मे शिक्षण दिया जा सकता है, उन्हे आवासीय विद्यालयो मे प्रवेश न दिया जाये।

२ यथाशीघ्र चक्षुहीन बालक को इतना सक्षम बना दिया जाये कि वह औसत विद्यालय मे शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो जाये।

३ प्रत्येक बालक अपनी सेवाओ का समुचित उपयोग कर सके।

निष्कर्षत जहाँ तक सम्भव हो सके चक्षुहीन बालको को चक्षु-सम्पन्न बालको के साथ ही शिक्षा प्रदान करनी चाहिये। सामान्य विद्यालय द्वारा प्रदत्त सभी शिक्षण-विषय भाषा, गणित, सगीत, सामाजिक ज्ञान एव विज्ञान आदि अध्ययन की व्यवस्था चक्षुहीन के लिए भी हो। अन्य बालको की ओर से प्राप्त सहानुभूति उनमे विश्वास एव लगन उत्पन्न करेगी जिससे ये अपने को विद्यालय की सयुक्त इकाई के रूप मे अनुभव करेगे।

प्रारम्भिक प्रयोग की दृष्टि से या समजन को ध्यान मे रखते हुए, आवासीय विद्यालय के लिए यह उचित होगा कि वह चक्षुहीन विद्यार्थियो को कुछ समय के लिए नियमित रूप

से सामान्य विद्यालय के छात्रो के साथ रखे। इससे अनुशासन के साथ सहयोग की भावना का भी विकास होगा।

चक्षुहीन हेतु सामान्य विद्यालय सगम

सामान्य विद्यालय सगम विद्यालय के रूप मे इस प्रकार की व्यवस्था प्रदान कर सकता है कि अपने कुछ विषयो के कालाश (पीरियड्स) मिश्रित (मिक्स्ड) लगाये जिनमे चक्षुहीन बालक भी उपस्थित रहे। इसे अल्पान्तर से भी व्यवस्थित किया जा सकता है एव नियमित रूप से भी। शिक्षण क्रम के अन्तर्गत दोनो ही प्रकार के छात्रो को सम्मिलित किया जा सकता है। चक्षुहीन विद्यालय सगम योजनान्तर्गत चक्षुहीन बालको को अशकालिक विशेषज्ञ अध्यापको की ही नही, अपितु पूर्णकालिक अन्ध शिक्षा विशेषज्ञ की सुविधा प्राप्त हो सकती है। कक्षा कार्य-निदेशन हेतु सामान्य अध्यापक भी विशेषज्ञ से सहयोग एव मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है।

विशेषज्ञ उपकरणो का उपयोग भी असामान्यावस्था मे निदेशन के अन्तर्गत किया जा सकता है, या आवश्यकतानुसार परिभ्रामी अध्यापक की सेवाये भी प्राप्त की जा सकती है। समय-समय पर परामर्शक भी शिक्षण समस्याओ को सुनियोजित करने हेतु आमन्त्रित किये जा सकते हैं।

सार संक्षेप

चक्षु विकलाग एवं शिक्षा

विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे चक्षुहीनो के लिए प्रारम्भ से ही प्रयास सक्रिय हैं। आशिक दृष्टि-हीनता, पूर्ण दृष्टि-हीनता, रग-हीनता, रग-अन्धता या पढने व पहचान मे बाधा, इसी श्रेणी मे आती है। औषधोपचार से शिक्षण सामान्य होना या चश्मे की सहायता से पढ लिख सकने वाले बालक सामान्य विद्यालयो मे शिक्षित किये जा सकते है।

वी. लॉवन फैल्ड का वर्गीकरण
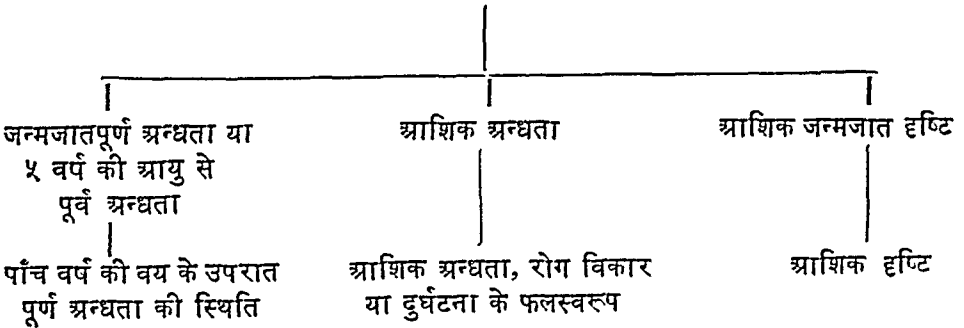
पाँच वर्ष से पूर्व की आयु मे अन्धा होने की स्थिति मे बालक स्मृतिपटल पर दृष्टि-चित्र अपना प्रभाव नही रखते।

चक्षुहीनता के कारण

सक्रामक रोग

रक्तालपता (अन्य रोग)

दुर्घटना
वशगत
विप

चक्षुहीनता के प्रभाव मे वालक सक्रिय नही रह पाता । सुरक्षा के नाम पर माता-पिता, अभिभावक एव अध्यापक तक प्रारम्भिक अवस्था मे इन्हे गतिहीन कर देते हैं । यही कारण है कि सामाजिक जीवन मे इनकी गति मन्द हो जाती है । वौद्धिक दृष्टि से चक्षु-सम्पन्न एव चक्षुहीन वालको मे विशेप अन्तर नही है ।

शारीरिक क्षमता, वाणी विकास, बुद्धि, एकाग्रता आदि मे यह सामान्य वालक के समान ही होते है । भापाई विकास एकाग्रता शक्ति के फलस्वरूप अधिक होता है । भापाई विकास अर्जित सम्पत्ति है ।

चक्षुहीन एव लेखन

लुई ब्रेल ने इस दिशा मे जिस पद्धति का विकास किया वह है ब्रेल लिपि । इस माध्यम को विश्व की सभी प्रमुख भापाये अपना चुकी हैं ।

जन्म—लुई ब्रेल का जन्म ४ जनवरी १८०९ को हुआ एव स्वर्गवास १८५२ ई० मे हो गया । १९५२ मे ब्रेल की जन्म शताब्दी का आयोजन विश्व स्तर पर हुआ । इसी अवसर पर कूप्रे के मरघट से इनके शव को ससम्मान पेथिग्रान (पेरिस) के राष्ट्रीय श्मशान घाट मे स्थान दिया गया । आज भी विश्व स्तर पर चक्षुहीनो की पत्र-पत्रिकाओ को (ब्रेल लिपि मे) एव स्वय चक्षुहीनो को यात्रा मे पूर्ण रियायतें प्राप्त हैं ।

ब्रेल लिपि—छ विन्दु सकेत, दो पक्तियो मे तीन-तीन की सख्या मे विभक्त हैं । स्पर्श के माध्यम मे रिक्त एव उभरे विन्दु-सकेत भापा का निर्माण करते है । मोटे कागज पर लेखन-पाटी एव सूचिका की सहायता से ब्रेल सकेत उत्कीर्ण किये जाते हैं । ब्रेल लेखन यन्त्र भी अव सहज प्राप्य हैं । ब्रेल लिपि मे 'रीडर्स डाईजेस्ट' 'नयन रश्मि' आदि पत्र-पत्रिकाये हैं । स्थान की दृष्टि से यह साधारण पुस्तको से पाँच गुणा स्थान घेरती हैं ।

टकण यन्त्र भी चक्षुहीनो के प्रयोग हेतु है ।

सवेदी प्रतिवोध—चक्षुहीन अपनी सवेदी प्रतिवोध शक्ति के कारण सीखने की प्रक्रिया मे गति से उन्नति करते है ।

विशिष्ट रुचि—वाचन-क्षमता, सगीत, कौशल कार्य, ध्वनि-सगीत एव गायन आदि मे यह वर्ग इतना सवेदनशील होता है कि चक्षु सम्पन्न वालको से प्रतिस्पर्धा करने लगता है ।

राजकीय तथा स्वय सेवी सस्थायें एव सेवाभावी व्यक्ति इस दिशा मे प्रयत्नशील है । आवासीय विद्यालयो की स्थापना, साधारण विद्यालयो मे विशिष्ट कक्षाओ, विशेषज्ञ सुविधा, चिकित्सा सेवा, एव निदेशन का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है । अन्ध विद्यालय सामान्यावस्था मे शिक्षण ग्रहण करने वाले वालको को सामान्य विद्यालय मे ही प्रविष्ट किया जाना हितकर है । विशेप शिक्षण एव विशेप अवस्था मे ही अन्ध विद्यालयो मे चक्षुहीन वालको को प्रवेश दिया जाये । विद्यालय सगम—चक्षुहीन विद्यालय सगम योजनान्तर्गत, जिला स्तर पर, विशिष्ट शिक्षण सुविधाओ से सम्पन्न विद्यालय होना चाहिये जिसमे परिभ्रामी अध्यापक, विशेपज्ञ, निदेशक एव विशिष्ट शिक्षण पद्धति के माध्यम से पढाने वाले शिक्षक हो ।

डा वी वी गिरि के शब्दो मे विकलाग व्यक्ति मुक्त एव समाजोपयोगी जीवन वितायें। आवश्यकता है समय-समय पर पाठ्यक्रम, पद्धति एव निर्देशन के साथ-साथ विज्ञान के माध्यम से जीवन को सरल व गतिशील वनाने की।

विश्व अन्ध-सघ के अध्यक्ष ने अपनी भारत यात्रा (सन् १९७५) के अवसर पर कहा था, "वनस्पतियो का साधारण-सा ज्ञान होने पर, कि अन्धता निरोधक शक्ति (विटामिन) किन पेड-पौधो मे पाई जाती है, उन वनस्पतियो का नियमित सेवन करके अन्धता को रोका जा सकता है। यह एक प्राकृतिक विधि है। जिन स्थानो पर पेड पौधे न हो या कम हो वहाँ उन्हे लगाया जा सकता है। धूल, धुँआ और धूप से आँखो की रक्षा अधिकाधिक हरियाली लगाकर की जा सकती है।" इस सामान्य ज्ञान प्रसारण मे विद्यालय अपनी सफल भूमिका निभा सकते है।

V वाक् विकलांगता एवं शिक्षा

वाणी का अस्पष्ट, रुक-रुक कर और शब्द के स्थान पर केवल ध्वनि ही रूप मे प्रकट होना शैक्षिक पक्ष मे वाक् विकलागता कहलाती है। वाक् सौष्ठव ही वह एक मात्र साधन है जो मौखिक अभिव्यक्ति की आधारशिला है, जिस पर भाषा का विकास पूर्णतः अवलम्बित है।

वाक् विकलागता का अर्थ

मनोभावो एव अनुभवो को वाणी द्वारा प्रकट करना, दृश्यो एव स्थलो का वर्णन, घटनाओ का उल्लेख, पूछे गये प्रश्नो के उत्तर आदि के लिए भाषा का प्रयोग स्वाभाविक है। इसी भाषा का स्पष्ट एव अर्थपूर्ण रूप वाक् शुद्धता पर निर्भर करता है। वाक् दोष, अस्पष्ट उच्चारण, असगत ध्वनि, हकलाना, तुतलना आदि विकार वाक् विकलागता की श्रेणी मे आयेंगे। सामान्य वाक् ध्वनि का न होना ही वाक् विकलागता का अर्थ है, जिससे कहने वाले व्यक्ति का मन्तव्य श्रोता न समझ सके या अस्पष्टता से या विलम्ब से समझे।

वाक् विकलांगता के कारण

वाक् विकलागता का प्रमुख कारण श्रवण शक्ति का ह्रास, उसका विकारयुक्त होना या सर्वथा न होना है। एक कारण यह भी होता है कि खट-खट ध्वनि जो कर्ण रोग के कारण वचपन मे वालक सुनता है वही एक प्रकार से स्थायी हो जाती है। वाक् विकलागता तो नही परन्तु वाक् दोष (उच्चारण दोष) मे जातीय दोष भी एक कारण है। कई जातियाँ 'स' के स्थान पर 'ह' का यथा सोहनसिह के स्थान पर 'होनहिग' या 'सीना सर्द' के लिए 'छीना छर्द' ऐसा उच्चारण करती है। कर्ण दोष प्रमुख रूप से वाक् विकलागता को उत्पन्न करता है। वाक् दोष तीव्र वुद्धि, औसत वुद्धि एव सामान्य वुद्धि सभी प्रकार के वालको को सम्भव है। प्रमस्तिष्कीय संस्तम्भ भी इसका कारण हो सकता है। मस्तिष्क पर चोट लगना, मुख का विकृत होना, तालु कण्ठ, जिह्वा, दात आदि मे विकार भी वाक् विकलागता के कारण कहे जा सकते हैं। वातावरणीय प्रभाव भी वाक् ध्वनि को प्रभावित

कर लेते है । देश, स्थान, वशगत एव विद्यालयीय प्रभाव भी भापा मे ध्वनि विकलता उत्पन्न कर देते हैं । जो वशगत या वातावरणीय प्रभावजन्य वाक् दोप है वे भी सुधार की दृष्टि से अध्ययन का विपय है ।

शिक्षण प्रक्रिया मे वाणी का क्षेत्र पढना, वोलना एव सुन कर लिखना है जिसे अध्यापक शुद्ध एव स्पष्ट करवाता रहता है । वाक् ध्वनि का अतिमन्द एव अति तीव्र होना भी वाक् दोप ही जाना जाता है, जिसका कारण सामान्य ध्वनि का न सुन सकना है । जन्म के समय, शिशु अवस्था मे या वालावस्था मे पूर्ण ध्यान न दिया जाना भी एक कारण हो सकता है ।

वाक् विकार का रूप

वाक् विकार का निर्णय करना भी अत्यन्त दुष्कर है क्योकि एक दोप दूसरे दोप के और दूसरा दोप तीसरे के साथ जुडा हुआ है । अत वाक् विकार का स्पष्ट पता लगाना अत्यन्त कठिन हे । अतिच्छादन या सीखने मे विचलन, वाक् विलम्ब का कारण वनता है । इसी प्रकार अनेको विकृत अवस्थायें जैसे तुतलाना या हकलाना जिह्वा पर निर्भर करती हैं । श्रवणेन्द्रियो का रोग युक्त होना वाक् ध्वनि पर प्रभाव डालता है । वाक् दोप के रूप एक-दूसरे के साथ सम्वन्धित है ।

वाक् विकार जाँच एव शोधन

वाक् विकार हेतु जाँच एव शोधन की गई विधियाँ हैं । इनका वर्गीकरण निम्न-लिखित प्रकार से किया जा सकता है —

प्रथम—पटेक्षण विधि
द्वितीय—वाक् शोधक विधियाँ
तृतीय—वाक् विकारग्रस्त वालको का वर्गीकरण ।

पटेक्षण विधि

इस विधि द्वारा जाँच विश्वस्त मानी जाती है । प्रति वर्प पटेक्षण विधि, विकारग्रस्त वालक की जॉच के पश्चात् आने वाले निर्णय द्वारा, शोधन हेतु प्रयासो का स्तर निर्धारित करती हे । पटेक्षण विधि द्वारा वालक मे वाक् सन्धि दोष, लयवद्धता का अभाव, मौखिक कथन विकृति और भापाई दोप को जाना जाता है । इसके लिये अनेको जॉच विधियाँ हैं जिनमे वलार्क चित्र जाँच विधि अच्छी मानी जाती है । इसके अतिरिक्त शव्द ज्ञान सूचक जाँच मान भी वने हुये है । स्तरीकरण एव उपचारात्मक दोनो ही दृष्टि से इस क्षेत्र मे प्रयास किये जा चुके है । शिक्षण निर्योग्यताओ का भली प्रकार पता लगा लेने के पश्चात् माता-पिता, अभिभावक या अध्यापक वाक् शोधन विशेषज्ञ की सेवाएँ प्राप्त कर सकते हैं ।

वाक् शोधन उपक्रम

वाक् शोधन उपक्रम प्रत्येक वालक की वैयक्तिक समस्या को लेकर होगा अर्थात् वाक् विकार से युक्त प्रत्येक वालक को अलग-अलग विधियो से प्रशिक्षित किया जायेगा । इस मम्पूर्ण उपक्रम मे उत्प्रेरण का अभाव नही होना चाहिये । वाक् शोधन विशेपज्ञ को

वाक् विकार के कारण, तत्त्व तथा स्थान एव वालक की उम्र और उसके वश एव वातावरण आदि के आधार पर उपचार का निर्णय लेना चाहिये। दूसरे, वाक् दोप का एक स्वरूप शारीरिक सरचना पर भी आश्रित है। मुख की वनावट दाँतो की विकृत अवस्था, जिह्वा, जिह्वा मूल, तालु आदि की वनावट से वाक् विकार जुडा हुआ है।

वालक के शब्द विकास मे औमत गति का न होना भी यही दोप दर्शाता है। मन्द वुद्धिता भी वाक् स्तर को समुन्नत नही होने देती। इसके लिये शीघ्रता से उत्तर लेना, आकृति (ध्वनि या शब्द) लयवद्धता आदि के सहारे वाक् विकार को पहचान कर उपचार उपक्रम का कार्य करना चाहिये।

वाणी विकास

वालक के जन्म के माथ ही उसके शरीर मे श्वसन प्रक्रिया के माध्यम से वाह्य वायु के प्रविष्ट होते ही वह रोने लगता है। द्वितीय अवस्था मे वालक वुदवुदाने लगता हे। यह क्रिया कई सप्ताहो के पश्चात् उसमे उत्पन्न होती है। वह तृतीय अवस्था जो तीन माह के पश्चात् उत्पन्न होती है के साथ 'चा', 'मा', 'दा' आदि ध्वनि कई वार मुनने के पश्चात् वोलने का उपक्रम करता है। चतुर्थ अवस्था मे भापाई विकास की ओर वालक अग्रसर होता है। 'ना', 'ता', 'पा', 'दा' आदि सार्थक ध्वनि के निकट पहुँचते-पहुँचते वह नौ या दस मास की आयु तक पहुँच जाता है। पचम अवस्था मे एक वर्प या उसके वाद सार्थक शब्द ध्वनि, युग्म शब्द वोल लेता है एव डेढ वर्प का होते–होते 'मेरा है', 'आप खा लो', 'पानी दे दे', 'ममी ने मारी' आदि–आदि। इसके साथ ही आपत्ति के समय, आक्रोश प्रकट करते समय, हँसते समय वालक हावभाव प्रकट करने लगता है। वाणी विकास के साथ मुख मुद्रा एव आगिक गतियो मे भी सवेदीय अवस्थाओ के अनुसार प्रभाव दृष्टव्य है।

दो वर्प का वालक अपनी इच्छा तक प्रकट करने लग जाता है। इस वय तक आते-आते उसके पाम ३०० तक शब्द सख्या हो जाती हे। "मै" और "तू" मे स्पष्ट अन्तर करने लगना है। तीन-चार वर्प का वालक शिशु वर्ग एव विद्यालय के सम्पर्क मे आने लगता है। भापाई विकाम मे वृद्धि होने लगती है। वाक् ध्वनि पर वालक के घर एव वातावरण का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कतिपय अवस्थाओ मे सवेदीय स्थिति वाक् विकार का कारण वन जाती है। विभिन्न विकलागावस्थाएँ भी वाक् दोप जैमे हकलाना, तुतलाना उत्पन्न कर देती हैं। अभिभावक या माता–पिताओ द्वारा वालक को अतिरक्षण मे रखना भी वाक् विकार का कारण वन जाता है। पाँच वर्प का वालक भापा की दृष्टि से सम्पन्न होने लगता है। वह व्याकरण और क्रमवद्धता का प्रयोग करने लगता है। सयुक्त वाक्यो का प्रयोग, छोटी कहानियो के अतिरिक्त किसी भी दृश्य घटना का वर्णन करने मे सक्षम हो जाता है।

वाक् दोप

अभिव्यक्ति सम्प्रेपण के मौखिक पक्ष मे वाक् दोप समस्याओ के वृत्त को कितना विकसित कर देगा, यह कथन से परे की स्थिति है। विशेप ध्यातव्य इम पक्ष मे यही है कि यदि अन्य अवस्थाएँ सामान्य हो या औसत हो तो वालक जितना अशुद्ध उच्चारण सुनेगा वैसा ही वह वोलेगा, अर्थात् परिवेश मे जितना त्रुटिपूर्ण उच्चारण होगा वाक्–दोप

उतना ही भयकर होगा ।

यहाँ प्रमुख वाक्–दोषो के लक्षण एव उनके निवारण हेतु प्रथम उच्चारण वाधा के प्रसंग पर विचार करना ठीक होगा ।
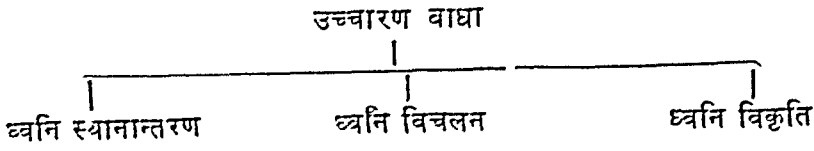
१ ध्वनि स्थानान्तरण—प्राय यह वाक् दोप वातावरणीय प्रभाव मे उत्पन्न होता है । यथा पजाव मे 'ण' की उच्चारण ध्वनि 'न' रहती है, यथा–'हरियाणा' मे 'हरयाना' 'परिणाम' 'परनाम' । 'कोण' 'कोन' इमी प्रकार 'स' 'ह' जैसे 'सिन्धु' 'हिन्धु' । 'मच' 'हच' आदि । इसके अतिरिक्त पजावी ह्रस्व, 'इ' व ह्रस्व 'उ' का प्रयोग नही करते, जैसे 'किताव' 'कताव', 'हिसाव' 'हसाव', 'दुकान' 'दकान', 'उस्ताद' 'अस्ताद' आदि ।

२. ध्वनि विचलन—वाक्–दोप के कारण ध्वनि विचलन हो जाता है यथा–'उर्वशी' 'उवसी' । 'लडाई' 'लाई' आदि । प्राय मुख मुख भी इमका एक कारण है ।

३. ध्वनि विकृति—ह्रस्वोच्चारण, अल्पोच्चारण एव अत्युच्चारण आदि वाक्–दोप मे आता है । यथा–'रमेश' 'रमेशे' । 'मिल' 'मील' । 'झील' 'झिल' । 'चाकू' 'काचू' । 'फूल' 'फुल' । 'दूध' 'दुध' आदि ।

उच्चारण वाधा

उच्चारण प्रभाव उत्पन्न करने वाले प्रमुख तत्त्वो मे कण्ठ, तालु, मूर्धा, दात, ओष्ठ एव श्रवणेन्द्रियो का विकृत होना है, जिसके फलस्वरूप उच्चारण मे वाधा उत्पन्न हो जाती है । जिह्वा का मोटा होना या सूज जाना या इन अगो का सन्तुलित कार्य न करना वाक् समस्या को उत्पन्न कर देता है । अति कटुत्व के कई अन्य कारण भी हो सकते हैं । स्वराघात, वलाघात या अघोपत्व का होना वाक् विकार के लक्षण है ।

उच्चारण–वाधा मे सरचनात्मक दोप भी अपना स्थान रखते है ।

उच्चारण शोधन

अधिकाशत उच्चारण दोप वाक् विचलन से होता है । वाक् विकार शोधक वालको द्वारा उच्चारण किये गये शव्दो का सग्रह करके, उनको वर्गीकृत करके, निष्कर्ष पर वाक् विकार शोधक निर्णय ले सकता है । इसी वर्गीकरण के आधार पर वैयक्तिक या समूहगत निदेशन–कार्य सम्भव हो सकता है । वाक् विकार शोधन के लिये सर्वोत्तम स्थिति यह है कि वह स्वाभाविक रूप से वालक के वाक् दोप को अभ्यास एव प्रकृति के परिवर्तन स्वरूप ही हो । वालक पर वल प्रयोग या दवाव द्वारा यह कार्य सम्भव नही होगा । वाक् दोप शोधक वालक को दुष्कर स्थितियो मे ही सहायता दे ।

वाक्–दोप शोधन हेतु वैयक्तिक एव वर्ग के आधार पर, कुछ पाठ वना लेने उत्तम रहते है । साथ ही अभिभावक एव माता–पिता का सहयोग भी सहज प्राप्त किया जा सकता है । वाक् शुद्धता का अकन भी करते रहने से सुधार एव स्थिति का सामान्य ज्ञान होता रहता है ।

वालक को अपने साथी वालको मे भी समजन की समस्या का सामना करना

पडता है । सम्भाषण, वार्तालाप, चर्चा, दल चर्चा, परिचर्चा, गोष्ठी आदि कई उपक्रम इस निमित्त आरम्भ किये जा सकते है । प्रारम्भिक अवस्था मे अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता होती है । ज्यो-ज्यो बालक अपने आप पर आश्रित होने लगता हे, उसे निदेशन एव मुक्त दोनो ही रूपो मे कार्य सुविधा देनी चाहिये ।

वर्ग-कार्य, वाक्-खेल, बाल-मेले आदि लाभदायक सिद्ध होते है । द्विभाषी बालको को इससे अधिक लाभ होता है । बालक अधिकाधिक एक-दूसरे को सुने । टेप रेकार्डर या वाक् ग्रामोफोन रिकार्ड की बार-बार आवृत्ति और रेडियो को सुनना बहुत लाभदायक है ।

घोष-दोष

घोष-दोष उच्चारण-दोष की भाँति व्यापक नही है । अत्युत्तम उच्चारण वह होता है जिसमे घोषतन्त्री से झकृत ध्वनि की लहर स्पष्ट हो, जिसके सुनने मे श्रोता के श्रवण-तन्त्र पर अधिक बल न पडे या उसे कर्ण कटुता को सहन न करना पडे ।

इन दोषो मे प्राय ध्वनि विकृति और घोष प्रतिस्वनन है । ध्वनियो का गुम्फित रूप भाषा है । उच्चारण काल मे फेफडे, स्वर यन्त्र विवर और मुख के अवयव भाषा की ध्वनियाँ उत्पन्न करते है । सृष्टि की समस्त भाषाओ के उच्चारण की प्रमुख प्रक्रिया यही है कि मुँह के विभिन्न अवयव हवा पर प्रभाव डालकर ध्वनि उच्चारण को उत्पन्न करते हैं । नई भाषा मे कुछ ध्वनियो की विभिन्नता होती हे, जबकि उच्चारण स्थिति यथावत् ही है । वस्तुत ध्वनि व्यवहार की वस्तु है । व्यवहार से हट जाने पर भाषा स्वय समाप्त हो जाती है । ध्वनि-नियन्त्रण ही भाषा की आधारशिला है ।

ध्वनि का सोद्देश्य होना नितात आवश्यक है । शब्दो के पार्श्वक्रम को ध्वनिग्राम कहा जाता है ।

ध्वनि गठन

ध्वनि, अनुतान और बलाघात आदि ध्वनियो का क्रमिक गठन ध्वनि गठन है । यह सध्वनि कहलाती हे । प्रत्येक भाषा का अपना ध्वनि गठन होता है । प्रत्येक बालक का अपना घोष-तन्त्र है । स्वस्थ घोष-तन्त्र ध्वनि गठन को सशक्त बनाता है ।

मातृभाषा का प्रक्षेप (व्यवहार)

शिशु अवस्था मे मातृभाषा का प्रक्षेप व्यवहार के हर मूल मे इतना प्रबल होता है कि अन्य भाषाओ की ध्वनियाँ मन्द पड जाती हैं । अन्य भाषा का बोल पाना दुष्कर रहता है, यदि व्यवहार मे उसका मुक्त प्रयोग न रहे । इसी प्रकार 'स्टेशन' 'इस्टेशन', 'कौन' 'कोण' उच्चारण मातृभाषा के प्रक्षेप स्वरूप ही है ।

निदान और उपचार का क्रम साथ-साथ चलता रहना चाहिये । शिक्षण की दृष्टि से भाषा विज्ञान का भी सहारा लिया जा सकता हे । अध्यापक को शिक्षण की विधि और सिद्धान्तो से पूर्णत परिचित होना चाहिये । अतिरिक्त अभ्यास भी आवश्यकतानुसार दिया जा सकता है ।

सवेदीय अवस्थाओ मे भी ध्वनि मे कम्पन, भारीपन, अक्षरो का मध्य से लुप्त हो जाना, एव तेजी से शेष आवाज का निकलना आदि है । इस प्रकार खेल के मैदान मे

खिलाडियो का दम–फूली अवस्थाओ मे ज़ोर मे चिल्लाना या वोलना घोप-तन्त्री को कभी-कभी स्थायी रूप मे प्रभावित कर विकृत कर देता है, जिसे या तो शब्द क्रिया द्वारा या फिर अत्यन्त सावधानीपूर्वक प्रयत्न द्वारा, दूर किया जा सकता है। भय, प्रसन्नता, क्रोध, आदि की अवस्था मे भी मातृभाषा का स्वरूप जुड जाता है जो ध्वनि स्वाभाविकता को विकृत कर देता है।

वाणी स्खलन समस्या

वाणी स्खलन की समस्या जितनी अवयवात्मक है उससे भी कही अधिक मनोवैज्ञानिक है। विभिन्न तनावपूर्ण मानसिक स्थितियो मे वालक का उच्चारण सीधे प्रभावित होता है। अपमानित होने या प्रतिशोध की तीव्रता मे यह स्थिति अपना उग्र रूप धारण कर लेती है यदि यह क्रम निरन्तरता ग्रहण करले तो समस्या स्थायी वन जाती है।

वाणी स्खलन के कारण

वाणी स्खलन शोधन के क्षेत्र मे कार्य करने वाले, मनोविश्लेपक, उन्माद रोगो पर कार्य करने वाले, या शरीर विशेषज्ञ, अभी तक कोई ऐसा लक्षण दोष प्राप्त नही कर पाये जो सामान्य रूप से सभी को मान्य हो। वस्तुत यह विकार विभिन्न विकारो के साथ सम्वन्ध रखता है। कतिपय कारण इस प्रकार है :—

१ शारीरिक दृष्टि से घोप तन्त्री मे विकार
२ वश परम्परागत वाणी स्खलन
३ वामहस्तता
४ विलम्ब से भाषा विकास
५ सवेदीय अवस्थाये
६ अनेक विकारो के परिणामस्वरूप

सामाजिक तनाव, चिन्ता, आक्रोश आदि की प्रतिक्रिया स्वरूप भी वाणी स्खलन उत्पन्न हो जाता है। इसे मनोसामाजिक विकार की सज्ञा दी जा सकती है। शीघ्रता, गति, अचानक अवरोध, या अतिशीघ्र आवृत्ति के कारण उच्चारण एव पैशिक सस्थानो मे तनाव उत्पन्न होने से यह वाधा होती है। वालक के जन्म के समय हुई असाववानी भी उपर्युक्त कारणो मे गिनी जा सकती है।

अभिभावक एव माता-पिता वाल विकास के साथ भाषा विकास की ओर सामान्यत कोई ध्यान नही देते। अविकाश माता-पिता इसके प्रति उदासीन वने रहते है। अपने आक्रोश मे ताडना देते मा-वाप वच्चे पर इस तरह छा जाते है कि वह अतिभय के कारण कापते हुए वोलता है। शनै शनै यही विकार वाणी स्खलन हो जाता है।

भारत मे वाणी स्खलन का सीधा कारण माता-पिता एव अभिभावको का अज्ञान, जन्म के समय अप्रशिक्षित दाइयो की सेवाये और सामाजिक दवाव है। वालक मे वढता हुआ असतोप, सवेदीय सघर्प, असहिष्णुता इस विकार के कारण है। भारत मे कुपोषण का प्रभाव सीधा शारीरिक विकास पर पडता है, अत वाणी स्खलन का यह भी मुख्य कारण है।

निदान एव उपचार

प्रथम प्रयत्न यही हो कि वालक स्वय अभ्यास द्वारा वाणी (उच्चारण) का नियन्त्रण

करे । द्वितीय अवस्था मे बालक का यह प्रयत्न रहे कि इस प्रकार अपने को ध्वनि दे कि दूसरो को इसका आभास भी न हो ।

१ नियन्त्रित वाणी

२ अभ्यास द्वारा उच्चारण

१. नियन्त्रित वाणी मे वैयक्तिक रूप से बालक को प्रशिक्षित किया जाये एव वह क्रम के अन्तर से अभ्यास करता हुआ वाणी स्खलन को रोके ।

२ अभ्यास द्वारा उच्चारण हेतु यदि वाणी स्खलन की अवस्था उत्पन्न होती हो तो शब्द को रोक लिया जाये । स्खलन आवृत्ति को कम किया जाये, एकान्त मे भी यह अभ्यास सम्भव है ।

मनोचिकित्सक मनोचिकित्सा पर भी बल देते है परन्तु उसका स्वरूप अत्यन्त सुकोमल सुलभ एव सुविधाजनक होना चाहिये । भारत जैसे देश मे इसका आधार इस प्रकार सम्भव है ।

"बालक को अच्छी सामाजिक अवस्था मे रखा जाय एव पोषणीय पदार्थ उसे प्रदान किये जाए । व्यावहारिक दृष्टि से उसे प्रसन्न एव स्वस्थ रखना अत्यन्त लाभकर है ।" (चन्द्रपति)

अध्यापक या वाणी शोधक की सेवाएँ लेकर बालक को आदर्श अवस्था मे रखना हितकर होगा । वातावरणीय स्वाभाविकता बालक को शीघ्र लाभप्रद होगी ।

विलवित वाणी विकार

साधारणत बालक ध्वनि-उच्चारण ६ माह से १५ माह के मध्य करना आरम्भ कर देते है । बालक का लालन-पालन जिस परिवेश मे होता है, प्राय वह सभी कारण विलम्बित वाणी विकार के कारण कहे जा सकते है ।

विलवित वाणी विकार के कारण

वाणी स्खलन समस्या के कारणो की जाँच की जाये तो ज्ञात होगा कि प्राय अधिकाश कारण वही है जिनका उल्लेख "वाणी स्खलन के कारण" शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है । फिर भी प्रत्येक विकार का सम्बन्ध किसी न किसी विशिष्टावस्था के साथ जुडा रहता है । वाणी विलम्ब के प्रमुख दो कारण है —
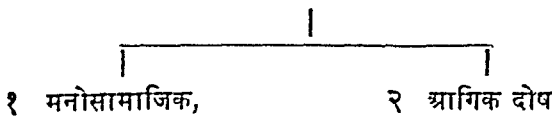
मनोसामाजिक

(I) प्रारम्भ मे ही वाणी ध्वनियो का शोधन न होना

(II) मानसिक विकृतियाँ या सवेदीय अवस्थाएँ

(III) शब्द भण्डार जिसके सम्पर्क मे बालक आता है (घर एव समाज का परिवेश)

(IV) खण्डित या तनावपूर्ण परिवार जिसमे व्यावहारिक अस्थिरता हो

(V) वाल विकास की ग्रारम्भिक ध्वनियाँ
(VI) वच्चे को वोलना सीखते समय निदेशन न होना।

२ ग्रागिक दोष

(I) श्रवणेन्द्रियो की विकृत ग्रवस्था
(II) ग्रन्य शारीरिक विकार
(III) वीमारी या कुपोषण से ग्रागिक विकार

श्रवण सहायक

प्राय विलम्बित वाणी विकास हेतु श्रवण सहायक यत्र का उचित प्रयोग ग्रावश्यक है। परन्तु इनका चयँन एव उपयोग विशेषज्ञ के परामर्श पर ही किया जाना चाहिये। वालक श्रवण-सहायक के सही उपयोग के पश्चात् ग्रत्यधिक तीव्र गति से एव स्थायित्व रखकर, सीख सकते है। इससे ग्रत्यधिक सावधानीपूर्वक विशद् ग्रभ्यास भी प्रदान किया जा सकता है

वाक्-दोष एव तालु विकृति

जन्म के साथ ही प्राय तालु विकृति की समस्या उत्पन्न हो जाती है। यह विकृति गर्भाधान के दो तीन माह पश्चात् ही ग्रपना प्रभाव डालने लगती है। इसमे कई वार ग्रोष्ठ भी विकृत हो जाते हैं।

तालु एव ओष्ठ विकृति के रूप

तालु एव ग्रोष्ठ विकृति के प्रमुख कारणो मे माता का गर्भावस्था मे कुपोषण या उसके भोजन मे पोषणीय तत्त्वो का ग्रभाव या प्राण वायु की कमी है। तालु विकृतियो मे (१) कोमल तालु ग्रभाव, (२) कोमल तालु लघुत्व, (३) कोमल तालु विभाजित, (४) कठोर तालु विभाजित, (५) काकल्य ग्रभाव, (६) काकल्य लघुत्व है। इसके साथ ही ग्रोष्ठ विकृति एव दाँत क्षय भी वाक्-दोष उत्पन्न कर देते है। तालु विकृति एव ग्रोष्ठ विकार वशगत प्रभाव के कारण भी दोष को ग्रहण कर लेते है।

तालु एव ग्रोष्ठ विकृति के साथ वाक्-दोष मे दो ग्रन्य ग्रवयव ग्रत्यधिक प्रभाव डालते—है, दाँत ग्रौर जिह्वा। दाँतो का ऊबड-खावड, टेढा-मेढा या ग्रधिक वडा होना एव जिह्वा का मोटा, पतला, लम्वा या भारी होना भी वाक्-दोष उत्पन्न करते है। कई जातियो मे ग्रोष्ठ भारी व मोटे मिलेंगे। जातीय दृष्टि से ग्रागिक सरचना एक दूसरी वाणी क्षेत्र मे प्रमुख प्रभाव डालती हे। यथा—ग्रागल जातीय हिन्दी के 'त' वर्ग का उच्चारण करने मे ग्रसमर्थ है, जैसे–त्वमेव माता च पिता त्वमेव "टमेव माटा च पिटा टमेव"। इसी प्रकार रूसी 'ट' वर्ग का उच्चारण 'त' करेंगे। यथा—"टैलेन्ट" को "तेलेन्त" कहेगे क्योकि यह दोनो ही ध्वनियाँ इनकी जाति मे नही है।

ग्रोष्ठ एव तालु के विकृत रूप वाक् समस्या को उत्पन्न कर देते है। इनके निवारणार्थ शब्द-क्रिया सर्वोत्तम मानी जाती है, यद्यपि भारत जैसे देश मे ये प्रक्रियाएँ नाम-मात्र ही है।

वाक् विकार एवं प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के परिणामस्वरूप भी वाक्-दोप उत्पन्न होना स्वाभाविक है। उग्रपेशीय आकुञ्चनयुक्तता के कारण वालक की वाणी मे एकस्वरता या वाणी-अन्तर स्पष्ट प्रतीत नही होगा। प्राय कथन प्रयासपूर्ण, कृत्रिम होगे एव इनमे अनियन्त्रण रहेगा।

तालु एव ओष्ठ की विकृति के साथ वाक्-दोप से प्रभावित वालक द्वारा किये गये प्रयासो का प्रभाव भी विचारणीय है। समुचित श्रवण-शक्ति को विकसित करने के लिये यह आवश्यक है कि वालक को स्वय प्रयत्नशील वनाया जाये। प्रमस्तिष्कीय सम्तम्भ से उत्पन्न वाणी विकार को एक क्षेत्र मे गुम्फित नही किया जा सकता। अत इस विकार से उत्पन्न वालको को वैयक्तिक रूप से निदेशन एव परामर्श देना होगा।

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ जनित वाक् विकार का शोधन

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ से ग्रसित वालक के वाक् विकार का शोधन करने मे, एव अन्य साधारण वालक के वाक् विकार शोधन मे कोई विशेप अन्तर नही है। फिर भी विचारणीय पक्ष निम्नलिखित है —

१ पैशिक तनाव या पैशिक शैथिल्य को दूर करने के लिये नियन्त्रित वाक् विकास उचित होगा।

२ अभ्यास एव अनुभव के आधार पर माता-पिता अभिभावक एव अध्यापक वाक् विकार का शोधन करे।

३ उच्चारण काल मे नियन्त्रण माता-पिता द्वारा सहज सम्भव है। वालक को ज्योही वोलने मे वाधा होती है उसे रोक दिया जाये एव मुख जिह्वा आदि की स्थितियो मे परिवर्तन करते हुए वालक को पुन उच्चारण के लिये कहा जाये। यह क्रिया विना किसी दवाव के होनी चाहिये जिससे मनोविकार पैदा न हो।

४. मौखिक अभिव्यक्ति को यथासम्भव वढावा देना चाहिये जिससे वालक मे वाक् शक्ति, शब्द भण्डार एव उच्चारण मे प्रवाह का विकास हो।

५ वाक् उत्प्रेरण एव प्रोत्साहन वालक को प्राप्त होता रहना चाहिये। जवडे एव जिह्वा की अनुपयुक्त गतियो को भी नियन्त्रित करना चाहिये जिससे ध्वनि काल मे वाक् दोप उत्पन्न न हो।

६ ध्यान, सावधानी, निदेशन के साथ वालक को इस वात के लिये जागरूक करना, कि कहाँ वह अशुद्धि करता है, एव इसके लिए प्रयासो की क्या प्रक्रिया उपयोग मे लाई जा रही है।

७ समय-समय पर शरीर विशेपज्ञ, वाक् दोप शोधक एव मनोसामाजिक विश्लेपण कर्त्ता की सेवाये भी ग्रहण की जा सकती है।

उन सभी अवस्थाओ का समुचित अध्ययन श्रेयस्कर होगा जिनके प्रभाव स्वरूप ध्वनि-विकृति एव क्षीण-शब्द विकार होता हैं। वाक् विकार निवारण शारीरिक एव मनोसामाजिक अवस्थाओ की विकृति के कारणो को नष्ट करके या परिवर्तन करके ही किया जा सकता है।

श्रवण विकृति

श्रवण विकृति वालक को उच्चारण या ध्वनि के अश या पूर्ण शब्द को सुनने मे

बाधा उत्पन्न करती है। बालक जैसा सुनता है वैसा ही बोलता है। परन्तु यहाँ एक और दुष्कर स्थिति भी है, जब बालक अपने ही उच्चारण मे प्रयुक्त ध्वनि को स्वय सुन नही पाता, जिसके फलस्वरूप उसे स्वय अपनी ध्वनि मे शुद्धाशुद्धि का ज्ञान नही रहता।

अध्ययन के आधार पर यह सिद्ध है कि उच्चारण दोष का सम्बन्ध श्रवण विकृति से निश्चिततः है। श्रवण विकृति जितनी गम्भीर होगी वाक् विकार उतना ही अधिक होगा। जो बालक अपनी ध्वनि को साधारण रूप से भी सुन पाते है उन्हे सुधारने मे अधिक श्रम नही करना होगा। ऐसे बालक शीघ्रता से, एव स्थायी प्रभाव के साथ, वाक् शुद्धता को ग्रहण कर लेते है।

श्रवण विकृति शोधन

श्रवण विकृति का कारण आगिक भी है। प्रथम प्रभावित अग का समुचित उपचार होना चाहिये। तत्पश्चात् बालक को अभ्यास पाठ दिये जा सकते हैं। इनमे सम-ध्वनि, सम उच्चरित, एव इस प्रकार के शब्दो की आवृत्ति टेप रिकार्डर के साथ होनी चाहिये। श्यामपट्ट पर सकेत के माध्यम से, या एकोच्चार विधि द्वारा भी, वाक् शुद्धता सम्भव है। समबल, अतिबल एव निबल ध्वनि उच्चारण हेतु सकेतो का उपयोग किया जाना चाहिये, एव यह प्रयत्न हो कि बालक स्वय अपनी ध्वनि को सुन कर, शुद्ध-अशुद्ध ध्वनि का निर्णय करे।

वाक् विकार शोधन

वाक् विकार शोधन का कार्य इतना कठिन है कि जिसे कोई भी एक व्यक्ति नही कर सकता। यदि यह कार्य केवल शरीर विज्ञान विशेषज्ञ को दिया जाये तो वह नही कर सकता। प्रभावित बालक मे मौखिक अभिव्यति का स्पष्ट विकारी मनोसामाजिक विश्लेषक, माता-पिता, अभिभावक, वाक् दोष शोधक एव शरीर विशेषज्ञ सभी का सामूहिक प्रयास ही इसमे सफल हो सकता है। यह एक सामूहिक वाक् सुधार का प्रयास है जिसमे बालक जो कुछ वाक् शोध विद्यालय से प्राप्त करता है उसका अभ्यास घर पर करता है।

वाक्-दोष निवारक विद्यालय

साधारणत वाक्-दोष निवारक विद्यालय की स्थापना उत्तम रहती है, परन्तु भारत मे विकलाग शिक्षा विद्यालयो मे ही यह व्यवस्था की जा सकती है। साधारण विद्यालय एक वाक् विकार शोधन अध्यापक की नियुक्ति अपने विद्यालयो मे कर सकते है। जहाँ एक विशेष कक्ष का अलग से निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार से विकारयुक्त छात्रो को अलग से वाक्-शुद्धि हेतु कालाश एव उन्हे पुन शोधन हेतु अभ्यास कार्य दिये जा सकते हैं जिससे विशेषज्ञ अध्यापक विद्यालय को अपनी नियमित सेवाएँ प्रदान करते रहे। सामूहिक रूप मे अध्यापक छात्रो को वाक्-विकार के साधारण दोषो के निवारण के उपाय भी बतलाते रहे।

वाक्-दोष शोधक अध्यापक

वाक्-दोष शोधक अध्यापक को विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करके इस क्षेत्र मे अपनी सेवाएँ प्रदान करनी चाहिये। वाक्-दोष शोधक अध्यापक वाक्-दोष के प्रारम्भिक

कारणो को ज्ञात करके विभिन्न वाक्–विकारो का निदान उसी वृत्त मे करे। प्रमुख वाक्–विकार, जिनका उल्लेख इसी प्रसगान्तर्गत किया जा चुका है, इस प्रकार हैं —

१ उच्चारण के वाक्–दोष
२ ध्वनि विकृति
३ वाणी स्खलन
४ निलवित वाक्-विकार
५. वाक्-दोष एव तालु विकृति
६. ओष्ठ विकृति
७ प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ के परिणामस्वरूप वाक्-विकार
८ श्रवण-दोष विकृति

उपर्युक्त सभी सन्दर्भो मे वाक्-दोष शोधक अध्यापक का यह दायित्व है कि वह वाक्-दोष प्रभावित छात्रो का वर्गीकरण करे। यह वर्गीकरण वाक्-शोधन कार्य को सुगम एव परिणामदायक बनायेगा।

वाक्-दोष छात्रो को वर्गीकरण की दृष्टि से निम्नलिखित चार भागो मे वर्गीकृत किया जा सकता है —

वाक्-दोष छात्रो का वर्गीकरण

आगिक विकृति | *सामान्य वाक् विकृति* | *मानसिक वाक् विकृति* | *विशेष वाक् विकार*
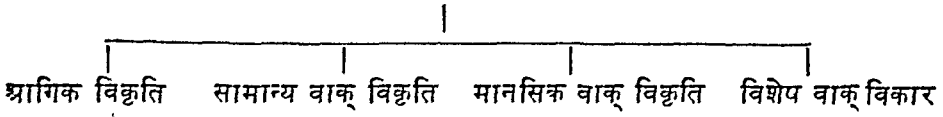
१. आगिक विकृति—अध्यापक, माता-पिता या अभिभावक आगिक विकृति के परिणामस्वरूप वाक्-दोष ग्रसित बालको को विधिवत् चिकित्सा का परामर्श प्रदान करके विशेषज्ञो के निदेशानुसार वाक् विकार दूर करे।

२. सामान्य वाक् विकृति—अध्यापक वाक् विकृति ध्वनि क्रम से ऐसे छात्रो का समुचित वर्गीकरण करके वर्ग मे ही उन्हे प्रशिक्षण प्रदान करे एव समूहगत निदान मे स्वाभाविकता को महत्त्व दिया जाये।

३. मानसिक वाक् विकृति—वाक् विकृति का मानसिक कारण जो मनोरोग से सम्बन्धित हो, प्राय: असाध्य होता है। ऐसे बालको की चिकित्सा व अभ्यास निर्देशन मे ही चलना श्रेयस्कर होंगे।

४. विशेष वाक् विकार—विशेष वाक् विकार से ग्रसित बालक का उत्तरदायित्व, एव उसके लिये वाक् शोधन कार्य, अध्यापक की सीमा से आगे बढ जाता है। चिकित्सक की सेवाएँ, विशेषज्ञ का परामर्श, माता-पिता या अभिभावक का योगदान, सभी इस प्रक्रिया मे सम्मिलित हो जाते है। विशेष वाक् विकार शोधन कार्य, विशेष रूप से निर्दिष्ट किये जाने पर सम्भव होता है। अध्यापक द्वारा वैयक्तिक ध्यान एव निदेशन इस निमित्त आवश्यक है।

सामान्य निर्देश

साधारण रूप मे कतिपय ध्यातव्य बिन्दु वाक् विकार शोधन निर्देशान्तर्गत निम्न लिखित है —

१. वाक् ध्वनि के शुद्ध टेप रिकार्डर
२ वालक को स्वस्थ वातावरण मे रखना
३ विद्यालय मे वालक को मुक्त एव स्वाभाविक वातावरण प्रदान करना
४ वालक की अभिव्यक्ति को प्रमुखता प्रदान करना
५ वाक्-दोष को मग्रह करना एव वाल-भावना को ठेस न लगने देना
६ मनोमामाजिक अवस्थाओ को स्वस्थ वनाना
७ खेल के मैदान पर तथा वाद-विवाद, सभा, गोष्ठी, सगीत, कवि सम्मेलन द्वारा उत्प्रेरणा देना
८ सवेदीय अवस्थाओ को सन्तुलित करना
९ वालक मे अभ्यास, स्वय-प्रयास तथा पूर्ण दायित्व वहन करने की क्षमता का विकास प्रदान करना
१०. सहानुभूति, सहयोग एव निदेशन के माध्यम द्वारा वालक मे आत्मविश्वास उत्पन्न करना
११ वालक जिस भाषा मे सहज रूप से वाक्-दोष का निवारण कर सके, उसी ओर प्रयत्नशील वनाना ।

वाक् विकास हेतु सुझाव

विभिन्न वाक्-दोष से प्रभावित छात्रो का वर्गीकरण करने के उपरान्त वाक्-शोधक कुछ ऐसे सुझाव भी दें जिन्हे वालक स्वतन्त्र रूप से या माता-पिता के निर्देशन मे ग्रहण कर सकें । आवश्यकतानुसार अध्यापक और चिकित्सक एक निश्चित् अन्तराल के पश्चात् प्रगति को देख लें व आगामी व्यवस्था हेतु अभिभावको से विचार-विमर्श करलें । इस दृष्टि से कतिपय सुझाव विन्दु द्रष्टव्य है —

१ अक्षर ज्ञान

सार संक्षेप

वाक् विकलागता

वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्त्तते । —(काव्यादर्श)

(वाणी की कृपा से ही इस ससार मे जीवन सम्भव है ।)

मनोभावो का सम्प्रेषण एव विचाराभिव्यक्ति का मौखिक स्वरूप स्वच्छ एव स्पष्ट वाक् शक्ति पर निर्भर करता है ।

"शुद्ध वाक् शक्ति ही श्रेष्ठ विचारो को सास्कृतिक प्रदाय के रूप मे भावी पीढियो को सौंपती है ।" (ओम प्रकाश गौड)

"शब्द दीपक है और उच्चारण लौ, तो वाणी को ज्योति ही कहना होगा ।" व्याकरण एव दर्शनाचार्य प० कन्हैयालाल शर्मा का यह कथन मौखिक अभिव्यक्ति मे वाक् सौष्ठव की महत्ता का द्योतक है ।

वाक् विकलागता — वाक् ध्वनि का अस्पष्ट, कम्पित, वाधायुक्त या दोष-सहित होना वाक् विकलागता है ।

वाक् विकलागता के कारण

श्रवण शक्ति का ह्रास, श्रवण स्थलो की विकृति
रोग, आघात, प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ
ओष्ठ, दत, जिह्वा, तालु आदि का विकृत होना
जातीय, वशगत एव प्रादेशिक प्रभाव
जन्म के समय, शैशव मे या बाल्यावस्था मे कुपोषण
प्राय. प्रत्येक दोष एक-दूसरे के साथ जुडे हुये होकर भी वाक्-दोष उत्पन्न करते है।

वाक् विकृति जाँच एव शोधन की विधियाँ

पटेक्षण विधि
वाक् शोधक विधियाँ

बौद्धिक मन्दता वाक् स्तर को समुन्नत नही होने देती। वाणी विकास वातावरण से ही सर्वाधिक सम्भव है। "वाग्वै परम ब्रह्म" (वाणी ही पर ब्रह्म है) बृहदारण्यक उपनिषद की यह उक्ति अपने मे विशिष्टता रखती है।

उच्चारण शोधन—उच्चारण बाधा की अवस्था ज्ञात होने पर ही उच्चारण शोधन सम्भव है। शब्द-सग्रह, विकार वर्गीकरण, (वैयक्तिक एव समूहगत) निर्देशन एव अभ्यास दोनो पर ही आधारित रहना चाहिये। द्विभाषी बालको हेतु वाणी आकलन पट्टिका महत्त्वपूर्ण है। सम्भाषण, गोष्ठी, चर्चा शब्दो की आवृत्ति आदि द्वारा उच्चारण शोधन किया जाये।

घोष-दोष मे ध्वनि गुम्फित हो जाती है एव सुनने वाले का श्रवण-तन्त्र-कम्पन अस्पष्ट होता है। ध्वनि का सोद्देश्य होना भी आवश्यक है।

ध्वनि गठन—स्वस्थ घोष-तन्त्र ध्वनि-गठन को सशक्त बनाता है। सवेदीय अवस्थाओ मे ध्वनि कम्पन बढ जाता है।

वाणी स्खलन—मानसिक तनाव की स्थितियो मे उच्चारण सीधे प्रभावित होता है।

वाणी स्खलन के कारण —
घोष-तन्त्र का विकृत होना
विलम्ब से भाषा सीखना
सवेदीय अवस्थाएँ
शारीरिक विकृतियाँ, आघात या मारपीट
जन्मगत
प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ एव तनाव आदि।

बालक मे बढता हुआ असन्तोष, असहिष्णुता, सवेदी सघर्ष, भय, ताडना कुपोषण आदि वाणी स्खलन के कारण है।

निदान एव उपचार

१ नियन्त्रित वाणी २ अभ्यास एव उच्चारण

प० कन्हैयालाल के शब्दो मे बालक को समाज स्वीकृति प्राप्त होनी ही चाहिये।

विलम्बित-वाणी विकार के भी प्रायः वही प्रमुख दोप हैं, परन्तु इसमे मनोसामाजिक प्रवृत्ति अधिक कार्य करती है। घर मे सह्-माथी वालको का अभाव विलम्बित वाणी विकार को वढाता है।

श्रवण सहायक—इसकी सहायता से सीखने मे शीघ्रता एव स्थायित्व प्राप्त होता है।

तालु एव ओष्ठ विकृति के साथ-साथ वाक् दोप मे दन्त एव जिह्वा प्रमुख हैं। ये दोप अभ्यास के माध्यम से शीघ्र दूर किये जा सकते हैं। समुचित श्रवण शक्ति को विकसित करने हेतु यह आवश्यक है कि वालक स्वय भी प्रयत्नशील हो।

प्रमस्तिष्कीय सम्तम्भ भी वाक् दोप का प्रमुख कारण है। पेशिक शैथिल्य एव तनाव, को अत्यन्त सावधानी के माथ, वोलते समय दूर करके, उत्प्रेरण एव प्रोत्साहन देते रहना श्रेयस्कर है।

विशेपज्ञ एव चिकित्सक के अतिरिक्त परिभ्रामी विशेपज्ञो का परामर्श भी प्रयोग मे लाना चाहिये।

वाक्-दोप का निवारण शारीरिक विकार, मनोमामाजिक अवस्था एव अन्य दुष्प्रभावो को समाप्त करके ही किया जा सकता है। श्रवण विकृतियो की भी चिकित्सा होनी चाहिये। उससे वालक वलाघात, स्वराघात, आरोह, अवरोह एव अनुनासिक ध्वनियो को सहज ही ग्रहण कर सकता है।

वाक् विकास हेतु सर्वांगपूर्ण वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिये।

वाक्-दोप निवारक विशेप व्यवस्था एव सुविधा, विद्यालय मे अध्यापक, अभिभावक एव प्रभावी छात्रो को उपलब्ध होनी चाहिये। जिससे विभिन्न विकृतियो मे वर्गीकृत छात्र विशेप एव ममूह रूप मे इन साधनो का नियमित उपयोग करे। प्रारम्भ मे अध्यापक के निदेशन की विशेप आवश्यकता रहती है। एतदर्थ विभिन्न प्रयास सम्भव है —(१) अक्षर ज्ञान, (२) शव्द-वोध, (३) अनुकरण विधि, (४) समवेत पद्धति, (५) ध्वनि साम्य, (६) साहचर्य, (७) आवृत्ति।

वाक्-दोप निवारणकर्ता (अध्यापक, चिकित्सक, अभिभावक) प्रभावित वालको का स्नेह एव विश्वास प्राप्त करके उनमे आत्मविश्वास उत्पन्न करें एवं स्वाभाविक रूप से जिम प्रकार वाक्-दोप का निवारण हो सके उसी विधि को अपनायें।

* * *
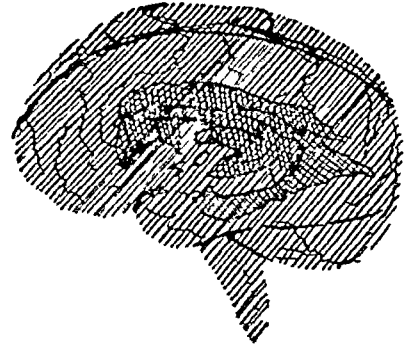
3. बौद्धिक विभिन्नता एवं शिक्षा

बौद्धिक विभिन्नता

I बुद्धि प्रतिभा सम्पन्न बालक और शिक्षा

बौद्धिक प्रतिभा का क्षेत्र इतना व्यापक है कि कुछ अवस्थाओ मे, विषय-विशेष मे बालक की सर्वोच्च स्थिति होते हुये भी उसे बौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न बालक की श्रेणी मे रखना समीचीन प्रतीत नही होता। व्यवसाय विशेष, विषय-विशेष एव कार्य-विशेष मे बौद्धिक-प्रतिभा का स्वरूप एक-दूसरे से भिन्न मिलता है। शैक्षिक दृष्टि से यह परमावश्यक है कि शिक्षण–काल मे बालको का वर्गीकरण बौद्धिक स्तर पर ग्राह्यात्मक स्थिति को लेकर हो। मानव शक्ति के अपव्यय से रक्षण हेतु यह उचित है कि अध्ययन काल मे प्रतिभावान बालको को विषय-विशेष एव त्वरित गति से पढाने वाले योग्य एव निपुण अध्यापको की व्यवस्था हो, क्योकि यह निश्चित है कि बुद्धिमान बालक की ग्रहण–शक्ति सामान्य बालको की अपेक्षा त्वरित होगी।

विचार-विमर्श करते समय सूझ, तर्कशक्ति, स्मृति, अभिसारी विचार, सकल्पना, अनुभूति, सार विश्लेपण, बोध, विषय मे दूरगामी पैठ एव ग्रहण-क्षमता प्रतिभा-सम्पन्न बालक मे स्पष्टतया प्रकट होती है। यह ज्ञातव्य है कि समाज ने हर युग मे प्रतिभा-सम्पन्न बालको के लिये दर्शन, धर्म, साहित्य, सगीत, नृत्य, गणित, ज्योतिष, अध्यात्म, स्थापत्य, राजनीति, अर्थशास्त्र जैसे विषय प्रस्तुत किये है। अत यह कहना दुष्कर है कि आधुनिक समय मे प्रतिभा की परिभाषा मे कुछ विशेष अन्तर आ गया है। परन्तु इतना सुनिश्चित है कि आज विभिन्न आयु-स्तर पर प्रतिभावान बालको को वर्गीकृत करने के लिये एव उनकी क्षमताओ का पता लगाने के लिये अनेक वैज्ञानिक मापन एव परख-पत्र विश्व-स्तर पर प्रचलित हैं। छात्रो के वर्गीकरण की दृष्टि से भी यह परख-पत्र उपयोगी सिद्ध हुये हैं।

बौद्धिक प्रतिभावान बालक की पहचान

"पूत के पैर पालने मे दिखाई दे जाते है।" इस उक्ति के आधार पर विद्यालय मे, घर मे, या घर के बाहर प्रतिभावान बालक की पहचान सहज हो जाती है। ऐसे बालक साहित्य, कला, सगीत, गणित, भाषा एव सृजनात्मक लेखन मे विशेष रुचि रखते हैं। सामाजिक नेतृत्व, नाटक या यन्त्र-सचालन मे इनकी गति स्वाभाविक होती है। किसी भी कार्य मे प्रभावकारी परिणाम अर्जित कर लेना एव उसमे वर्णनीय सफलता को प्राप्त करना, बौद्धिक प्रतिभावान बालक की पहचान के लिये पर्याप्त लक्षण है। प्राय स्मृति, भाषा, तर्क, विचार, स्पष्टता एव सूझ के लिये इनकी प्रशसा भी घर, विद्यालय या समाज मे होती रहती है।

वस्तुत कार्य निर्वहन एव कार्य नियोजन ही ऐसी अवस्था है जिससे कोई भी प्रतिभावान बालक की पहचान कर सकता है। किसी भी विद्यालय मे ऐसे बालको की सख्या १० से १५ प्रतिशत तक होती है। एक सुनिश्चित समयान्तर से, मानकीकृत जाँच अभ्यास एव समस्या देकर, बुद्धि-लब्धि अक के आधार पर प्रतिभा एव विकास की गति का पता लगाया जा सकता है। आज ज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि १८० तक बुद्धि-लब्धि अक रखने वाले बालक कई क्षेत्रो मे मिलेंगे। ठीक इसके विपरीत सर्वथा साधारण दिखाई देने वाले बालक किसी विषय-विशेष मे प्रतिभावान दृष्टिगोचर होगे। अत प्रतिभावान बालक की पहचान उसमे निहित ऊर्जा पर नही, उसके उपयोग पर है।

विशिष्ट प्रतिभावान बालक

विशिष्ट-प्रतिभावान बालक अपने क्रियाकलापो, रुचियो, कार्यो एव परिकल्पनाओ के माध्यम से पुष्ट एव प्रौढ व्यक्तियो के वार्तालापो तथा विचार-विमर्शो मे परामर्श देने लग जाते है। बहुधा वह अपने विचारो से प्रौढो को विस्मित कर देते है। ऐसे बालक शीघ्र ही अपने वर्ग का नेतृत्व करने लगते है। धैर्य के साथ, कई कोणो एव सफलता-असफलताओ को ध्यान मे रखकर सोचते है तथा तदनुरूप अपनी गतिविधियो को विकसित करते है। प्राय तर्क, न्याय, औचित्य एवं युक्ति से परिपूर्ण निर्णय के आधार पर कृत कार्यो का मूल्याकन भी विशिष्ट-प्रतिभावान छात्र करते रहते हैं।

स्वानुभूति एव अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे सामाजिक और पारिवारिक स्वीकृति एव मान्यता की ओर इनका ध्यान सर्वाधिक रहता है। प्रेम, सहानुभूति, सुरक्षा, दृढ आत्मनिर्णय एव परिवार मे अपना विशिष्ट स्थान इनकी आवश्यकता एव इच्छा के अग होते हैं। ये प्रौढ की भाँति अपने को परिवार का सर्वाधिक उत्तरदायित्वयुक्त व्यक्ति अनुभव करते है। चतुर एव बुद्धिमान माता-पिता ऐसे बालको को सहयोग प्रदान करते है तथा उनकी इच्छाओ, व्यवस्थाओ एव योग्यताओ को स्वीकृति देते है।

विशिष्ट प्रतिभावान बालक और अन्य साथी

बालक अपने साथी बालको मे जिस द्रुत गति से विकसित होता है वह अत्यन्त सहज एव स्वाभाविक गति है। विशिष्ट प्रतिभावान बालक अन्य विशिष्ट प्रतिभावान पड़ोसी बालको की ओर आकृष्ट होते हैं। इनकी गति इनमे बिना किसी अवरोध के होती है। यह सामान्य बालको मे अति शीघ्र सम्मान पा जाते हैं। सामाजिक एव सांस्कृतिक मूल्यो के प्रति ये बालक सचेष्ट रहते हैं। इन बालको के जीवन मे बहुधा पारिवारिक समस्याएँ, परम्पराओ के व्यावहारिक स्वरूप की उलझनें और पडौस के असन्तुलित जीवन के झञ्झट इस तरह छा जाते है कि साधारण बुद्धि-सम्पन्न अध्यापक इन जटिलताओ को समझ भी नहीं सकते। फलस्वरूप ये बालक असामाजिक तत्त्वो की ओर अग्रसर हो जाते है या फिर विद्रोही बन जाते हैं, जहाँ इन्हीं जैसे अन्य साथी बालक सम्मिलित हो जाते हैं। समाज भी इस वर्ग को उच्च स्तर का बौद्धिक नेतृत्व देने मे असमर्थ रहता है। रुचि, स्वभाव एव स्वत प्रेरक गति के आधार पर इनके कार्य होते हैं, जिनका नियन्त्रण हर एक व्यक्ति की सामर्थ्य-सीमा से परे है।

विशिष्ट प्रतिभावान बालक और समाज

"साधारण मस्तिष्क वाला व्यक्ति समाज के हाथ-पैर हैं, मध्यम स्तरीय मस्तिष्क वाला व्यक्ति समाज का धड, तो यह स्पष्ट है कि प्रतिभावान व्यक्ति ही समाज का मस्तिष्क है।" चन्द्रपति के इस कथन का सकेत उन बौद्धिक प्रतिभावान बालको से है जो आने वाले समाज का सशक्त मार्गदर्शन करेंगे। यदि भावी समाज को अच्छे अध्यापक, वैज्ञानिक, वकील, चिकित्सक, न्यायाधीश, व्यापारी एव नेतृत्व प्रदान करने वाले व्यक्ति चाहिये तो आज बौद्धिक प्रतिभावान बालको का वर्गीकरण करके उनको विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापको के निर्देशन मे शिक्षित एव विकसित करने का अवसर प्रदान करें। भारत का दुर्भाग्य है कि इसका अधिकाश प्रतिभावान वर्ग विदेश की ओर उन्मुख है। यह एक सामाजिक समस्या है, राष्ट्रीय चुनौती है। शिक्षाविदो को पूर्ण सावधानी व चेतना के साथ

सामाजिक मूल्यो को ध्यान मे रखकर बौद्धिक प्रतिभावान बालको की शिक्षा को योजनाबद्ध एवं उद्देश्याधारित करना होगा। समाज का यह दायित्व है कि आने वाले स्वस्थ समाज के निर्माण के लिये इस अस्त-व्यस्त शक्ति का दिशा-निर्देश करे, जिसे प्राचीन के मूल्यो पर, वर्तमान की आवश्यकताओ को दृष्टि मे रखकर भावी पीढियो के लिये उपयोगी बनाया जा सके।

विशिष्ट प्रतिभावान बालक और विद्यालय

विद्यालय मे ऐसे छात्रो को जो नियमित रहते है और अभ्यास कार्य या अन्य दत्त कार्य को शीघ्रता से, सबसे पहले, करके दिखादें एव जो अध्यापको की दृष्टि मे आज्ञाकारी, अनुशासन मे रहने वाले हो, प्रतिभावान बालक की श्रेणी मे गिन लिया जाता है। कतिपय अध्यापक ऐसे छात्रो को भी प्रतिभावान मान लेते है जो विद्यालयीय जाँच पत्रो मे उत्तम अक ले आएँ या शिक्षण काल मे प्रश्नो के उत्तर बुद्धिमत्ता से तर्क प्रस्तुत करते हुये अपने कथन की पुष्टि मे प्रमाण उपस्थित करें।

विद्यालय ऐसे बालको को विशिष्ट प्रतिभावान बालको की श्रेणी मे लेता है। इनके लिये वह शुल्क-सुविधा, छात्रवृत्ति, पुस्तकालय सुविधा एव अन्य सुविधाएँ भी प्रदान करता है। परन्तु इतना निश्चित है कि सामान्यत विद्यालय इन बालको की क्षमताओ का पूर्ण उपयोग नही कर पाते। बहुसख्यक मन्द गति वालो के साथ तेज गति वाले, किन्तु सख्या मे अत्यल्प, बँध जाते है।

विद्यालय का दायित्व

विद्यालय का यह पुनीत दायित्व है कि वह विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न बालको की आवश्यकता, मानसिक अभिरुचि एव क्षमताओं को समझकर उन्हे सुनिश्चित दिशा मे विकसित करने के सुअवसर प्रदान करें। तीव्र बौद्धिक क्षमता लिये बालक यदि साधारण-बुद्धि बालको के साथ शिक्षण प्राप्त करता है, तो उसकी वृत्ति किसी भी असामाजिक कार्य मे लग जायेगी जिसमे वह अपनी बौद्धिक क्षमता का पूर्ण उपयोग करेगा, क्योकि इन बालको मे विचार, सम्बन्ध एव घटनाओ के साथ निपटने की अद्भुत योग्यता होती है।

विद्यालय बौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न बालको को निम्नलिखित तीन वर्गों मे विभाजित कर सकता है —

१ सर्वोच्च प्रतिभा-सम्पन्न
२ विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न
३ प्रतिभा-सम्पन्न

१ सर्वोच्च प्रतिभा-सम्पन्न बालक अपने वर्ग के सर्वश्रेष्ठ छात्रो मे से होते है जिनकी बुद्धि-लब्धि अक १७० से १८० तक एव इससे भी अधिक हो सकती है।

२ विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न अपने वर्ग मे बुद्धि-लब्धि अक १३० से १५० या इससे भी अधिक बुद्धि-लब्धि अक वाले हो सकते है, परन्तु १७० बुद्धि-लब्धि अक से अधिक नही।

३ प्रतिभा-सम्पन्न बालक अपने वर्ग मे ११५ से १२५ बुद्धि-लब्धि अक या इससे भी अधिक बुद्धि-लब्धि अक वाले हो सकते है, परन्तु १३० बुद्धि-लब्धि अक से अधिक नही।

प्रस्तुत निर्धारण के बुद्धि-लब्धि अंकों में न्यूनाधिक विभिन्नता भी सम्भव हो सकती है।

प्रतिभा सम्पन्न बालकों के शिक्षण विषय

विद्यालय में विषय—शिक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत तीनों ही वर्ग के बालकों को दृष्टिगत रखकर शिक्षण कार्यक्रम का उल्लेख किया जा रहा है। सीखने की गति-वृद्धि को ध्यान में रखकर तीनों वर्गों में बौद्धिक विभिन्नता के आधार पर निम्नलिखित विषयों का समायोजन किया जाना समीचीन होगा।
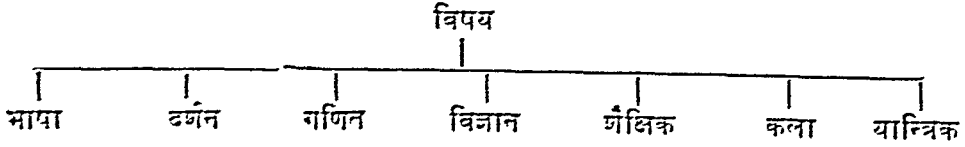
उपर्युक्त विद्यालयीय विषयों के अन्तर्गत अन्य विषय भी लिये जा सकते हैं, परन्तु इस निमित्त ध्यातव्य बिन्दुओं में बौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न बालकों के संज्ञान सकारात्मक लक्षण एवं संज्ञान नकारात्मक लक्षण भी विवेचनीय हैं। यद्यपि कभी-कभी (कतिपय विशिष्ट बालकों में) दोनों ही प्रकार के वांछित एवं अवांछित लक्षण इस बात को बल प्रदान करते हैं कि बालक प्रतिभा-सम्पन्न है।

संज्ञान सकारात्मक लक्षण

ज्ञानात्मक—१ साधारण अभ्यास के साथ सीखने की त्वरित गति
२. तर्कसंगतता युक्तियुक्त विवेचन एवं प्रत्युत्पन्न गति
३ शब्द-कोष, विश्व-कोष एवं अन्य सन्दर्भ ग्रन्थों का निर्बाध प्रयोग
४ सामान्यीकरण, सह-सम्बन्ध, विषय गाम्भीर्य तथा स्पष्ट एवं प्रौढ़ चिन्तन।

भावात्मक—१. साहित्य एवं दर्शन अध्ययन में रुचि
२ मौलिक अभिव्यक्ति (लिखित एवं मौखिक)
३ मानव स्वभाव एवं अस्तित्व
४ अतिशयन (एक्सेल) की दृढ़ इच्छा
५ हास्य-विनोद।

परीक्षणात्मक—१. अभिलेखन एवं वर्गीकरण
२ सराहना क्षमता एवं प्रौढ़ मित्रता
३. मानसिक आयु के आधार पर निर्णय।

संज्ञान नकारात्मक लक्षण

ज्ञानात्मक—१ दुरूह अभ्यास या अनवरत अभ्यास के पश्चात् मन्द गति से सीखना
२. शब्द भण्डार होते हुये भी या अभाव में लेख एवं वर्तनी की अस्थिरता
३ दत्त कार्य के प्रति अरुचि एवं लापरवाही।

भावात्मक—१ असावधानी
२ असहयोग की प्रवृत्ति

परीक्षणात्मक—१ स्वय को वास्तविकता से अधिक समझना
२ उतावलेपन मे निर्णय
३. स्व-निर्णय को सर्वोपरि महत्त्व देना।

विकसित एव विस्तृत शिक्षण की आवश्यकता

"शिक्षण की दृष्टि से वौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न वालक शिक्षण की साधारण या मध्यम श्रेणी की प्रक्रिया से सन्तुष्ट नही हो सकते। इनकी ग्रहण-शक्ति, उत्तम शब्दावली, जिज्ञासा, तर्क शक्ति इस वात की द्योतक है कि इन्हे शिक्षित करने हेतु विकसित साधन ही नितान्त समीचीन है।" (वि० वि० वाजपेयी) जिज्ञासा एव ग्रहण-शक्ति इनमे प्रवल महत्त्वाकाक्षा प्रकट कर देती है जिससे वडे-वडे प्रश्न इन वालको के मस्तिष्क मे घूमते रहते हैं। उदाहरणार्थ—प्रधानाचार्य के स्थानान्तरण से राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र तक की वातें कर जाना, उस पर अपनी सम्मत्ति, निर्णय, साधिकार टिप्पणी करना। घण्टो ओलम्पिक खेल, क्रिकेट, फिलम उद्योग, विश्व राजनीति, वाजार भाव, अणु परीक्षण, आकाशवाणी आदि पर निर्द्वन्द्व चर्चाएँ, प्रश्न और समाधान वस्तुत विकसित मस्तिष्क के ही परिणामस्वरुप हैं।

"मानसिक योग्यता एव शैक्षिक उपलब्धियो को आधार मानकर जव तक शिक्षण नही होगा भग्नाशाग्रस्त वालक समाज को पीडित करते रहेंगे।" शिक्षा सन्त स्वामी केशवानन्द का यह कथन वौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न वालको हेतु यह स्पष्ट सकेत देता है कि इनके लिये विकसित एव विस्तृत शिक्षण की व्यवस्था उपलव्ध की जाये।

विकसित शिक्षण हेतु कतिपय ध्यातव्य विन्दुओ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है —

१ वुद्धि-लव्धि के अनुसार अतिरिक्त शिक्षण की व्यवस्था।
२. प्रयोगशालाओ मे अधिक व्यस्त रहना।
३ पुस्तकालय का अधिकाधिक उपयोग।
४ पत्र-पत्रिकाओ के विशिष्ट लेखो की ओर आकृष्ट करना।
५ मौलिक एव मुक्त चिन्तन के लिये सर्वाधिक अवसर प्रदान करना।
६ लिखित एव मौखिक अभिव्यक्ति को विकसित करने के लिये उचित अवसर प्रदान करना।
७ परिभ्रामी अध्यापको की समुचित व्यवस्था, जिससे वालक अपनी रुचि के विषय को विशेष रुप से जान सके।
८ विचार गोष्ठियो मे प्रतिभा-सम्पन्न वालको को सम्भागियो के रुप मे सम्मिलित किया जाना।
९. विचार गोष्ठियो का प्रतिभा-सम्पन्न वालको के लिये आयोजन।
१० प्रदर्शनियो, विद्यालय वीथियो, विशिष्ट कक्षो आदि का निर्माण।
११. अध्यापक वर्ग को उच्च स्तर निर्माण हेतु प्रोत्साहित किया जाये एव प्रतिभा-सम्पन्न वालको हेतु अतिरिक्त पठन-पाठन व्यवस्था हो।

१२ अववोध्य वर्ग की स्थापना, जिसमे मानसिक स्तर की दृष्टि से छात्रो का चयन हो ।

१३ परिभ्रामी एव विशेप अध्यापक की देखरेख मे प्रतिभा-सम्पन्न वालको की, उनकी रुचि, क्षमता एव कार्यकुशलता के अनुसार, विशेप निर्देश । अतिरिक्त सहगामी प्रवृत्तियो की व्यवस्था एव विशेप दिवस प्रावधान, जो वालक की विशेप रुचि क्षेत्र से सम्वन्धित हो ।

१४ विशेप विपयो मे वालको की पहुच जानने हेतु प्रतिभावान वालको द्वारा व्याख्यान माला का आयोजन ।

१५. सूझ के विकास के साथ-साथ रचनात्मक प्रवृत्तियो के विकास हेतु समुचित अवसर उपलब्ध करना ।

१६ विद्यालयीय कार्यक्रम को इस प्रकार परिपुष्ट करना कि उसकी परिसीमा मे विशिष्ट वौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न वालक-वालिकाओ की यथेष्ट शिक्षण सामग्री हो ।

१७. साथी वालको से मिलने, चर्चा करने व साथ रहने की सुविधा हो ।

१८ विशेप प्रोत्साहन—कार्य, सुविधाएँ एव आर्थिक सहायता ।

शिक्षण व्यवस्था

वौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न वालको हेतु शिक्षण व्यवस्था को प्रारम्भ से ही देखना होगा । "यह सर्वदा उपेक्षणीय है कि मानसिक आयु के महत्त्व को गौण करके शारीरिक आयु के आधार पर ही कोई शिक्षा ग्रहण करने का अधिकारी रहे । वौद्धिक प्रतिभा के विकास मे यह एक जड कल्पना है ।" चन्द्रपति के इन शब्दो मे वह तथ्य है जिसने देश मे पब्लिक विद्यालयो के विकास को प्रोत्साहित किया है । इसके साथ ही किन्डर गार्टन, वालवाटी, वाल भारती एव शिशु विद्यालयो मे जो आज छोटे शिशुओ को लेकर प्रवेश का प्रचलन वढा है उसने सीखने मे वौद्धिक गति को वढावा दिया है ।

१. प्रतिभा-सम्पन्न वालको को प्रारम्भ से ही किंडर गार्टन या वाल भारती मे प्रविष्ट कराया जाये ।

२ उच्च या महाविद्यालय स्तर पर आयु की दृष्टि से प्रवेश न होकर मानसिक आयु के निर्णय के आधार पर प्रवेश दिया जाये ।

३ समस्तर (सेमेस्टर) पद्धति के आधार पर उन्हे अग्रिम वर्ग मे अग्रेपित करते रहना चाहिये । इसके पीछे मूल धारणा मानसिक शक्ति को ठाली वैठने से रोकना है ।

४ एक साथ दो कक्षाओ को भी उन्नीत करवाया जा सकता है, परन्तु उसमे विपय के स्थायित्व मे अपरिपक्वता की शका वनी रहती है ।

५ शिक्षण की अनवरतता एक ऐसा पक्ष है जिसमे यन्त्र गति शिक्षण को मन्द कर देती है । यही अवस्था वातावरण की भी है । अत दोनो वाते उचित रीति से समजित रहनी चाहिये ।　—(शिक्षण की अनवरतता एव वातावरण)

६. प्रतिभा-सम्पन्न वालक द्रुत गति से सीखता है अत विना समय खोये उसे विपय-ज्ञान दिया जाये। या जव भी वह ग्रहण करने की स्थिति मे हो प्रारम्भ मे ही दो-तीन कक्षाओ की तैयारी एक साथ करा दी जाये एव वालक जितना सीखना चाहे विना अवधि सीमा निर्धारित किये सीख ले । यह प्रयोग समूह, वर्ग या व्यक्तिगत विद्यार्थी पर भी किया जा सकता है । ज्यो-ज्यो ग्रहण-क्षमता विकसित हो उसी के अनुसार अधिकाधिक शिक्षण प्रदान किया जाये ।

७. शिक्षण क्रम लचीला होना चाहिये एव परामर्श व निदेशन की समुचित व्यवस्था हो।

औसत बुद्धि-क्षमता के बालकों के साथ प्रतिभा-सम्पन्न बालको के शिक्षण मे प्रतिभा-सम्पन्न बालक द्रुत गति से एव कम प्रयास से सीखता है एव शेष समय अनिश्चित गतिविधियो मे अपने समय और शक्ति को नष्ट करता है। औसत बुद्धि बालक भी अपने को हीन अनुभव करने लगता है व उसका शिक्षण स्तर और मन्द पडने लग जाता है।

विद्यालयीय व्यवस्था

साधारण विद्यालयो की अपेक्षा प्रतिभा-सम्पन्न बालको के लिये विद्यालय का स्तर विशिष्ट होना चाहिये क्योकि प्रतिभा-सम्पन्न बालक का शिक्षण परम्परित विद्यालयीय व्यवस्था के लिये चुनौती है, जिसमे वर्ग का औसत निकालकर शिक्षण स्तर आरम्भ हो जाता है, जबकि प्रत्येक बालक अपने मे ही एक स्वतन्त्र कक्षा है।" (आचार्य लेखराम) प्रस्तुत कथन की परिसीमा मे विद्यालयीय व्यवस्था के निम्नलिखित विशिष्ट आधार स्तम्भ आ जाते हैं —
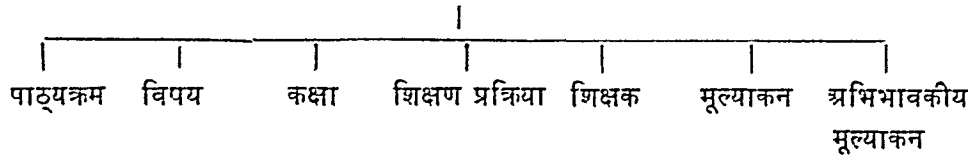
पाठ्यक्रम

औसत पाठ्यक्रम मे अतिरिक्त पाठ्यक्रम का प्रावधान रहना चाहिये। यदि विद्यालय विशेष कोटि का है तो सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की सरचना ही बौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न बालको की मानसिक आयु को ध्यान मे रखकर निर्मित की जानी चाहिये। सक्षेप मे 'अ', 'आ', दो पाठ्यक्रम हो, 'अ' औसत पाठ्यक्रम एव 'आ' मे विकसित पाठ्यक्रम की सरचना श्रेयस्कर होगी। बालक को यह भी सुविधा प्राप्त होनी चाहिये कि यदि विषय विशेष तथा उसका उन्नत स्तर बालक के मस्तिष्क की परिधि मे है तो उसको उसे भी पढने की स्वीकृति एव व्यवस्था प्राप्त हो।

पाठ्यक्रम लचीला हो, उसमे बधन न हो, एव वह समय, बालक और विषय की उपयोगिता के अनुसार परिवर्तित एव परिवर्द्धित होने वाला हो। विकसित पाठ्यक्रम स्तर एव विषय विस्तार दोनो की ही दृष्टि से सशक्त होना चाहिये। विषय की विविधता पाठ्यक्रम मे होनी चाहिये।

विषय

विभिन्न अनिवार्य एव वैकल्पिक विषयो के प्रावधान के साथ विकसित अध्ययन हेतु अन्य विषय अवश्य होने चाहिएँ। राष्ट्रीय भाषाओ के अध्ययन के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओ के अध्ययन को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। विज्ञान, साहित्य, दर्शन, गणित, भूगोल, राजनीति, अर्थशास्त्र, आयुर्विज्ञान, समाजशास्त्र जैसे विषयो के अतिरिक्त प्राचीन शास्त्रीय विषय जैसे वैदिक वाड्मय, सस्कृत, ज्योतिष एव अन्य विषयो को भी पाठ्यक्रम की विषय-वस्तु मे सम्मिलित किया जाना चाहिये। आधुनिक व्यावसायिक एव

तकनीकी विषयो का सुनियोजित आकलन करके उसे विषय के अन्तर्गत रखा जाना चाहिये ।

शिक्षण कक्ष

शिक्षण कक्ष आधुनिक साज-सज्जा से युक्त होने चाहिये जिनमे शैक्षिक उपकरण एव फर्नीचर आधुनिक एवं सुविधाजनक होने चाहिये । श्यामपट्ट अधिक काला और चमकीला न हो । हरित पट्ट हो तो और भी उत्तम हे । स्थान, प्रकाश, वायु की दृष्टि से कक्ष २५′×४०′ के हो । इन्ही मे विषय की पुस्तके भी उपलब्ध रहे एव अतिरिक्त स्थान स्वतन्त्र अध्ययन हेतु या निर्देशन ग्रहण करने हेतु भी हो जिससे साधारण शिक्षण बाधा-रहित रहे । कक्षा मे बालक इतना सहज (अनौपचारिक रूप से) रहे कि उसे घुटन या भीड अनुभव न हो ।

शिक्षण प्रक्रिया

शिक्षण पद्धति की विस्तार से चर्चा करना समीचीन प्रतीत नही होता । प्राय अध्यापक प्रशिक्षित होते हे एव जो प्रतिभा-सम्पन्न बालको हेतु नियुक्त है वह अवश्य ही विकसित शिक्षण प्रक्रियाओ से अवगत होगे । अध्यापक को किसी पद्धति विशेष का मोह पढाते समय नही रखना चाहिये । जिस किसी भी माध्यम से बालक सहज रूप से, कम समय मे एव साधारण अभ्यास के साथ सीख सकता है वही उत्तम हे ।

शिक्षण प्रक्रिया को व्यवस्थित एव निर्दिष्ट दो श्रेणियो मे विभक्त कर लेना चाहिये ।[1] प्रथम सत्र मे व्यवस्थित शिक्षण हो जिसमे निर्धारित विषयो का कक्षा शिक्षण हो ।[2] अपराह्न सत्र मे निर्दिष्ट अध्ययन की व्यवस्था हो । व्यवस्थित शिक्षण से तात्पर्य हे नियमित कक्षा शिक्षण जिसमे औसत मान के अनुसार अध्यापन हो एव निर्दिष्ट अध्ययन से अभिप्राय व्यक्तिगत बालक की समस्याओ को ध्यान मे रखकर निराकरण की दृष्टि से विशेष या अतिरिक्त ध्यान के साथ अध्यापन ।

शिक्षण प्रक्रिया की दृष्टि से निम्नलिखित बिन्दुओ के अन्तर्गत अध्ययन-अध्यापन स्थितियाँ निश्चित करना उत्तम परिणाम देने वाला होगा

(क) बालक द्वारा मुक्त अध्ययन ।
(ख) पूर्व दत्त कार्य का नियोजन ।
(ग) अग्रिम शिक्षण हेतु पूर्वाध्ययन ।
(घ) विस्तृत अध्ययन ।
(ट) रुचि जागरण ।

शिक्षक

प्रतिभा-सम्पन्न बालको को शिक्षण प्रदान करने हेतु यह सर्वथा उचित है कि उनके लिये प्रतिभा-सम्पन्न अध्यापक ही नियुक्त किये जाएँ । यदि स्वय अध्यापक औसत प्रतिभा का है तो वह प्रतिभा सम्पन्न बालको को शिक्षित करने की विधि मे अवश्य प्रशिक्षित होना चाहिये । अध्यापक को विषयाधिकार के साथ-साथ बाल मनोवृत्ति एव बौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न बालको की रुचि, ग्राह्य-क्षमता एव जिज्ञासा से अवश्य परिचित होना चाहिये । शिक्षक बालको की चुनौती को स्वीकार करता हुआ होना चाहिये । वह बालको की

विचार शक्ति से विषय का तारतम्य जोडने मे निपुण हो। समय, स्थिति एव विचार प्रवणता का मूल्याकन करके व्यापक सहानुभूति और समर्थन बालक को प्रदान करता है, वही उसे भी बालको की ओर से प्राप्त होता है।

शिक्षक को यह भी स्मरण रखना समीचीन होगा कि कही उसके व्यक्तित्व का प्रभाव बालक की मुक्त विकासावस्था को निगल तो नही रहा है। अध्यापक नव-सृजन, नव दिशा एव नव-चेतना की ओर बालक की क्षमताओ को उद्बोधित करने वाला होना चाहिये। उच्च प्रतिभा-सम्पन्न बालक उच्च स्तरीय देखभाल भी चाहते है। मूल्यवान वस्तु को सम्भालना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उसी प्रकार **प्रतिभा-सम्पन्न बालक अध्यापक पर अतिरिक्त भार एव उत्तरदायित्व है।** १८० से अधिक बुद्धि-लब्धि अक प्राप्त बालक अध्यापक एव विद्यालय के लिये चुनौती है, जिसे प्रतिभा-सम्पन्न अध्यापक ही स्वीकार कर सकता है। अतः शिक्षक का पद्धति एव विषय दोनो मे निष्णात होना अत्यावश्यक है।

बौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न बालक की शिक्षा

औसत बालक की अपेक्षा प्रतिभा सम्पन्न बालक द्रुतगति से सीखता है। विषय मे पैठ, सूझ, स्मरण शक्ति, स्तर आदि प्रत्येक पक्ष मे उसका विकास गुणात्मक एव सख्यात्मक दोनो ही दृष्टि से औसत बालक से कई गुणा अधिक होता है। अत यह आवश्यक है कि इनके लिए विशेष शिक्षण की व्यवस्था हो, पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति, अध्यापक, प्रशासन आदि मे परिवर्द्धित एव विकसित कार्यक्रमो को स्वीकार किया जाये।

प्रगति पजिका

प्रगति पजिका एकमात्र ऐसा साधन है जिससे बालक की बौद्धिक प्रतिभा की प्रगति की जानकारी अध्यापक को होती रहती है। अल्पायु मे ही शिशु विद्यालय मे प्रवेश से निर्मित प्रगति पजिका ऐसे बालको के शैक्षिक विकास मे अत्यधिक सहायक है। प्रगति पजिका मे निम्नलिखित बातो का स्पष्ट एव वस्तुनिष्ठ आकलन रहना चाहिये जिससे बालक के पूर्व ज्ञान का सम्बन्ध नूतन विषय सामग्री से जोडा जा सके।

१ विषय, २ ग्राह्य अवधि, ३ रुचि, ४ ध्यान, ५ स्तर, ६ समस्या। प्रगति पजिका के आधार पर बालक के शिक्षण के प्रबन्ध एव निदेशन की व्यवस्था देना उपयुक्त होगा। बढते हुए वैज्ञानिक सास्कृतिक, आर्थिक एव सामाजिक आयामो के घेरे इस बात की ओर सकेत करते है कि हमारे शिक्षाविदो को प्रारम्भिक कक्षा से लेकर उच्च कक्षाओ तक प्रतिभा सम्पन्न बालको के लिये एक क्रम-बद्ध कार्य-क्रम निर्मित करना होगा। प्रगति पजिका के आधार पर वर्गीकरण सहज है, परन्तु इतना ही द्रष्टव्य है कि प्रगति पजिका मे आकलन व्यक्तिनिष्ठ नही हो।

विद्यालयीय व्यवस्था एव प्रतिभा सम्पन्न बालक शीर्षक के अन्तर्गत विभिन्न शैक्षिक पक्षो की चर्चा के पश्चात् विषय ज्ञान की दृष्टि से निर्देशन का सर्वाधिक महत्त्व है।

निर्देशन एव उसकी उपयोगिता

बालक को स्पष्ट व्यक्तिगत निर्देश उसकी उपलब्धियो को दृष्टि मे रख कर दिये जाएँ। इसमे पाँच छात्रो तक का एक वर्ग भी निर्देशन की परिसीमा मे जाच के उपरान्त रखा जा सकता है। निर्देशन प्रदान करते समय स्मरणीय महत्त्वपूर्ण बिन्दुओ मे है —

१ निर्देशन मे विविधता और लोच हो ।
२ निर्देशन जीवन के अनुभवो के साथ जुडा हो ।
३ निर्देशन मे व्यापकता हो ।
४ निर्देशन मे मनोसमाज साम्कृतिक उदारता हो ।
५ निर्देशन विपय और वातावरण से समन्वित हो ।
६. निर्देशन मे तर्क सम्मतता एव युक्ति सगतता हो ।
७ निर्देशन मे बाध्यता के स्थान पर छात्र ग्राह्य-सहमति हो ।
८ निर्देशन उत्साहवर्धक हो ।
९ निर्देशन प्रजानन्त्रोन्मुखी हो ।

विधिवत् प्रदत्त कार्य के परिणामो को समक्ष रख कर निर्देशन प्रदान करना । कतिपय प्रतिभा सम्पन्न बालक अपनी भावी शैक्षिक आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु स्वय सजग भी हैं । यदि निर्देशन से पूर्व यह ज्ञान नहीं होगा तो एक असन्तोप बालक के मन मे उभर कर सामने आ जायेगा । "निर्देशन, मात्र निर्देशन नहीं है, निर्देशन की पूर्णता के लिए यह आवश्यक है कि उसके अन्तर्गत बालक को समुचित वातावरण प्रस्तुत किया जाये ।" डा० मिव्रु के इस कथन के परिप्रेक्ष्य मे वह व्यावहारिक पक्ष हे, जिसके अधीन-बालक निर्देश्य तथ्यो को वातावरण मे सयुक्त करता है, विचारो का यथार्थ के माध्यम से मूल्याकन करता है; समय और स्थितियो के आधार पर सरचनात्मक नव विचारो को जन्म देता है ।

निर्देशन की सर्वोत्तम उपयोगिता उसे व्यवहार मे परिणत करने पर ही है ।

टरमन एव मेलिटा एच० आडेन जैसे सुविज्ञ शिक्षाविदो ने प्रतिभा-सम्पन्न बालको के सीखने की प्रक्रिया को तीव्रतर बनाने हेतु उच्च शिक्षा मे भी कम उम्र के बालको के प्रवेश की अनुशसा की है ।

प्रगति पजी एव निर्देशन के आधार पर यह समीचीन होगा कि प्रतिभा-सम्पन्न बालक माध्यमिक स्तर का पाठ्यक्रम तीन वर्ष के स्थान पर दो वर्ष मे समाप्त कर ले ।

अतिरिक्त कक्षा योजना

अतिरिक्त कक्षा योजना भी प्रतिभा-सम्पन्न बालको की जिज्ञासा एव समाज द्वारा प्रदत्त उन्नत प्रकार के पाठ्यक्रम को सही समझने व ग्रहण करने मे बालक, अभिभावक एव माता-पिता को सतुष्टि प्रदान करेगी । विशिष्ट बालक अपनी समस्याओ, शकाओ एव विषय विशेष के क्षेत्र को समझने के लिये अतिरिक्त कक्षा योजना से लाभान्वित हो सकेगे । अतिरिक्त कक्षा योजना निश्चित अवधि या कक्षा शिक्षण के नियमित कार्यक्रम के साथ समायोजित की जा सकती है । विशिष्ट अवस्थाओ मे अध्ययन सप्ताह आयोजित किये जा सकते हैं, जिनमे परिभ्रामी प्राध्यापको को आमन्त्रित किया जाये, जिससे बालको की विशिष्ट शकाओ का समाधान एव विषय विशेष पर विचार-विमर्श हो सके । डॉ० सरनाम सिह शर्मा के शब्दो मे "अतिरिक्त कक्षा योजना प्रतिभा-सम्पन्न बालको हेतु अतिरिक्त सहायता है, जो बालक के भावात्मक एव सामाजिक समजन के लिये महत्त्वपूर्ण है । परन्तु इस सन्दर्भ मे इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि कही अतिरिक्त कक्षा योजना बालक व अध्यापक पर अतिरिक्त भार न बन जाये ।

विशेष कक्षा योजना

प्राथमिक एव माध्यमिक स्तर पर नियमित रूप से विशिष्ट बौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न बालको के लिये विशेष कक्षा योजना विषय विशेष हेतु आरम्भ की जा सकती है। अतिरिक्त विशेष अध्यापक प्रभारी अध्यापक के रूप मे नियुक्त किये जा सकते हैं।

अशकालीन एव अल्पकालीन प्रायोजनाओ के अन्तर्गत प्रतिभा-सम्पन्न बालको को कार्य दिया जा सकता है। अभ्यास एव अनुभव की दृष्टि से यह एक सशक्त विधा है। इससे बालक मे विषय ज्ञान की दृढता एव स्वय अध्ययन की प्रवृत्ति विकसित होगी। डॉ० एल० के० ओड प्रतिभा-सम्पन्न बालको की माँग की पूर्ति मे इसे महत्त्व देते हैं। डॉ० के० कुमार प्राथमिक, माध्यमिक एव उच्च स्तर पर विशेष कक्षा योजना पर बल देते है। प्रो० व० ला० भोजक सामान्य कक्षाओ को परिविकसित करने की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। प्रस्तुत विचारो से विशेष कक्षा योजना का औचित्य परिलक्षित होता है। डॉ० रतनलाल शर्मा व प्रो० गणपत राम शर्मा के शब्दो मे विशिष्ट कक्षा का प्रावधान मानसिक आयु के आधार पर ही किया जाये।

प्रक्रिया एवं विषय

चिन्तन, मनन और अध्ययन को प्रमुखता देते हुये श्रीमती रमा कोचर घटनाओ, तथ्यो एव मूल्यो के सह-सम्बन्ध को शिक्षण की प्रक्रिया मे महत्त्वपूर्ण मानती हैं। ज्ञान के प्रेषण मे प्रक्रिया जितनी सरल और स्पष्ट होगी, सीखना उतना ही स्वाभाविक एवं सहज होगा। प्रो० केदारनाथ शिक्षण प्रक्रिया के परम्परित रूप के स्थान पर वैज्ञानिक, मौलिक एव रचनात्मक पक्ष को प्रतिभा-सम्पन्न बालको के लिये शिक्षण प्रक्रिया मे उपयोगी मानते हैं। ज्ञान अपने आप मे स्वतन्त्र अनुशासन नही है, यह समाज के व्यवहार एव मूल्यो से जुडा हुआ है। दूसरी ओर ज्ञान ही व्यक्ति के व्यवहार को विकसित एव परिमार्जित करता है। ज्ञान-ग्रहण निमित्त पचेन्द्रियाँ सर्वदा सक्रिय रहती है। चाक्षुष, श्रावणिक, स्पर्शज तथा घ्राण एव स्वाद से प्राप्त निष्कर्ष, समस्या या निर्णय स्वाभाविक शिक्षण प्रक्रिया से अधिक सूक्ष्म एव विशिष्ट रूप मे जाने जा सकते है।

शिक्षण प्रक्रियाओ मे नव-विधाओ का समावेश

बालक (औसत या प्रतिभा-सम्पन्न) कोई भी क्यो न हो समस्या का समाधान खोज निकालता है। मीनू दरवाजे के बन्द कुण्डे तक पहुँचने के लिये पजे के बल पर खडा होगा, इसके बाद कोई वस्तु रखेगा, कुण्डा खोलेगा, वस्तु हटायेगा, फिर दरवाजा खोलेगा। कुण्डा खोलने के साथ वह दरवाजा इसलिये नही खोल रहा है कि गिर जायेगा या वस्तु से दरवाजा टकरायेगा। सम्भव है ढाई वर्ष का मीनू प्रश्न किये जाने पर विधि न बतला सके। शब्दो के अभाव मे बालक वस्तुस्थिति को समझते हुये भी व्यक्त नही कर पाते।

भाषा

भाषा मौखिक एव लिखित अभिव्यक्ति का मूल आधार है। काव्यादर्श मे स्पष्ट वर्णित है कि "यदि शब्दो की यह ज्योति न होती तो समस्त ससार तिमिराच्छादित रहता।" प्रेषणीय शक्ति भाषा मे ही जीवित है। प्रतिभा-सम्पन्न बालक को पाठ्यक्रम-प्रस्तावित पुस्तको तक ही सीमित नही रहने देना चाहिये, अपितु विषय-सूची के अनुसार

वालको के समक्ष मौलिक ग्रन्थ, सन्दर्भ ग्रन्थ, सहायक ग्रन्थ एव पत्र-पत्रिकाओ व अन्य सामग्री का सज्ञान की पुष्टि, जिज्ञासा-शमन, चिन्तन, तर्क, एव रुचि-जागरण हेतु अवश्य ही निर्दिष्ट अध्ययन-अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाना उपयुक्त है। इससे वालक जहाँ अल्पायु मे पढना सीखेगा वहाँ वह अपनी मौखिक एव लिखित अभिव्यक्ति को भी शीघ्रता मे विकसित कर सकेगा।

गणित एव विज्ञान

वौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न वालक गणित एव विज्ञान जैसे विषयो मे कौशल से आगे वढकर मूल सिद्धान्तो एव उद्देश्यो को समझने मे अपनी वौद्धिक क्षमता को जाग्रत करें। गणित एव विज्ञान के विषय मे स्पष्ट अभिमत या विचार परिपुष्ट हो। विज्ञान शिक्षण की पाठ्यक्रम मे सही रूपरेखा ही यह होनी चाहिये कि वालक वैज्ञानिको के दृष्टिकोण के अनुसार विज्ञान सीखता हुआ अपनी विचारधारा मे वैज्ञानिको जैसी दृष्टि विकसित करे। प्रतिभा-सम्पन्न वालक विज्ञान-विषयक सूचनाएँ जानने की अपेक्षा उन परिणामो पर शोध एव कार्यो के आधार पर स्वय पहुँचना चाहता हे।

गणित एव विज्ञान दोनो ऐसे विषय है जिन्हे गणितज्ञ एव वैज्ञानिको की विचार-धारा के आयामो मे जानना होगा। अध्यापक अपने शिक्षण मे इस दृष्टि को वालको मे प्रारम्भिक अवस्था से ही जाग्रत करे।

मानविकी विषय

प्रतिभा-सम्पन्न वालक मानवीय मूल्यो के पर्यावरण से परिचित होना चाहते हैं। सामाजिक मूल्यो और दायो के विषय मे अपनी धारणाएँ उपस्थित करते है। जीवन और दर्शन के सैद्धान्तिक स्वरूप को व्यवहार मे उतरते देखना चाहते हैं। अपने को पूर्ण विश्व मे सयोजित करते है। यदि मानविकी विषयो के शिक्षण मे व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, सभ्यता और सस्कृतियो के आधारभूत तत्त्वो, सह-सवधो एव मान्यताओ को प्रजातन्त्र के सन्दर्भ मे मस्तिष्क को नव-दृष्टि प्रदान न की गई तो एक विकृत मनोभाव को लिये हुये प्रतिभा-सम्पन्न वालक सम्भवत मानवीय मूल्यो के प्रति अपने व्यवहार मे उपेक्षा एव घृणा को विकसित करें। सम्भव है इससे पूरा राष्ट्र पगु वन जाये।

मानविकी विषय भी गणित और विज्ञान की ही भाँति वालको के ज्ञान एव व्यवहार मे दार्शनिको एव विचारको की दृष्टि को विकसित करे जिससे एक सवल मस्तिष्क राष्ट्र का विकास हो।

कला

सगीत, नृत्य, चित्र आदि विषय शिक्षण भी जहाँ प्रतिभा-सम्पन्न वालको को तुष्टि प्रदान करते हैं, वहाँ उनका सम्बन्ध शेष सृष्टि से भी जोडते है। कला वर्ग मे विस्तृत दृष्टि को लेकर चलने वाला वालक अपने समष्टि के सुख-दु:ख का अनुभव कर पाता है। अभिव्यक्ति के मार्जन एव कौशल मे वह उन्हे सगीत, नृत्य या चित्र मे उतार देता है। "वालक की प्रतिभा समष्टि के साथ एकाकार हो उठती हे, जब वह अपनी ज्ञानेन्द्रियो के द्वारा समष्टि को अपने में समा लेता है और फिर अपने माध्यम से समष्टि को समष्टि के

समक्ष प्रकट कर देता है। वस्तुत व्यष्टि मे समष्टि का यह रूप ही सर्वोच्च कला है।"
—(कु० सुशीला पडित)

प्रतिभा-सम्पन्न वालक कला के माध्यम से अपने को समष्टि मे फैलाता है। अत प्रतिभा-सम्पन्न वालको मे कला की मौलिकता एव कलाकार की दृष्टि को विकसित करना नितान्त आवश्यक है।

मूल्याकन

प्रतिभा-सम्पन्न वालक के शिक्षण एव ग्राह्यात्मकता की दृष्टि से उसकी सुनिश्चित स्थिति जानने हेतु मूल्याकन एक अत्यावश्यक अग है। कार्य को अग्रसर करने से पूर्व यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि अध्यापक उपलब्धियो से अवश्य परिचित हो। वहुमुखी प्रतिभा को जानने के लिये मूल्याकन भी वहुमुखी होना चाहिये। अत मूल्याकन को निम्नलिखित अवस्थाओ के माध्यम से प्राप्त करके निष्कर्ष निकालना उचित होगा।

१ **वैयक्तिक जाँच परख-पत्र**—वालक की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति एव वुद्धि का प्राप्ताक स्तर जानने के लिये वैयक्तिक जाँच परख-पत्र उत्तम रहते हैं। वाल अभिरुचियो एव अभिवृत्तियो की भी वैयक्तिक दृष्टि से जाँच अच्छी रहती है। निरीक्षण के आधार पर भी व्यक्तिगत अभिरुचियो एव अभिवृत्तियो को परखा जा सकता है। प्रतिभा-सम्पन्न वालक १२० वुद्धि-लब्धि अक से २०० तक वुद्धि-लब्धि अक की परिसीमा मे आते हैं, अतः ८० वुद्धि-लब्धि अको के अन्तर से वालको मे व्यक्तिगत विभिन्नता वहुत अधिक हो सकती है क्योकि वुद्धि-लब्धि प्रभाव वालक की अन्तर्निहित क्षमताओ पर पडता है। यही व्यक्तिगत विभिन्नता वालक के निजी व्यक्तित्व की सूचक है।

२ **वर्ग जांच परख-पत्र**—सम्पूर्ण वर्ग की योग्यता, उस पर शिक्षण के प्रभाव, एव अध्यापक के श्रम की मात्रा एव गुणात्मकता को जानने हेतु (कि कही उसका प्रयास निरर्थक तो नही जा रहा है) यह उपयुक्त है कि कक्षा या वर्ग की सामूहिक जाँच हो, जिससे वालक की कक्षा-सापेक्ष योग्यता, वर्ग का स्तर, (उच्च, मध्यम एव सामान्य) मालूम करके विशिष्ट वालको की पहचान हो, एव शिक्षण की आधार भित्ति से अध्यापक परिचित हो सके, दूसरे, वालक के ज्ञान का शैक्षिक अभिपरिवर्तन, अभिशोधन एव अभिवर्द्धन वर्ग के आधार पर सहज भाव से सम्भव हो सके।

वर्ग-जाँच पूर्ण विद्यालय का मूल्याकन प्रस्तुत करने मे सक्षम होती है। वालक का वातावरण उसकी शारीरिक तथा मानसिक अवस्था एव उसकी रुचि कभी स्थिर नही रहती। वालक की शैक्षिक उपलब्धि (विषय विशेष, भाषा, गणित, तर्क, अभिव्यक्ति आदि का कौशलपूर्वक निर्वहन) अत्यन्त मूल्यवान् है। यही स्थिति वर्ग की मानसिक आयु की दृष्टि से उत्तम, मध्यम एव साधारण वालको का ज्ञान कराती है। शिक्षण की दृष्टि से अध्यापक को अपने वर्ग के मानसिक स्तर का ज्ञान होना चाहिये। इसके साथ ही अध्यापक का निरीक्षण भी अपने वर्ग के प्रति यथावत् सजग रहना चाहिये, कि कही विषय विशेष अनुवर्ती योजना के अभाव मे अपना स्तर तो नही खो रहा है। यथा, गणित या भाषा मे कमजोरी के कारण क्या है लापरवाही, उदासीनता, अभ्यास का अभाव या रुचि न होना। वर्ग जाँच-परख पत्र अनेको पक्षो मे वालक के स्तर को प्रकट करता है।

सह-साथी मूल्याकन

वालको की क्षमता, योग्यता एव रुचि को जानने के लिये सह-साथियो के मूल्याकन

को भी महत्त्व देना चाहिये, परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि वालको के निर्णय को ही सर्वोपरि मान लिया जाये, अपितु उसे एक यथार्थ के रूप मे देखकर साथी वालको के निर्णय पर पुर्नविचार करना समीचीन होगा।

प्राय विद्यालयो मे कतिपय विशिष्ट वौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न वालक, जो कक्षा मे शान्त वैठे रहते हे, अवकाश-वेला मे अन्य वालको की शैक्षिक समस्याओ का वडे मनोयोग से स्पष्ट करते पाये जाते है। अध्यापक के विशिष्ट निर्देशन से भी इस प्रकार के वालक लाभान्वित नही हो पाते।

अध्यापकीय मूल्यांकन

वस्तुनिष्ठ मूल्याकन सवसे कठिन समस्या है, प्राय व्यक्ति-निष्ठता मूल्याकन को प्रभावित कर देती है, फिर भी ऐसे कुछ अध्यापक है, जो निष्पक्ष या वस्तुनिष्ठ मूल्याकन प्रस्तुत करने मे सक्षम है। अध्यापक का अनुभव, विद्यार्थियो के साथ अपनी निष्पक्षता, एव निरीक्षण-परीक्षण के आधार पर प्राप्त तथ्यो के सहारे शुद्ध एव सही मूल्याकन प्रस्तुत किये जा सकते है। इसके लिये प्रारम्भ से ही अध्यापक को चाहिये कि वह छात्र अभिलेख, प्रगति पजिका, जाँच, व्यवहार एव रुचियो के मान एव स्तर को सकलित करता रहे।

अभिभावकीय मूल्याकन

विशिष्ट वौद्धिक प्रतिभा सम्पन्न वालक का मूल्याकन करते समय एक सीमा तक अभिभावको के मूल्याकन को भी स्वीकार किया जाना समीचीन होगा। अभिभावक बालक के ज्ञान, रुचि एव अभिवृत्तियो के मार्गान्तिरीकरण, परिशोधन एवं परिवर्धन मे अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकते है। अभिभावको द्वारा दिया गया विशेष ध्यान, निदेशन, शारीरिक एव मानसिक अभिवृद्धि हेतु किये गये सह-प्रयत्नो का मूल्याकन मे अपना विशिष्ट महत्त्व है। इससे वालक के सामाजिक जीवन मे समजन की अवस्था का स्तर एव स्थिति का मूल्याकन प्राप्त करने मे भी सुविधा होगी।

प्रभावी शिक्षरण क्रम हेतु सुझाव

विश्व स्तर पर शिक्षाविदो की यह सर्वसम्मत धारणा है कि प्रतिभा-सम्पन्न वालक औसत छात्र की अपेक्षा द्रुत गति से सीखता है, उसे अभ्यास भी कम देना होता है और न ही शिक्षण की यान्त्रिकता के घेरे मे शिक्षक उलझता है।

(अ) वालको की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एव भावात्मक स्थितियो मे अन्तर होते हुये यदि वुद्धि-लब्धि एक हो या इसके ठीक विपरीत उपर्युक्त अवस्थाओ मे समानता हो एव उच्च स्तर पर वुद्धि-लब्धि अको मे अन्तर हो, तो विशेष कक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत प्रभावी शिक्षण प्रदान किया जाये। यदि विशेष कक्षा की व्यवस्था सम्भव न हो तो नियमित कक्षा मे ही अतिरिक्त ध्यान दिया जाये।

(आ) शिक्षण मे, ज्ञान के स्मरण की अपेक्षा उसके व्यावहारिक पक्ष को शिक्षण का माध्यम वनाया जाये।

(इ) तर्क, विषयो के सह-सम्बन्ध तथा विचारो की तत्परता से ग्रहणीय शक्ति एव समस्याओ के समाधान की क्षमता को देखते हुये प्रतिभा-सम्पन्न अध्यापको की ही नियुक्ति की जाये।

(ई) मानसिक आयु के आधार पर प्रवेश सुविधा दी जाये।

(उ) यदि कोई बालक अन्य बालको से पिछड रहा है तो उसके लिये अतिरिक्त विशेष सुविधा एव व्यवस्था का प्रबन्ध हो, जिससे वह अन्य बालको के स्तर पर आ जाएँ एव उनमे अनुकूलन स्थापित कर सकें।

(ऊ) प्रतिभा-सम्पन्न बालको मे परिव्याप्त उत्तम शब्दावली का मौखिक अभिव्यक्ति एवं लिखित अभिव्यक्ति के द्वारा प्रसारण हो।

(ए) ज्ञान के अभिवर्धन हेतु बालक की रुचि, सूचना एव जिज्ञासा विषयक प्रवृत्तियो का क्षेत्र विस्तृत किया जाये।

(ऐ) प्रतिभा-सम्पन्न बालको की मनोसामाजिक भूमि अत्यधिक सुकोमल होती है। कोई भी व्यवहार उन्हे औसत छात्रो से अत्यल्प समय मे प्रभावित कर जाता है। ऐसी अवस्था मे उनके साथ व्यवहार अत्यन्त गम्भीर, सधा हुआ एव सुसस्कृत होना चाहिये।

(ओ) जहाँ बालको की रचनात्मक प्रवृत्तियो को विकसित करने के लिये सुअवसर प्रदान करें, वहाँ यह भी जानना समीचीन होगा कि कही बालक अपने प्रति उदासीन तो नहीं है। अध्यापको की निरीक्षण शक्ति अत्यधिक सक्रिय रहनी चाहिये।

(औ) प्रोत्साहन एव पुरस्कार किसी भी अवस्था मे प्रभावी हो सकते है। यह अवस्था बाल-प्रकृति एव बाल-व्यक्तित्व को स्वीकार करती है। बालक समाज मे अपना समर्थन चाहता है और वह उससे अपने को सम्मानित अनुभव करता है।

सार संक्षेप

१. बौद्धिक प्रतिभा-सम्पन्न बालको के विषय मे शोध के आधार पर जिन धारणाओ का विकास हुआ है, शिक्षा और शिक्षण के क्षेत्र मे बुद्धि-लब्धि अको के आधार पर विषय ज्ञान प्रदान किया जाये। शारीरिक आयु का, शिक्षण मे, मानसिक आयु के साथ विशेष सम्बन्ध नही है। बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एव भावात्मक विकास को दृष्टि मे रखकर उससे परिविकसित साधनो से शिक्षित किया जाये एव उनका बौद्धिक स्तर पर वर्गीकरण हो। प्रतिभा-सम्पन्न अध्यापको को ही इनके शिक्षण हेतु नियुक्तियाँ प्रदान की जाएँ।

२ प्रतिभा-सम्पन्न बालको मे स्मृति, तर्क, कार्य-निर्वहन क्षमता, सूझ एव परिकल्पनाएँ पुष्ट तथा प्रौढ व्यक्तियो के सदृश होगी। वे औसत छात्रो की अपेक्षा द्रुत गति से, बिना अधिक अभ्यास के, सीखते है।

३. विद्यालयो मे उत्तम व्यवस्था, विशेष कक्षा योजना, पुस्तकालय सुविधा, विशेष अध्ययन कक्ष हो, बालको का बौद्धिक स्तर पर वर्गीकरण हो एव उन्हे प्रवेश सुविधाये मिलें। विद्यालयीय व्यवस्था मे पाठ्यक्रम, विषय, शिक्षण प्रक्रिया, शिक्षक एव मूल्याकन निहित हैं।

४ ज्ञानात्मक, भावात्मक एव परीक्षणात्मक आधार पर बालक को विकसित एव विस्तृत अध्ययन योजना का निर्माण हो।

५ शिक्षक अपने विषय मे निपुण एव स्वय प्रतिभा-सम्पन्न हो। शिक्षक बालको को रचनात्मक कार्यों मे प्रवृत्त करें, एव सम्पूर्ण कार्यों एव उपलब्धियो का लेखा-जोखा प्रगति पजिका मे भावी निर्देशन की दृष्टि से अकित करे।

६ प्रतिभा-सम्पन्न वालक को सशक्त निर्देशन परिसीमा मे लेना चाहिये । निर्देशन काल मे बालक की वुद्धि एव मनोसामाजिक अवस्था को भी दृष्टि मे रखना चाहिये ।

७ शिक्षण प्रक्रिया मे विपयवस्तु के अन्तर्गत भाषा, गणित, विज्ञान, मानविकी एव कला विपयो का समावेश होना चाहिये । प्रतिभा-सम्पन्न वालक इन विषयो को यत्रवत् ग्रहण न करे अपितु अपने व्यवहार एव दृष्टिकोण मे भाषा की प्रकृति गणितज्ञ की दृष्टि, वैज्ञानिकता, मानवीय मूल्यो एव कला के मौलिक एव सौन्दर्य पक्ष के माध्यम से विपयवस्तु को जानना सीखे ।

८ विकसित शिक्षण पद्धति एव कार्यक्रम, प्रतिभा-सम्पन्न वालक को स्वय सोचने, तर्क करने, सुअवसर प्रदान करने, शोध एव निर्देशन के महत्त्व को जानने, स्वय साधन जुटाने एव स्वावलम्वी वनाने मे सहायक है । वालक की अभिरुचियो एव अभि-वृत्तियो को विकसित करने मे सहायक है ।

९ मूल्याकन एकमात्र ऐसी उपलब्धि है जिसके आधार पर बालक का स्तरीकरण, अग्रिम कक्षा मे प्रवेश एव निर्देशन सम्भव है ।

१० परिर्वतित होते जीवन मूल्य नव समस्याओ को जन्म देते है । इनमे प्रतिभा-सम्पन्न वालको की शक्ति को उचित मार्ग पर लगाने हेतु यह परमावश्यक है कि शिक्षा, शिक्षण, पाठ्यक्रम एव अध्यापक गत्यात्मक हो । उनमे रचनात्मक एव मौलिक सूझ हो ।

११ सुझाव की दृष्टि से यह परमावश्यक है कि **प्रतिभा-सम्पन्न बालक को ईश्वरीय निधि के रूप में देखा जाये** । भौतिक क्षति राष्ट्र या विश्व को इतना पतनोन्मुखी नही वनाती जितना कि प्रतिभा-सम्पन्न वालक को न सम्भाल सकना । उसे उसकी माँग के अनुमार सुनिश्चित शिक्षण प्राप्त होना ही चाहिये, अन्यथा यह नही कहा जा सकता कि यह प्रतिभाएँ कव असामाजिक प्रवृत्तियो मे ढल जाये, जनजीवन असुरक्षा एव अन्धकार मे पड जाये और मानवीय मूल्यो से जनसाधारण अपनी आस्था खो वैठे ।

II मन्द बुद्धि बालक एवं शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र मे मन्द वुद्धि वालक से तात्पर्य उस वालक से है, जिसकी सूझ, तर्क शक्ति एव ग्राह्य क्षमता औसत छात्र से भी कम हो । मन्द वुद्धि वालक शिक्षण ग्रहण करने मे ही मन्द नही होते वे सामाजिक व्यवहार, भावात्मक स्थितियो एव समस्याओ के समझने व सुलझाने मे भी मन्द होते है । प्रत्येक वर्ग ने अपने वर्ग के औसत व्यक्ति को दृष्टि मे रखकर मन्द वुद्धि व्यक्तित्व को पहचानन्ने का प्रयास किया है । समाजशास्त्री उस वर्ग को, जो सामाजिक अनुकूलन ग्रहण करने मे समाज के औसत व्यक्ति से भी कम है, यथा जो सामाजिक मूल्यो, मान्यताओ एव परम्पराओ को समझने मे असमर्थ है, अपने को समाज के अनुकूल नही ढाल पाता उसे मन्द वुद्धि कहते हैं ।

मन्द वौद्धिक क्षमता या शक्ति के कारण मन्द-वुद्धि वालक जीवन के हर स्तर पर औसत व्यक्ति से न्यून वुद्धि-लब्धि अक प्राप्त करते हैं । प्राय उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों की पहचान इनमे नही होती । प्रजातन्त्र मे, जहां मौलिक चिन्तन, सूझ, नेतृत्व एव स्वावलम्बन

को महत्त्व दिया जाता है, वहाँ मन्द बुद्धि व्यक्ति गौण नही किये जा सकते । यह एक राष्ट्रीय दायित्व है कि ऐसे लोगो का अध्ययन करके उनका वर्गीकरण किया जाये एव शिक्षण, की सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाये जिससे कम मे कम समाज पर तो यह वर्ग आश्रित न हो, या फिर इन्हें नारकीय जीवन जीने को बाध्य न होना पडे ।

मन्द-बुद्धि की परिभाषा

"मन्द-बुद्धि" की सुनिश्चित परिभाषा सम्भव नही है । शारीरिक दृष्टि से ठीक होते हुये भी इनमे अपने जीवन स्तर को उन्नत करने की सूझ, नही होती । यह सामाजिक, आर्थिक, सामुदायिक, सांस्कृतिक या व्यावसायिक दृष्टि से अत्यन्त साधारण कार्यो मे अपना जीवन व्यतीत कर देने वाले होते है । "मन्द बुद्धि बालक मे विषय की सूझ एव समस्या के निराकरण की शक्ति अत्यन्त मन्द होती है , एव उसमे साधारण से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यो मे पलायन की वृत्ति रहती है । प्राय निरन्तर अभ्यास के उपरान्त भी जीवन के हर क्षेत्र मे औसत उपलब्धि अक प्राप्त करने मे अक्षम रहते हैं ।" (चन्द्रपति)

शिक्षाविदो का यह कहना सर्वथा उचित है कि भौतिक परिभाषाओ की भाँति मन्द बुद्धि की परिभाषा करना सरल नही है । मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेपक एव मनोचिकित्सक लोग मन्द बुद्धिता को यक्ष्मा, कैंसर या अन्य बीमारी के सदृश नही ले सकते । वस्तुत यह बहुक्षेत्रीय प्रभाव से प्रभावित है एव बहुक्षेत्रीय अवस्थाओ को प्रभावित भी करता है । "मानसिक मन्दता व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार को प्रभावित करती है एव व्यक्ति का व्यवहार समाज के प्रत्येक वर्ग को । मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक एव सामान्य क्षेत्र आदि मे भी मन्द-बुद्धि वर्ग मन्द ही रहता है ।" स्वामी केशवानन्द की इस विचार-धारा के पीछे व्यापक वातावरण है, जिसमे मन्द बुद्धि बालक को जीवन यापन करना है ।

मन्द-बुद्धि बालक का वर्गीकरण

बुद्धि लब्धि अको के आधार पर मन्द बुद्धि बालको का वर्गीकरण सहज ही किया जा सकता है । बालक के विषय मे किसी भी कार्य मे क्षमता, समय, आवृत्ति एव उपलब्धि परिणामो को ध्यान मे रख कर मन्द बुद्धि बालको का वर्गीकरण सम्भव है । सेमुअल क्रिक एव आरविले जानसन जैसे प्रमुख शिक्षाविदो ने निम्नलिखित वर्गीकरण किया है —

मन्द बुद्धि बालको का सेमुअल क्रिक द्वारा वर्गीकरण

धीमी गति मे सीखने वाले	शिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालक	प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालक	सर्वथा मानसिक मन्दता

१ **धीमी गति से सीखने वाले**—धीमी गति से सीखने वाले साधारणत मन्द-बुद्धि बालको की श्रेणी मे नही आते । प्राय औसत छात्र से यह मन्द बुद्धि वर्ग मानसिक उम्र मे एक या डेढ वर्ष छोटा रहता है । बीस से पच्चीस प्रतिशत तक ऐसे बालक धीमी गति से सीखने वाले होते हैं । प्राय यह सामान्य मनोवृत्ति के होते हैं, भावात्मक, सामाजिक एव व्यावसायिक जीवन मे अनुकूलन रखने मे समर्थ होते है । वे अभ्यास के पश्चात् औसत

स्तर के वालको तक अपने कौशल पक्ष को विकसित कर लेते है । इन्हे साधारण विद्यालयो मे शिक्षित किये जाने पर कक्षा प्रभावित नही होती, केवल अतिरिक्त ध्यान देने की सामान्यत आवश्यकता अनुभव हो सकती है । इनका वुद्धि-लब्धि अक ७० से ८० तक के लगभग रहता है ।

वर्तमान समय मे जैसे-जैसे शिक्षण पद्धतियो और प्रक्रियाओ मे अन्तर आ रहा है धीमी गति से सीखने वाले वालको की तरफ विद्यालय, अध्यापक, प्रशासन एव माता-पिताओ का ध्यान अत्यधिक आकृष्ट हुआ है । मन्द वुद्धि वालको के लिए सीधे उनकी समस्याओ को सुलझाने हेतु प्रयास किये जा रहे है । इस वर्ग से समाज को क्षति नही है, और न ही यह वर्ग समाज पर भार वना हुआ है । कम वेतन, अधिक श्रम एव लिपिक कार्यों को जिन्हे थोडे अभ्यास के पश्चात् उसी प्रकार करते रहना पडता है यह आसानी से कर सकते है । इनका वुद्धि-लब्धि अक ७० से ८५ तक रहना है । वे विद्यालयीय वातावरण या कक्षा मे अपने को अन्य साथी वालको के साथ समजित कर लेते है । वे व्यावसायिक क्षेत्र मे दूरभाप कर्मचारी, टकक, लिपिक, चालक (ड्राइवर), सैनिक, मिस्त्री, कम्पाउण्डर, श्रमिक, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी आदि का कार्य कर सकते है ।

२. शिक्षण योग्य मन्द वुद्धि वालक—धीमी गति से सीखने वाले वालक प्राय: व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, व्यावहारिक, शैक्षिक एव अन्य गतिविधियो मे थोडे प्रयास से अपना साधारण योगदान देने मे सक्षम है । शिक्षण योग्य मन्द वुद्धि वालक केवल पर्याप्त अभ्यास के पश्चात् सामान्य पढना, लिखना और साधारण व्यवहार मे आने वाले गणितीय प्रश्नो को दैनिक जीवन मे उपयोग मे लाने मे सफल हो जाते है । इनका वुद्धि-लब्धि अक ५० और ७० के मध्य रहता है ।

नियमित विद्यालयीय शिक्षण मे इन्हे वाधा होती है । कक्षा के साथ सीखने मे वे अतिरिक्त ध्यान और अभ्यास के पश्चात् भी नही हो पाते । इनका वुद्धि-लब्धि अक ५० से ७० तक पाया जाता है । इन्हे शिक्षण प्रदान किया जा सकता है । निरन्तर अभ्यास से इनमे कुछ कौशल विकसित हो जाता है । कुछ ऐसे कार्यो को जैसे—डाक वाँटना, पत्रो को अकित करना, भण्डार गृहो पर पहरा देना, उपस्थिति लेना या शारीरिक श्रम से सम्वन्धित अन्य कार्य जिनमे आवृत्ति ही रहती है, करने योग्य हो जाते है, एव अपनी आजीविका न्यूनतम स्तर पर अर्जन करने योग्य हो जाते है । शिक्षण योग्य मन्द-वुद्धि वालक अतिरिक्त अभ्यास चाहते हैं । अतिरिक्त कक्षाएँ इन्हे शिक्षण योग्य वनाने मे सहायक हो सकती है ।

३ प्रशिक्षण योग्य मन्द वुद्धि वालक—प्रशिक्षण योग्य मन्द वुद्धि वालक वे है जिनका वुद्धि-लब्धि अक २० और ५० के मध्य रहता है । इन वालको मे शिक्षा ग्रहण करने की क्षमता नही होती । कक्षा या विद्यालयीय वातावरण मे अपने को समजित नही कर पाते । औसत छात्रो मे पाँच वर्ष पीछे चलते हैं । अनवरत अभ्यास भी इन्हे अधिक सहायता नही दे पाता और न ही यह अभ्यास की प्रक्रिया को जानने मे सफल हो पाते है ।

प्रशिक्षण योग्य मन्द-वुद्धि वालक स्वय की देखभाल रखना सीख जाये तो उनके लिये यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य होगा । माता-पिता पर या समाज पर इनका भार नही होगा । इसके अन्तर्गत तीन प्रमुख विन्दु ले सकते है —

१ शारीरिक सुरक्षा, शौच स्थान, भोजन, वस्त्र एव विश्राम आदि के कार्य सीख सकें ।
२ अपने घर या पडौस मे समजित होना सीख सकें ।

३ श्रमिक के रूप मे अपनी आजीविका न्यूनतम स्तर पर चला सकें।

अभिभावक या माता-पिता इन बालको को चिकित्सा सेवा के माध्यम से, या विशेषज्ञों के निर्देशन मे रख कर अपने प्राकृतिक कार्यो को सम्पन्न करने योग्य बनाने मे सहायक हो सकते हैं। यदि ये अपनी देखभाल एव सुरक्षा योग्य बन जाएँ एव साधारण शारीरिक श्रम के माध्यम से थोडा बहुत अर्जन कर सके तो प्रशिक्षण सफल होगा। प्रशिक्षण योग्य मन्द-बुद्धि बालक से तात्पर्य ही उस बालक से है जिनके हाथ-पैरो को अभ्यास दिया जा सके।

४ **सर्वथा मानसिक मन्दता**—सर्वथा मानसिक मन्दता से युक्त बालको को शिक्षित किया जाना असम्भव है। इसके विपरीत उनकी देखभाल, दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति (शौच, स्नान, वस्त्र, खानपान, बीमारी एव अन्य) आदि मे भी माता-पिता या भाई-बहिन को ही सक्रिय रहना पडता है। ऐसे बालक पूर्णत समाज पर निर्भर रहते हैं एव बिना समाज की विशेष देखभाल के जीवित भी नही रह सकते। अपनी आवश्यकताओ हेतु वे किसी को भी सूचित करने मे असमर्थ रहते हैं।

एक प्रकार से उनका शारीरिक, मानसिक, भावात्मक विकास नही होता। इनमे पहचान या स्मृति का अत्यधिक अभाव रहता है। इनका बुद्धि-लब्धि अक ५ से २० तक होता है, यदि शारीरिक आयु १० वर्ष से १५ वर्ष के मध्य हो। इनकी देखभाल के लिये प्रशिक्षित धाय प्रारम्भिक अवस्था मे रहनी चाहिये। जितना स्थूल एव सीमित वातावरण इनके समक्ष रहेगा उतना ही ये दुर्घटनाओ मे नही फँसेंगे, गड्ढे या अन्य अवरोध से बचे रहेंगे। आग एव पानी से अपने शरीर को दूर रखने जैसा स्थूल ज्ञान इन्हे करवा देना चाहिये।

मानसिक मन्दता के कारण

मानसिक मन्दता के प्रमुख कारणो को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—
१ आन्तरजात, २ वाह्यजात।

१ आन्तरजात—क जन्मगत (आगिक कारण)
ख प्रजनन सम्बन्धी

२ वाह्यजात —क दुर्घटजाजन्य

समाज-सास्कृतिक अवस्था एव जन्म प्रभाव आन्तरजात के अन्तर्गत शरीर के अन्दर का जीवन, जन्मगत एव प्रजनन सम्बन्धी विकृतियाँ है। वाह्य जात के अन्तर्गत वातावरण एव दुर्घटना एव समाज सास्कृतिक अवस्थाएँ है। कभी-कभी यह दोनो ही अवस्थाएँ मानसिक मन्दता का कारण बन जाती हैं। इससे जीवन मे गत्यात्मकता समाप्त हो जाती है एव सोचने का क्षेत्र अत्यन्त स्थूल हो जाता है।

जन्मगत—जन्मगत कारणो का सीधा प्रभाव आगिक सरचना पर पडता है। आगिक सरचना पर दवाव पडने के फलस्वरूप मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो जाता है। इन कारणो का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है गर्भ धारण काल मे स्त्री-पुरुष का रोगी होना, गर्भ मे बालक के विकास मे अवरोध, गर्भ-विकृति, माता का गर्भ धारण करने के पश्चात् मानसिक यन्त्रणा या शारीरिक दण्ड सहना, जिससे विकृति गर्भावस्था मे ही विकसित हो जाती है। इससे कतिपय विद्वानो ने वशानुगत भी स्वीकार किया है। माता

के रक्त मे विकार शिशु के विकास को प्रभावित करता है।

जन्मगत कारणो के दूसरे पक्ष मे वालक के उत्पन्न होने के समय की अवस्थाओ को भी देखा जा सकता है। उत्पन्न होते समय मस्तिष्क पर आघात लग जाना, जन्म के साथ उचित देखभाल न होना, मस्तिष्क की विभिन्न विकास अवस्थाओ का दोषपूर्ण होना, गर्भ का समय से पूर्व, या अधिक समय के पश्चात्, वालक को त्यागना। शिशु अवस्था मे मानसिक विकृति , गिरने से, आघात से, असावधानी से या वालक के जटिलता से उत्पन्न होने से।

मस्तिष्कीय कोष-तन्तुओ का अपूर्ण विकसित होना, विकृत होना या कुविकसित होना भी एक कारण है, गर्भावस्था मे टाक्सेमिआ या सिफिलिस होना, पूर्ण विकसित वालक पर गर्भ मे आघात पड जाना। माता का ही रुग्ण एव विकृत होना आदि भी अन्य कारण हैं।

प्रजनन सम्वन्धी—प्रजनन सम्वन्धी विकृत प्रभाव भी वालक मे मानसिक मन्दता का कारण वन सकता है। मगोल, अविकसित मस्तिष्क वालक के लिये, पर्याप्त समय से चला आ रहा शब्द है। परीक्षण के उपरान्त यदि सम्भावना दिखाई दे तो आज इसका उपचार सम्भव है।

माता का रुग्ण होना, उसमे वशगत मस्तिष्क दोष रहना, माता एव पिता दोनो का ही मन्द बुद्धि होना या मस्तिष्क रोग से ग्रसित होना, वीर्य एव रज की विकृति मानसिक मन्दता के कारण है।

रोग एव दुर्घटना—दुर्घटना दुर्घटना है। चाहे वह गर्भावस्था मे हो या जन्म के उपरान्त, अपना प्रभाव अवश्य दिखाती है। परन्तु यह दुर्घटना की प्रकृति पर निर्भर करेगा कि किस प्रकार की विकृति व्यक्ति मे विकसित हुई है। गर्भावस्था मे प्राणवायु (आक्सीजन) के अभाव मे बुद्धि तन्तु टूटने लगते हैं। आयुर्विज्ञान इस वात को स्पष्ट करता है कि ज्ञान तन्तु दो मिनट भी प्राणवायु लेने मे असमर्थ रहे तो अपूर्त्य क्षति हो जाती है, जिसे चिकित्सा के द्वारा भी ठीक नही किया जा सकता।

शारीरिक ज्वर की तीव्रता भी मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओ को नष्ट कर देती है, वुद्धि ज्वर सीधे मस्तिष्क पर प्रभाव डालता है। यह कुछ ऐसे रोग है जिनके कारण वालक मानसिक मन्दता से ग्रसित हो जाते है।

ऐसी दुर्घटना, जो जन्म के उपरान्त सीधे मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओ को प्रभावित करती है, उन्हे नष्ट कर देती है, जिससे मस्तिष्क असाधारण अवस्था मे कार्य करने लगता है एव मानसिक मन्दता का कारण वन जाता है।

मनोसामाजिक सास्कृतिक प्रभाव

वालक पर गर्भ मे भी वातावरणीय प्रभाव होने लगता है, परन्तु वालक के उत्पन्न होने के पश्चात् वह सीधे सामाजिक सास्कृतिक वातावरण के परिवेश मे आ जाता है। घर की आर्थिक स्थिति, वालक एव माता को पूर्ण पोषण प्राप्त न होना, घर के अन्य वालक, परिवार का दुर्व्यसनी होना, घर का अत्यन्त अस्वास्थ्यकर वातावरण, तग कोठडी, शुद्ध हवा, पानी और प्रकाश का अभाव, सीलन, वदबू, धुँआ और कीटाणुओ से परिपूर्ण घर का वातावरण, निश्चय ही वालक की मानसिक अवस्था को अवरुद्ध करेगे।

मनोवैज्ञानिक एव सास्कृतिक प्रभाव भी वालक की मानसिक मन्दता का कारण

वन जाते है । यथा—पितृ-सत्तात्मक परिवारो मे लडकी के उत्पन्न होने पर रूक्षता, अवहेलना, उपेक्षा, ध्यान न देना आदि है । इसी प्रकार वालक के पोषण की अपेक्षा उत्सव एव अन्य कृत्यो पर निरर्थक व्यय करने के कारण कुपोषण तथा अविकसित, अपर्याप्त अवस्थाओ का प्रारम्भ से ही वालक पर दवाव पडता है । माता-पिता अपने वालको को शैशवावस्था मे ही भूत-प्रेतो से डराने लगते हैं । विभिन्न आवाजो, आकृतियों एव भयावह कहानियो से वालक का केन्द्रीय स्नायु सस्थान प्रभावित होता है । अनपढ ही नही, शिक्षित माता-पिता तक अपने शिशुओ को अफीम देना आरम्भ कर देते है । मादक द्रव्यो का सेवन छोटे वालको को कराना एक साधारण वात है । इसमे मस्तिष्क जैसा सुकोमल अग सर्वप्रथम प्रभावित होता है । अज्ञान और कामुकता की दशाओ मे वालको का तेजी से उत्पन्न होना व उनका पोषण तो दूर देखभाल भी न कर पाना शिक्षाविदो के लिये चिन्ता का कारण है ।

शिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालक एव शिक्षा

"शिक्षा एक पावन मानवीय दायित्व है, उसकी परिसीमा मे जहाँ प्रतिभा-सम्पन्न वालक आता है वहाँ मन्द बुद्धि वालक के प्रति दोहरा उत्तरदायित्व है उसे शिक्षित करना एव स्वावलम्वी वनाना ।" दर्शन, साहित्य एव व्याकरण के सुविज्ञ विद्वान् आचार्य चण्डीप्रसाद के इस कथन मे समाज का दायित्व वोध उभरा है । मन्द बुद्धि वालको के लिये शिक्षा-व्यवस्था के विवेचन से पूर्व उद्देश्य एव लक्ष्य की निर्धारणा अत्यन्त आवश्यक है ।

उद्देश्य एव लक्ष्य

"शिक्षा के उद्देश्यो एव लक्ष्यो मे वह सव समाहित है जो हम प्रजातन्त्र के सन्दर्भ मे अपने वालको मे विकसित करना चाहते हैं । मन्द-बुद्धि वालको के लिये शिक्षा के उद्देश्य या लक्ष्य जनसाधारण की 'शिक्षा' के उद्देश्यो से भिन्न नही ठहराये जा सकते ।" सुरेन्द्र के प्रस्तुत कथन का औचित्य स्वत स्पष्ट है, फिर भी मन्द बुद्धि वालको की अपनी समस्या है । उनका विकास औसत वालक की भाँति नही माना जा सकता । अत कतिपय विशिष्ट विन्दुओ को दृष्टिगत रखकर मन्द बुद्धि वालको के लिये शिक्षा के उद्देश्य एव लक्ष्य का विवेचन समीचीन है । मन्द बुद्धि वालको के विशिष्ट सन्दर्भ मे निम्नलिखित सात विन्दुओ का शिक्षा के उद्देश्यो मे समावेश महत्त्वपूर्ण होगा

१ मन्द बुद्धि वालक को स्वावलम्वी एव उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिकता की ओर उन्मुख करना ।

२ व्यक्ति से सामाजिक एव सामाजिक से मानवीय सम्वन्धो के मूल्यो को मन्द बुद्धि वालक मे दृढ करना ।

३ उसके व्यक्तित्व की पूर्णता को प्रकट करना एव उसे अपने आपको अधिकाधिक उपयोगी वनाने के लिये प्रोत्साहित करना ।

४ शारीरिक स्वास्थ्य एव आर्थिक सम्पन्नता की ओर अग्रसर करना ।

५ व्यावसायिक विषयो मे कुशल वनाना जिससे वढते सामाजिक परिवर्तन मे अपने को समजित करने की क्षमता उत्पन्न हो सके ।

६ अवकाश का सदुपयोग, सुरक्षा, सम्प्रेषणीय क्षमता एव मानसिक स्वास्थ्य वनाये रख सकने योग्य वनाना ।

७ परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करने की योग्यता उत्पन्न करना।

उपर्युक्त वर्णित उद्देश्यो के आधार पर पाठ्यक्रम का लक्ष्य निर्धारित करने से पूर्व शिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालको के लक्षण जानना आवश्यक है। मन्द बुद्धि वालक औसत वालको से मानसिक आयु मे कम ही होगे। शरीर के विकास के सम्बन्ध मे यह अपवाद हो सकता है। कतिपय मन्द बुद्धि वालक शारीरिक आगिक, सक्रियता, ऊँचाई, भार आदि मे औसत से अधिक हो सकते है। सामाजिक दृष्टि से भी ये परिपक्व नही होते। भाषा, गणित, विज्ञान या कला आदि मे इनका विकास मन्द होता है। अत मन्द बुद्धि वालको के लक्षणो का स्पष्ट विवेचन दुष्कर हे।

मन्द बुद्धि वालक के लक्षण

अधिकाश मन्द बुद्धि वालक औसत छात्रो के आसपास की वुद्धि लब्धि अकन सीमा मे आते है। प्राय वे औसत वालको की ही भाँति उस कार्य को करने का प्रयास करते है, जिस कार्य का उन्हे अधिक अभ्यास हो गया है। अत उनका वर्गीकरण करके अध्ययन करना समीचीन होगा।

शिक्षण एव सामाजिक दृष्टि से मन्द बुद्धि वालको के लिये अलग से कोई भी विभाजन रेखा नही है। "वालक का अनुभव, सूझ, व्यवहार, सामाजिक समजन की शक्ति एव अर्जित ज्ञान की संयोजना ही उसे प्रतिभा-सम्पन्न औसत एव मन्द बुद्धि वर्गो मे विभक्त करती है।" चन्द्रपति के प्रस्तुत कथन के आधार पर मन्द बुद्धि वालको के लक्षण को सार रूप मे निम्नलिखित प्रकार से वर्णित किया जा सकता है —
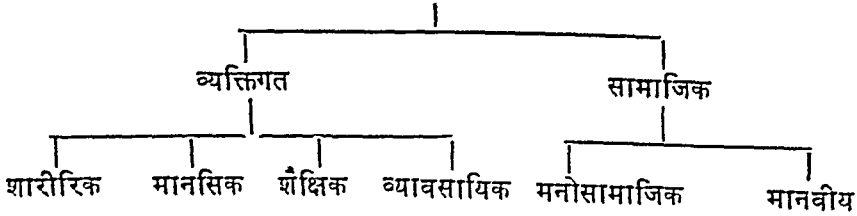
(अ) व्यक्तिगत

साधारणत मन्द बुद्धि वालक औसत छात्र से भिन्न नही होता, परन्तु वातावरण के कारण व्यक्तिगत विभिन्नता रहती है। सफलता और असफलता का वालक पर व्यक्तिगत प्रभाव सहज देखा जा सकता है। सफलता वालक को प्रवृत्ति की ओर एव असफलता पलायन की ओर अग्रसर करती है।

शारीरिक—१ घर का अत्यधिक निम्न स्तर वालक के शारीरिक विकास को अवरुद्ध कर देता है एव घर की अस्वास्थ्यकर अवस्थाओ के कारण वह रोगी और निरुत्साही दिखाई देता है। शारीरिक शैथिल्य कौशल कार्यों को सीधे प्रभावित करता है।

२ दृष्टि दोष, कर्ण दोष, आगिक सचालन का मस्तिष्क से ताल-मेल न बैठा पाना एव प्रत्येक कार्य मे औसत अभ्यास से अधिक अभ्यास ग्रहण करने पर भी भूल करना ऐसे वालक की मुख्य त्रुटियाँ है।

मानसिक—१ प्राय विद्यालयीय कार्यो मे पिछड़ना, स्मृति अपरिपक्वता, पहचान एव शब्द भण्डार का अभाव, प्रमुख लक्षण है। विस्मृति भी इसी श्रेणी मे आती है।

२ औसत बालक से मौखिक एव लिखित मानसिक जाँच मे बुद्धि लब्धि अक का ५० से ८० तक रहना। धारणाओं का स्पष्ट न होना, सामान्यीकरण न कर पाना, कल्पना एव रचनात्मकता का अभाव, या अन्य मानसिक क्षमता से सम्बन्ध रखने वाले कार्यों मे पिछडना।

मानसिक विकास की गति औसत छात्र से मन्द रहना, उसमे बाधा अनुभव करना। किसी भी नये शब्द के जानने या सीखने मे सामान्य से अधिक आवृत्ति का होना, प्रश्न के उत्तर का विलम्ब से दिया जाना आदि है।

शैक्षिक—१ शिक्षण योग्य अवस्था के मन्द बुद्धि बालक शारीरिक आयु की अपेक्षा मानसिक आयु मे एक से दो वर्ष तक पिछडते है। प्राय ६ वर्ष की अवस्था मे प्रवेश के समय उनके लिये लिखना, पढना, सामान्य गणित के प्रश्न निकालना कठिन होता है।

२ शैक्षिक उपलब्धि मे साधारण स्तर की योग्यता अपने पूर्ण शिक्षण काल मे प्राप्त कर पाते है। स्वाध्याय के प्रति उनमे रुचि नही होती।

व्यावसायिक—१ प्रौढ स्तर तक जाते जाते मन्द बुद्धि बालक आजीविकोपार्जन कार्यों एव शारीरिक श्रम मे सम्बन्धित स्थूल कौशल परक कार्यों को रोकने मे सक्षम हो जाते हैं। फिर वे साधारण श्रमिक के रूप मे जीवन यापन आरम्भ करते है, यथा, घर के सामान की देखभाल, वस्तुओ का लाना ले जाना, लकडी काटना, वस्त्र प्रक्षालन, उन्हे ढग से रखना आदि।

(आ) सामाजिक

सामाजिक प्राणी के रूप मे आने वाले व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह समाज मे अपने को समजित कर सके। मन्द बुद्धि बालक के लिए समाज और भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थल है, जिसमे उसमे समाज से सरक्षण और निर्देशन दोनो चाहिये।

मनो-सामाजिक लक्षण—१ भावनात्मक दृष्टि से मन्द बुद्धि बालक मे सामाजिक मूल्यो के प्रति विश्वास, धारणा या सम्मान का स्तर वह नही हो सकता जो औसत या प्रतिभाशाली बालक मे है।

२ समाज के द्वारा स्वीकृति प्राप्त न होने से मन्द बुद्धि बालक भग्नाशा ग्रस्त हो जाता है जिससे प्राय असन्तोष एव असहनशील अवस्था विकसित हो जाती है।

३ वह व्यवहार की दृष्टि से समाज की भावनाओ को समझने मे असमर्थ रहता है एव सामाजिक मूल्यो से अपरिचित रहता है।

मानवीय—१. अपने कार्यो से मानवीय मूल्यो को प्रभावित करने की क्षमता इसमे नही होती। परन्तु समाज से यह आशा की जाती है कि वे मानवीय मूल्यो की सीमा मे मन्द बुद्धि बालको को अवश्य ले।

२ मन्द बुद्धि बालक शारीरिक सुरक्षा, भोजन, वस्त्र, आवास एव दैनिक प्राकृतिक कार्यों की पूर्ति से ऊपर उठ कर अपने मन्द बुद्धि बालको के साथ समान व्यवहार कर सके। जबकि मन्द बुद्धि बालक का व्यवहार मानवीय सीमा मे नही के समान उभरता है। अत उन्हे अस्पतालो, मेले, उत्सवो, पर्वो, आयोजनो, तीर्थो, त्यौहारो आदि पर ले जाया जाये जिससे इनमे मानवीय सम्बन्धो का विकास हो।

पाठ्यक्रम

मन्द बुद्धि बालको हेतु पाठ्यक्रम निर्माण मे ध्यातव्य विन्दुओ के अन्तर्गत निम्न-लिखित महत्त्वपूर्ण अवस्थाएँ है —

१ मन्द बुद्धि बालक का व्यक्तित्व, घर एव वातावरण ।
२ मन्द बुद्धि बालक का वर्तमान वौद्धिक स्तर ।
३ सीखने की गति एव वौद्धिक स्तर का विकास ।
४ अभ्यास एव प्रयास के प्रकार एव सीखने मे उपलब्धि का स्तर ।
५ मानसिक स्तर (क) मन्द बुद्धि, (ख) शिक्षण योग्य मन्द बुद्धि, (ग) प्रशिक्षण योग्य (घ) सर्वथा मन्द बुद्धि ।
६. सूचना एव जानकारी ।
७ नागरिकता का विकास एव सामाजिक समजन ।
८. व्यावसायिक कुशलता एव आत्म निर्भरता का पक्ष ।
९. पर्यावरणीय प्रभाव ।

पाठ्यक्रम निर्माण के आधार विन्दुओ को दृष्टिगत रखकर विन्दु पाँच मे वर्णित मानसिक स्तर के अनुसार पाठ्यक्रम का विभाजन निम्नलिखित ढग पर उचित प्रतीत होता है —
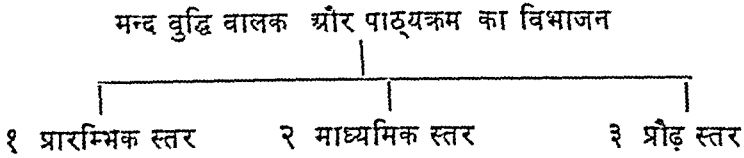
प्रारम्भिक स्तर—सर्वथा मन्द बुद्धि बालको के लिये पाठ्यक्रम की सरचना करते समय स्वभाव निर्माण के पक्ष पर ही अत्यधिक वल दिया जाना चाहिये जिससे बालक अपनी दैनिक एव प्राकृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति स्वय कर सके । सर्वथा मन्द बुद्धि वालक भोजन, स्नान, वस्त्र पहनना, शौच एव मूत्र त्याग तक मे दूसरे व्यक्ति पर आश्रित रहता है अत इसे चिकित्सा एव प्रशिक्षण के माध्यम से कुछ अभ्यास कराने का प्रयास अवश्य किया जाये जिससे बालक स्वय अपने को सम्भाल सके, उसमे एक विश्वास उत्पन्न हो सके ।

माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम—माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षण योग्य एव शिक्षण योग्य दोनो प्रकार के बालक आ जाते है । प्रशिक्षण योग्य वे बालक हैं जो अपने शरीर, खानपान, वस्त्र, आवास या छोटे-मोटे कार्य करने की योग्यता स्वय रखते हो । उन्हे शारीरिक प्रशिक्षण प्रदान करने मे अभ्यास और आवृत्ति की आवश्यकता होती है । ऐसे लोगो के लिए स्थूल शारीरिक श्रम विषयक कार्यो का नियोजन किया जा सकता है ।

गोल्ड स्टेइन एव सेइगले ने बहुविमा पाठ्यक्रम की उपयोगिता को लक्षित करते हुए दस विन्दुओ का उल्लेख किया है —

गोल्ड स्टेइन एव सेइगले के वहु-विमा पाठ्यक्रम विन्दु

१ नागरिकता
२. घर एव परिवार
३ वस्तु एवं द्रव्य की व्यवस्था
४. शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य

५ सामाजिक समायोजन
६ सम्पर्क
७ अवकाश
८ व्यावसायिक कुशलता
९ सुरक्षा
१० यात्रा

बहु-विमा पाठ्यक्रम का उल्लेख करने के पश्चात् गोल्ड स्टेइन एव सेइगले ने परम्परित पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम को विस्तार दिया है जिसका विषय क्रमानुसार विभाजन इस प्रकार है —

१ गणित
२ ललित कला
३ भाषा
४ शारीरिक शिक्षा
५ प्रायोगिक कार्य
६ विज्ञान
७ सामाजिक सह-सम्बन्ध

उपर्युक्त पाठ्यक्रम बिन्दुओ को प्रौढ पाठ्यक्रम के सन्दर्भ मे भी लिया जा सकता है।

प्रौढ स्तर पाठ्यक्रम—प्रौढ पाठ्यक्रम से तात्पर्य है धीमी गति से सीखने वाले ऐसे बालको के लिए कार्यक्रम जो औसत स्तर के बालको से कुछ ही कम होते हैं। व्यावसायिक कुशलता एव नागरिकता इनके लिए प्रमुख आधार है। (१) आर्थिक आत्म निर्भरता (२) स्वावलम्बन, (३) सामाजिक समायोजन-यह तीनो पक्ष व्यावसायिक कुशलता के अन्तर्गत सहज रूप से आ जाते है। राष्ट्रीय भावना, मानवीय मूल्य, सेवा, सहायता, सहानुभूति नागरिकता के क्षेत्र मे लिये जा सकते हैं। प्रौढ पाठ्यक्रम से तात्पर्य व्यवस्थित एव सुनियोजित पाठ्यक्रम से है जिसमे बालक स्वय अपने कार्यों का, बिना किसी पर आश्रित हुए, निष्पादन कर सके, एव समाज मे सम्मानित जीवन व्यतीत कर सके।

मन्द बुद्धि बालको के शिक्षण मे कार्यकक्ष योजना को पाठ्यक्रम का अभिन्न अग बना कर ही शिक्षण की रूप-रेखा निर्धारित करनी चाहिये। "प्रौढ पाठ्यक्रम अपने मे एक सशक्त एव ठोस व्यवस्था है, जिसे शोध एव प्रयोग के आधार पर परिवर्तित, परिवर्द्धित एव सशोधित करते रहना श्रेयस्कर होगा। अत प्रौढ पाठ्यक्रम का प्रौढ स्तर ही नही स्वय भी प्रौढ होना आवश्यक है।'- (डा. मोहन सिह मेहता)

खेल कूद एव पाठ्यक्रम

मन्द बुद्धि बालको के शिक्षण मे खेलकूद को पाठ्यक्रम के अभिन्न अग के रूप मे स्वीकार कर लेना उपयुक्त होगा। "आगिक प्रशिक्षण, आगिक नियन्त्रण, शारीरिक स्वास्थ्य, योग्यता एव बुद्धि और शरीर का समायोजन मन्द बुद्धि बालक यदि खेल-कूद के माध्यम साधारण स्तर पर भी प्राप्त कर सके तो वह लाभप्रद सिद्ध होगा।" (च०मो० कृष्णात्रेयी) इस प्रकार बालक अपने साथी बालको के सम्पर्क मे आयेगा एव उसका व्यवहार बढेगा, बालक समस्याओ के निराकरण का मार्ग खोजने मे भी समर्थ होगा।

"मनोरजन, सक्रियता, तत्परता, निर्णय एव सहयोग जैसी उपलब्धियाँ खेल-कूद के माध्यम से बालक को प्राप्त होती है। खेल-कूद तो मन्द बुद्धि के लिए वरदान है।"

(वी० के० मिश्र)। पाश्चात्य खेल-कूद मे फुटवाल, वास्केटवाल, वालीवाल, वैडमिण्टन एव भारतीय खेलो मे खो-खो, कवड्डी, जैसे समूह खेल ठीक है। व्यक्तिश खेलो मे जिमनास्टिक्स, तैरना, दौडना, निशाना लगाना, भारोत्तोलन जैसे खेल उपयुक्त हैं। कुछ व्यायाम, जिनका बुद्धि एव समूह के साथ सम्बन्ध है, अपनाने चाहिये। इन खेलो मे ध्वनि, ताल, गति मे एकरूपता के साथ पहचान प्रमुख है। डम्वल, लेजिम, सवाग सुन्दर व्यायाम, शारीरिक प्रदर्शन, पहचानो और पकडो, सुनो और कार्य करो इस श्रेणी मे आते है। मन्द बुद्धि वालको के लिए वे सभी खेल विधाए स्वीकार की जा सकती हैं, जो औसत वालको के लिए आवश्यक है।

विद्यालय और मन्द बुद्धि वालक की शिक्षा

"विद्यालय सचेतनापूर्वक निर्मित वह नियन्त्रित वातावरण है, जहाँ वालक सुनिश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार, सुनिश्चित अवधि मे सुनिश्चित स्तर को प्राप्त करता है। उसे सामाजिक समायोजन, व्यक्तित्व के विकास, राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के अतिरिक्त आत्मनिर्भरता एव मानवीय मूल्यों की शिक्षा मिलती है। यहा वालक जीवन को जीने योग्य ही नही वनाता अपितु जीवन को उपयोगी एव सार्थक भी वनाता है।"

(ओम प्रकाश गौड)

शिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालक साधारण विद्यालयो मे शिक्षा ग्रहण कर सकते है। भारत मे आज औसत स्तर के वालको को भी विद्यालयो मे प्रवेश की सुविधाए नही हैं। प्रवेश सर्वथा नही मिल रहा है। ऐसी स्थिति मे विशेष अध्यापको का नियोजन एव विद्यालयों का दो पारी मे चलना समस्या का निराकरण कर सकेगा। यदि मन्द बुद्धि वालको को शिक्षण सुविधाए प्रदान न की गई तो वह अपने लिए तो घातक सिद्ध होगे ही, साथ ही वह विद्यालय और समाज के लिये भी समस्या वने रहेगे।

यह भारतीय विद्यालयो का वहुत वडा दुर्भाग्य है कि समुचित बुद्धि परीक्षणो के अभाव मे, एव जो बुद्धि परीक्षण उपलब्ध हैं उन्हे प्रयोग मे न लाने के कारण, वौद्धिक दृष्टि से वालको का वर्गीकरण नही के समान हे। प्राय प्रभावशाली परिवार या व्यक्ति किसी भी बुद्धि लब्धि स्तर के वालक को विद्यालय मे प्रवेश दिलाने मे सफल हो जाते है। इसका प्रभाव यह होता है कि मन्द बुद्धि वालक शिक्षण मे पिछड जाते है। उनमे साथी वालको से समायोजन की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। दूसरी ओर जव औसत वालक स्थानाभाव के कारण विद्यालयो मे प्रवेश प्राप्त करने मे असमर्थ है तो मन्द बुद्धि वालको के लिए प्रवेश सुविधाए किस प्रकार उपलब्ध की जाएँ? अत यह उचित होगा कि कुछ विशेष विद्यालयो की व्यवस्था की जाये जिनमे मन्द बुद्धि वालको को प्रवेश प्रदान किये जाएँ। प्रयोग के आधार पर इन विशेष विद्यालयो मे मन्द बुद्धि वालको पर शोध एव निष्कर्ष भी लिये जा सकेंगे जिससे अन्य वालको को शिक्षण देने मे सुविधा होगी।

पुस्तकालय एव कार्यकक्ष

पुस्तकालय मे मन्द बुद्धि वालको हेतु मोटे मुद्रण मे चित्राकित पुस्तको का वाहुल्य होना चाहिये, जिससे वालक मे ध्यान एव एकाग्रता वढे। उसे अपने को अभिव्यक्त करने

का अवसर भी प्राप्त होना चाहिये । यह कार्य विद्यालयीय पत्रिका के माध्यम से या बाल सभाओ के माध्यम से सम्भव है ।

कार्यकक्ष का मन्द बुद्धि बालको के लिए विशेष महत्त्व है । "व्यावसायिकता कुशलता, दत्त कार्य का अभ्यास एव समस्या समाधान के अतिरिक्त विशेष निर्देशन ग्रहण करने मे पुस्तकालय एव कार्यकक्ष वह विशेष वातावरण है जहाँ बालक सुविधा के साथ स्वत अभ्यास का स्वभाव विकसित करता है ।" (सुरेन्द्र)

विशेष कक्षाए

यदि विशेष विद्यालय निर्माण मे बाधाएँ हैं तो विशेष कक्षाओ का मन्द बुद्धि बालको के लिए विद्यालय मे प्रावधान किया जाना चाहिये, जहाँ अध्यापक मन्द बुद्धि बालको की समस्याओ का निदान कर सके, उन्हे व्यक्तिगत निर्देश दे सके । इन विशेष कक्षाओ के होने से अन्य बालको का समय नष्ट नही होगा । बालक एक निश्चित गति से अपने को विकसित कर सकेंगे और सीखने मे औसत छात्र के निकट पहुँच सकेंगे । वैयक्तिक विभिन्नता शिक्षण की अवधि को प्रभावित करती है, अत विशेष कक्षाओ की व्यवस्था युक्ति सगत है । सेमुअल ए क्रिक ने इस दिशा मे अध्ययन के उपरान्त तीन प्रकार की विशिष्ट वर्गीकृत कक्षा का उल्लेख निम्नलिखित प्रकार से किया है —
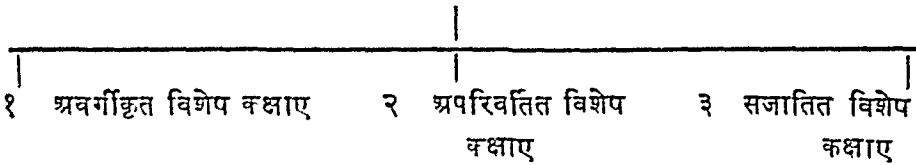
अवर्गीकृत विशेष कक्षाएँ—उपयुक्त जाँच के अभाव मे मन्द बुद्धि बालको के लिए यह कक्षाए उत्तम रहती हैं । शिक्षण एव प्रशिक्षण योग्य बालको को इन कक्षाओ मे प्रविष्ट किया जाये । विशेष ध्यान देने की यहाँ एक ही बात है कि बीस से अधिक बालक कक्षा मे न हो ।

अपरिवर्तित विशेष कक्षाएँ—इन्हे अणकालिक कक्षाओ की सज्ञा दी जा सकती है । जिन विद्यालयो मे मन्द बुद्धि बालको की सख्या कम है वहाँ यह व्यवस्था लाभकारी होगी । प्राय शिक्षण की दृष्टि से इन कक्षाओ मे कठिनाई है क्योकि प्रत्येक स्तर का मन्द बुद्धि बालक इनमे प्रवेश ले लेता है जिन्हे विभिन्न मन्द बुद्धि स्तरो पर एक साथ शिक्षण देना अध्यापक के लिए दुष्कर है । विशेषज्ञ अध्यापको के अभाव मे इस विधि का सहारा लिया जाता है ।

सजातित विशेष कक्षाएँ—सजातित कक्षाओ मे प्राय बालक एक ही प्रकार की बुद्धि लब्धि एव शारीरिक आयु के होते है । समस्या, व्यवहार, सीखने की गति एव अभ्यास की अवधि इन कक्षाओ मे समान होती है । अत अध्यापक के लिये यह सर्वाधिक प्रभावी कक्षा व्यवस्था है । शिक्षाविदो ने सजातित विशेष कक्षाओ की स्थापना पर सर्वाधिक बल दिया है । इस व्यवस्था मे अध्यापन क्रिया निश्चित रहती है जिसके अच्छे परिणाम निकल सकते है । निदेशन की समरूपता छात्रो मे उत्साह उत्पन्न करती है ।

विवेचन

शिक्षा-शास्त्रियो ने अवर्गीकृत एव अपरिवर्तित विशेप कक्षाओ को मन्द बुद्धि वालको के शिक्षण हेतु सस्तुति प्रदान नही की है। अवर्गीकृत कक्षाएँ शिक्षण की दृष्टि से अध्यापक के समक्ष जटिल समस्याएँ उत्पन्न कर देती है। वाचन एव लेखन की विभिन्न कठिनाई वाले, धीमी गति से सीखने वाले, स्वभाव निर्माण के अन्तर्गत आने वाले, व्यवहार-समस्याओ वाले अनेको मन्द बुद्धि वालक सम-स्तर पर शिक्षित नही किये जा सकेंगे।

परिवर्तित कक्षाओ मे सख्या कम होती है एव वालक अल्प-काल के ही लिये अध्यापक के सम्पर्क मे आता है। सजातित कक्षाओ मे वालक की वौद्धिक मन्दता का स्तर (शारीरिक एव मानसिक आयु) एकसा रहता है। अत अध्यापक को प्रथम दो विशेप कक्षाओ की अपेक्षा अधिक सुविधा है। आवश्यकतानुसार परिभ्रामी अध्यापक भी नियुक्त किये जा सकते हैं।

विशेष कक्षाओ के वर्गीकरण का आधार

आचार्य विनोवा भावे के शब्दो मे, "प्रत्येक कार्य योजनावद्ध हो, विना योजना के कार्य एव विना कार्य की योजना अन्धकार मे दिशा खोजने के समान है।" शारीरिक परीक्षण, बुद्धि लब्धि, मनोवैज्ञानिक परीक्षण, पारिवारिक पृष्ठभूमि, व्यवहार, अभिवृत्ति, अभिरुचि एव आगिक योग्यता आदि के परीक्षण पर आधारित तथ्यो को सावधानी से ध्यान मे रखकर समय, स्थान, अवधि छात्र सख्या, कार्य आदि के आधार पर कक्षाओ का वर्गीकरण समीचीन होगा।

वर्गीकरण की उपयोगिता

वर्गीकरण का प्रथम लाभ यह है कि शिक्षक शिक्षार्थियो की मनोसामाजिक पृष्ठ-भूमि से परिचित हो जाता है। वह यह भी जान लेता है कि उसे किस धरातल पर, किस मात्रा मे, किस अवस्था मे, किस विधि से, किन-किन विपयो पर, किसे शिक्षित करना है।

वर्गीकरण की उपयोगिता सक्षेप मे निम्नलिखित प्रकारेण द्रष्टव्य है :

१ अध्यापक अपनी कक्षा एव पाठ्यक्रम मे शिक्षण की दृष्टि से समायोजन कर लेता है।

२ कम सख्या होने से अध्यापक वालको एव उनकी समस्याओ से व्यावहारिक रूप मे परिचित हो जाता है।

३ वर्गीकरण की परिसीमा मे कतिपय वालक आवश्यकतानुसार शिक्षण से पूर्व चिकित्सा के लिये भेजे जा सकते है।

४ अभिभावक एव माता-पिता अपने वालक को समझने मे समर्थ हो सकते है जिससे अध्यापकीय निर्देश का पालन वे वालक से करवा सकते हैं।

५ शारीरिक एव मानसिक आयु से प्रशिक्षण योग्य वालक जिनका बुद्धि लब्धि अक ३० के आस-पास है ऐसे दस वालको की कक्षा का अध्यापक सहज भाव से अपनी कार्य योजना मे निवद्ध कर प्रभावी शिक्षा प्रदान कर सकता है।

६ अध्यापक को कम सख्या मे वालको की प्रगति का अभिलेख तैयार करने का, भावी दिशा-निर्देशन देने का एव वालको के अभ्यास की मात्रा व उनकी गति का ज्ञान हो सकता है। मूल्याकन की दृष्टि मे भी यह महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

७ आवश्यकता एव उपयोगिता के अनुसार विशेषज्ञ एव परिभ्रामी अध्यापको की सेवा ग्रहण की जा सकती है। वालक विशेष को परीक्षणाधीन दूसरे विद्यालय मे भी भेजा जा सकता है।

उपस्कर

वर्गीकरण के पश्चात् मन्द वुद्धि वालक की शारीरिक, मानसिक, आगिक योग्यता एवं समायोजन आदि का पूरा पता लग जाता है। अत कक्षाओ मे उपस्कर व्यवस्था तदनुकूल करने मे थकान एव आवृत्ति कम होगी। कक्षा उपस्कर जितने सुविधाजनक होगे उतना ही शिक्षण कार्य सरल होगा। "सीखने मे वातावरण का महत्त्व है तो उससे भी अधिक महत्त्व उत्तम एव सुविधापूर्ण उपस्कर का है, जो वालक के ध्यान एव अभ्यास को विकसित कर गति देते हैं।" (सुरेन्द्र)

शिक्षण संभार

औसत वालक हेतु विद्यालय मे जो उपस्कर चाहिये वही मन्द वुद्धि वालको के लिये भी उचित है। शिक्षण सभार की उपयोगिता व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर ही सर्वाधिक है। मन्द वुद्धि वालक की एक विशेष अवस्था है अत सामान्य शिक्षण सभार उसे ज्ञानार्जन मे लाभ प्रदान नही कर सकेगा।

संज्ञान एवं कौशल परक शिक्षण सभार

चाक्षुप, श्रावणिक तथा स्वाद एव घ्राण से सम्वन्धित एव स्पर्शज प्रभाव सज्ञान को सीधा प्रभावित करते हैं। अत शिक्षण सभार जव ज्ञानेन्द्रियो को सक्रिय कर देते हैं तो शिक्षण प्रक्रिया स्वाभाविक वातावरण मे आ जाती है। "मौखिक विचार, मात्र श्रावणिक अवस्था है, शिक्षण सभार विचार को आकृति प्रदान करते हैं जिससे सीखने मे सुगमता होती है।" (विद्या)

शिक्षण सभार से शिक्षण सिद्धान्तो को वल मिलता है। ज्ञात से अज्ञात एव मूर्त से अमूर्त की ओर समवाय एव निश्चित शिक्षण सभार प्रस्तुत कर ही जाया जा सकता है। आनुक्रमिक शिक्षण मे शिक्षण सभार अर्थ, अवस्था एव अन्तर की रिक्तता को पूर्ण करते हैं, वालक मे उद्दीपन की अवस्था को विकसित करके अध्यापक को अनावश्यक आवृत्तियो से वचाते हैं। विपयवस्तु का ज्ञान प्राप्त करने मे इनसे वालक स्वत स्फूर्त दृष्टिगोचर होगे। अत स्पष्ट है कि शिक्षण सभार प्रभावी ढग से प्रस्तुत किये गये हैं। वालक अपनी योग्यता को ज्ञान से कौशल और कौशल से ज्ञान मे स्थानान्तरित कर सकता है। इससे क्रमवद्ध अध्ययन मे भी सहायता मिलती है। अर्जित ज्ञान को पुष्ट करने के लिये भी शिक्षण सभार सीखने मे महत्त्वपूर्ण योग देता है।

शिक्षक

मन्द वुद्धि वालको को शिक्षा प्रदान करने मे प्रशिक्षित एव दक्ष अध्यापको का ही नियोजन किया जाये। अध्यापक मे धैर्य, सहानुभूति, उत्साहवर्धन, सहयोग एव अपनत्व की भावना होनी चाहिये। वह शिक्षण सभार के उचित प्रयोग मे भी दक्ष होना चाहिये। निर्देशन का पक्ष अध्यापक मे सवल होना चाहिये। वह उचित अवसर पर उचित निर्देशन

प्रदान करने मे दक्ष हो । निर्देशन मे अभाव मे वालक भटक जाते है । यदि सम्भव हो सके तो अध्यापक को उपचारात्मक विधियो का भी ज्ञान हो, जिससे अनायास ही उत्पन्न समस्याओ का समाधान खोजा जा सके । अध्यापक मे अपने व्यवसाय एव वालको के प्रति समक्ति अवश्य हो ।

शिक्षक का समाज मे और समाज का शिक्षक मे विश्वास होना अत्यन्त आवश्यक है । "शिक्षण योग्य वालको को प्रयास, लगन, अभ्यास एव श्रम के माध्यम से शिक्षित करने वाले अध्यापक अच्छे परिणाम प्रस्तुत करने मे सफल होते है ।" (सुशील विहाणी)

शिक्षण पद्धति

"प्रत्येक शिक्षण पद्धति अपने मे पूर्ण और अपूर्ण दोनो ही हैं । वालक जिस पद्धति से भी समझ जाये वही पूर्ण पद्धति है । मन्द बुद्धि वालक को पठन का ज्ञान देने की अपेक्षा, उसे सामाजिक समायोजन की शिक्षा देना अधिक हितकर है । मान्तेसरी शिक्षण पद्धति, खेल पद्धति, सीखो और कमाओ एव वुनियादी शिक्षण पद्धति इन वालको के अधिक निकट है ।" (ओम प्रकाश गौड)

बुद्धि-लब्धि अक को ध्यान मे रखकर ही शिक्षण पद्धति को अपनाना चाहिये परन्तु इसके साथ ही वालक के शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य को भी ध्यान मे रखना चाहिये । शिक्षण मे दवाव की विधि अत्यन्त हानिकारक होती है ।

वर्तनी, वाचन और लेख की शिक्षा सप्रेपणीय आधार पर दी जाये तो उत्तम है । कक्षा का उत्तम वातावरण भी एक अच्छी पद्धति है । नया ज्ञान एव सीखने की अवस्थाएँ वह शिक्षण सभार के माध्यम से प्रदान करे । भली प्रकार से गठित, क्रमवद्ध शिक्षण एक तारतम्य लिये हुये हो । जजीर मे कडी की भाँति एक कडी दूसरी से जुडी हुई हो ।

विभिन्न उद्योग कार्यो मे उपकरणो का उचित प्रयोग, चालन, देखभाल एव अवेक्षा प्रारम्भिक स्तर पर ही कृषि एव वागवानी जैसे कार्यो के माध्यम से आरम्भ कर देनी चाहिये । व्यावसायिकता के शिक्षण हेतु शिक्षण पद्धति मे अभ्यास एव ध्यान सर्वाधिक कार्य करते है । सर्वोत्तम शिक्षण पद्धति ही सर्वोत्तम वातावरण प्रस्तुत करती है । व्यावसायिकता की दृष्टि से चौदह वर्ष की शारीरिक आयु के वालक को आजीविका विषयक उद्योगो के माध्यम से पढाना उचित है ।

शिक्षण योग्य वालक एव उपचार

पूर्व प्राथमिक स्तर से ही उपचारात्मक अवस्था को विकसित करना शिक्षण योग्य मन्द-बुद्धि वालको के लिये उचित है । प्रारम्भिक अवस्था मे ही वालक आगिक शक्ति को विकसित करता है । प्राय अत्यन्त साधारण सामाजिक-आर्थिक वर्ग से आने वाले वालक शिशु अवस्था मे शिक्षण प्राप्त करने मे असमर्थ रहे हैं । अत उन्हे सम्पन्न परिवार के वालको मे अधिक अभ्यास की आवश्यकता होगी । उपचारात्मक दृष्टि से शिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालको के लिये निम्नलिखित उपाय किये जा सकते है :—

१ सुरक्षा भावना ।
२ वालक पर उत्तरदायित्व छोडना ।
३ कार्य की परिपूर्णता के साथ विश्वास को विकसित करना ।

४ वाचन एव पठन अभ्यास की अनवरतता ।

५ साथी बालको के अधिकाधिक सम्पर्क मे लाया जाना सामाजिक समायोजन हेतु यह आवश्यक है ।

६ शारीरिक निपुणता के लिये खेल-कूद, भ्रमण आदि का अभ्यास दिया जाना ।

७ कौशल कार्यों को विकसित करने के लिये विभिन्न उपकरणो का मुक्त उपयोग करने दिया जाना ।

८ अभ्यास मे अनुभव की ओर निर्देशित किया जाना ।

९ बालक को अपने दैनिक कार्यों की पूर्ति हेतु समुचित अवसरो का प्रदान किया जाना ।

१० व्यावसायिक अभिवृत्ति की ओर उन्मुख किया जाना ।

११ शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य की साधारण जानकारी देकर बालक को अपनी व्यक्तिगत देखभाल मे प्रवृत्त करना ।

१२ विद्यालय का इन्हे सीखो और कमाओ योजना मे लगाना । इसके लिये विद्यालयीय कार्य-कक्ष मे बालको को ऐसे अवसर प्रदान किये जाएँ । उनके कार्यों को प्रदर्शन एव अन्य माध्यम से समाज-स्वीकृति हेतु प्रचारित किया जाये । प्राप्त श्रम एव आय का एक निश्चित अश बालक को मिलना चाहिये ।

१३ वाचन अभ्यास एकोच्चार विधि द्वारा दिया जाना चाहिये । ध्वनि, चित्र, चार्ट, कहानी, हरित पट एव सूत्र विधि पुस्तको को बालको के लिये उपलब्ध किया जाये । विशेष शब्दावली चयन करके छात्रो को प्रयोग के लिये दी जाये ।

१४ अस्वस्थता या बीमारी की स्थिति मे अभिभावक एव माता-पिता की देखरेख मे बालक की चिकित्सा करवाना ।

१५ विशेषज्ञो एव परिभ्रामी अध्यापको द्वारा त्रैमासिक जाँच होना जिससे बालक के विकास की अवस्थाओ के अनुसार उन्हे शिक्षित किया जा सके ।

सार संक्षेप

शिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको मे वे बालक आते हैं जिन्हे विद्यालयीय विशेष वातावरण में विशेष कक्षाओ का प्रबन्ध करके शिक्षा प्रदान की जाये ।

"मन्द बुद्धि बालको के लिए शिक्षा के उद्देश्य या लक्ष्य जन साधारण की शिक्षा के उद्देश्यो से भिन्न नही ठहराये जा सकते" । (सुरेन्द्र)

मन्द बुद्धि बालको का मानसिक, शैक्षिक, व्यावसायिक, सामाजिक एव मानवीय पक्ष औसत बालको से कम रहता हे, जबकि उनका शारीरिक विकास (ऊँचाई और भार) औसत बालको के समान ही रहता है ।

उत्तम पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको को किसी सीमा तक आत्म निर्भर एव स्वावलम्बी बनाया जा सकता है ।

विद्यालयो मे औसत छात्रो के साथ अशकालिक, या विशेष कक्षाओ की व्यवस्था करके शिक्षण सुविधाए प्रदान की जाएँ । विशेष विद्यालयो का प्रावधान भी इस निमित्त रखा जा सकता है । निदानात्मक एव उपचारात्मक दोनो ही अवस्थाओ का विद्यालयो मे होना श्रेयस्कर है ।

विशेप कक्षाओ की व्यवस्था—१ अवर्गीकृत विशेप कक्षाएं, २ अपरिवर्तित विशेप कक्षाए, ३ सजातित विशेप कक्षाए।

शिक्षक अपने विपय मे निष्णात एव मन्द बुद्धि बालक की शिक्षा विपय मे प्रशिक्षित हो।

शिक्षण पद्धतियाँ वे सभी उत्तम है जिनमे बालक स्वय अभ्यास द्वारा ज्ञानार्जन प्राप्त करता है। इन्हे चौदह वर्प की अवस्था के पश्चात् व्यावसायिकता का प्रशिक्षण देना उचित होगा जिससे ये समाज पर भार न वनें

III प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालक

प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालक वह है जिन्हे नियमित विद्यालयो मे शिक्षण प्रदान नही किया जा सकता। मन्द बुद्धि बालको मे भी इनकी अवस्था धीमी गति से सीखने वाले द्वितीय एव शिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालक के पश्चात् तृतीय है। चतुर्थ सर्वथा मन्द बुद्धि बालक हैं जिन्हे किसी भी प्रकार शिक्षण प्रदान नही किया जा सकता।

प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको की पहचान

प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको मे इतनी सम्भाव्य शक्ति अवश्य होती है कि वे अपनी देख-भाल कर सकें, भोजन, वस्त्र एव अन्य प्राकृतिक कार्यो से निवृत्त हो सकें, एव अपनी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति अभ्यास से कर सकें।

— प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको का बुद्धि लब्धि अक २० और ५० के मध्य रहता है।

— वे निर्दशित व्यवस्था के अन्तर्गत साधारण शैक्षिक कौशल अर्जित कर सकते हैं, जिसमे सुरक्षा, क्षति न होने देना, जैसी प्रारम्भिक बातें आती हैं।

— निरीक्षण के आधार पर इस प्रकार के बालक अलग ही पहचाने जा सकते है।

— प्रारम्भिक अवस्था मे अवेक्षा की दृष्टि से माता-पिता या अभिभावक को ही सजग रहना पडता है, एव माता-पिता या अभिभावक की सहायता ही प्रमुख होती है।

— ये बालक घर एव पास-पडौस तक ही अपना समायोजन कर पाना सीख पाते हैं। अत्यन्त साधारण रूप मे रुपये पैसे का प्रयोग भी कर सकते हैं।

— क्षीण बुद्धि या अविकसित बुद्धि के कारण आश्रित रहने वाले बालक जिनमे तर्क, समझ, अभिव्यक्ति या पहचान अत्यन्त साधारण हो प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको की श्रेणी मे आते हैं।

मन्द बुद्धि बालको की समस्या और प्रशिक्षण योग्य बालक

भारत मे शिक्षा का विस्तार द्रुतगति से हो रहा है। शिक्षा ने प्रत्येक क्षेत्र पर सभी सम्भाव्य विपयो को स्पर्श किया है। एक और औसत छात्र तक प्रवेश पाने मे असमर्थ है, अत यह दोहरा दुष्कृत कृत्य है कि पहले मन्द बुद्धि बालको की जाच की जाये, उनका स्तर

निर्धारण हो, एवं अलग से उनके लिए शिक्षण व्यवस्था रहे ।

सम्पन्न माता-पिता या अभिभावक, यदि उनके यहाँ ऐसी स्थिति का कोई बालक है, तो उसके लिए अतिरिक्त व्यवस्था स्वय कर लेते हैं । गरीब घरो से आने वाले ऐसे बालक नग्न या अर्द्धनग्न घूमते-फिरते कभी नगरो मे, तो कभी शहरो मे, आ जाते है । इन्हे न शौच स्थान का पता होता है, न ही अपनी चेतना का । जयपुर स्टेशन से बाहर निकलते ही ऐसे दो चार बालक घूमते मिल सकते है । इनमे से कुछ ऐसे है, जो मागने लगे हैं । सम्भव है, भूख ने इन्हे यह प्रशिक्षण दिया है । भारत मे धार्मिक एव सार्वजनिक स्थानो पर भी ऐसे बालकों को देखा जा सकता है ।

साधारणत प्रशिक्षण योग्य बालक होना समस्या नही है । समस्या यह है कि भारत मे अभी ऐसे वैज्ञानिक मानकीकृत जाच-पत्र या बुद्धि-मापक नही है और यदि हैं तो वे दुर्लभ हैं और सुगमता मे उनकी व्यवस्था नही की जा सकती । इस अभाव मे विद्यालय मे बैठे प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालक अध्यापक के ध्यान मे नही आते । प्रजातान्त्रिक दृष्टि से शिक्षा इनका अधिकार है, अत शिक्षाविदो एव राज्य को अधिक नही तो नियमित विद्यालयो मे इनके लिए व्यवस्था कर देनी चाहिये जिससे एक वर्ग स्वाश्रयी हो सके ।

मनोकायिक कारण एव लक्षण

अहम् या स्व निरति का कुविकसित या अतिविकसित होना, स्वय एव वातावरण से सघर्ष, माता-पिता, अभिभावक, परिवार के अन्य सदस्य एव साथी बालको द्वारा उपेक्षा, मन्द बुद्धि का मनोकायिक कारण है, जिसके फलस्वरूप बालक से अन्तर अनुशासिक नियन्त्रण एव अन्योन्याश्रित अवस्थाए समाप्त हो जाती है । बालक सामाजिक स्वीकृति के अभाव मे विक्षिप्तावस्था तक को प्राप्त कर लेता है । प्राय मस्तिष्क मे चोट से ऐसा होता है ।

— मनोकायिक कारण बालक मे आत्मकामिक प्रवृत्ति को विकसित कर देते है । सम्बोधी अवस्थाओ से नियन्त्रण समाप्त हो जाता है । निरर्थक रूप मे अत्यधिक क्रियाशील रहना, आना-जाना, उठना-बैठना आदि क्रियाए रहती है ।

— अवधान की अस्थिरता मे अपने निर्णय पर सन्देह की उत्पत्ति हो जाती है । जैसे "गुड फ्राइडे किस वार को आयेगा" कथन मे उचित अनुचित निर्णय विषयक निरोध शक्तिया समाप्त हो जाती है । बालक शीघ्र निर्णय देने मे बाधा अनुभव करता है ।

— मस्तिष्क पर आघात से प्रेरण क्षमताए समाप्त हो जाती है या आगिक एव मानसिक सम्बन्ध विच्छेद हो जाते है । बालक देखते हुए भी दुर्घटना से नही बच सकता । मानसिक नियन्त्रण के अभाव मे क्रियात्मकता एव रचनात्मकता नष्ट हो जाती है, जिससे हाथ पैर मानसिक निर्देश का सप्रेषण ग्रहण करने मे असमर्थ रहते हैं ।

— प्रतिबोधात्मक शक्ति के अभाव मे घटना को गेस्टाल्ट के अनुसार सम्पूर्ण मे अनुभव न करके अशो मे ग्रहण करते है ।

— उत्तरदायित्व से पलायन, व्यवहार मे अतिव्यापकता एव परिणाम मे निराशा ।

वालक का कार्य के लिए मना कर देना, जैसा कहा है उसके विपरीत करना या फिर घृणा और अवहेलना की स्थिति मे आ जाना ।

प्रशिक्षण केन्द्र

प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालको के लिये विद्यालय की कल्पना से परे व्यावसायिकता को प्रतिविकसित करने वाले प्रशिक्षण केन्द्रो का औचित्य विचारणीय है । राज्य या स्वय सेवी सस्थाओ के तत्वावधान मे प्रशिक्षण केन्द्रो की व्यवस्था की जानी चाहिये । स्नातक या स्नातकोत्तर शिक्षा स्तर पर मन्द बुद्धि वालको के शिक्षण हेतु विशेष पाठ्यक्रम शिक्षको के लिये होने चाहिये ।

कार्य कक्षो मे अध्यापक के अतिरिक्त कार्य सहायक एव उद्योग शिक्षक हो, जो इन वालको को कुछ व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान कर सकें, जिससे यह स्वय-सहायता, आत्म-निर्भरता एव बुद्धि और हाथ मे समायोजन कर सके । मस्तिष्क के नियन्त्रण मे आगिक सचालन का अभ्यास अच्छे प्रशिक्षण केन्द्र मे ही सम्भव है ।

इन प्रशिक्षण केन्द्रो मे वालको की सुविधा के लिये यातायात सुविधा रहनी चाहिये जिससे आवासीय वालको के अतिरिक्त स्थानीय अन्य वालको को भी लाया और पहुँचाया जा सके । कार्य कक्ष मे अधिकतम प्रवेश सख्या २० होनी चाहिये । शिक्षण सभार एव अन्य उपस्कर सुविधापूर्ण होने चाहिये ।

प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालको हेतु सप्त सूत्री कार्यक्रम

१ नियमित विद्यालयो मे अतिरिक्त व्यवस्था ।
२. अध्यापको का विशिष्ट प्रशिक्षण ।
३. प्रशिक्षण योग्य अधिकतम स्तर को स्पर्श करने वाला पाठ्यक्रम ।
४. घर, पास-पडौस या व्यावहारिक समायोजन का न्यूनतम उत्तरदायित्व ।
५ निजी सस्थाओ को प्रोत्साहित करके उनकी इस क्षेत्र मे सेवाओ का नियोजन ।
६ राज्य स्तर पर एक विशिष्ट विद्यालय की स्थापना ।
७ मूल्याकन इकाई निश्चित हो, जिससे इन वालको की सेवाओ का श्रम के रूप मे नियोजन हो सके ।

पाठ्यक्रम

प्राकृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति, आगिक प्रशिक्षण, स्वय सहायता, स्वय अवेक्षा, पहचान, ध्यान, साधारण उपकरणो का प्रयोग, प्रतिबोध, स्मरण, समायोजन, आर्थिक कुशलता विषयक साधारण पक्षो पर आधारभूत पाठ्यक्रम निर्मित किया जाये जिससे प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालक अपनी शक्तियो का अधिकतम उपयोग कर सके ।

शिक्षक

प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालको को शिक्षित करने हेतु विशेष प्रशिक्षित अध्यापको की ही सेवाएँ ली जाएँ । शिक्षक मे वह सभी विशेषताएँ होनी चाहिये जो औसत शिक्षक मे होती हैं । सजग एव क्रियाशील अध्यापक अच्छे परिणाम लाने मे सफल होते हैं । अत अध्यापक के पास वालक को समझने, निदानात्मक एव उपचारात्मक प्रयोग के लिये यथेष्ट अवसर हो ।

— प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको का वर्गीकरण भी अपना महत्त्व रखता है। उसी के अनुसार उद्योग, संगीत, कला, नृत्य, मनोरजक, खेलकूद आदि के अतिरिक्त, साधारण गणित, पढना, लिखना सिखाने मे भी शिक्षक निपुण होना चाहिये।

— शिक्षक को पाठ्यक्रम एव प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको का यथेष्ट ज्ञान हो। प्राय: अध्यापक पूर्ण प्रतिफल न मिलने से निराश हो जाते है। शिक्षक के लिये यह मनोवृत्ति समीचीन नही जान पडती। यदि आंशिक भी सफलता मिलती है तो वह सराहनीय है।

— "शिक्षक मे अन्तर्दृष्टि होनी चाहिये कि वह किस सीमा तक बालको से परिणाम की अपेक्षा कर सकता है, बालक के अधिकतम विकास के लिये अध्यापक सूझ एव धैर्य वाला होना चाहिये। वह स्वय भी उद्योग कार्यों मे दक्ष हो तो उत्तम है।" (शिक्षा सन्त स्वामी केशवानन्द)

— प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको को शिक्षित करने वाले शिक्षक मे निर्देशन व परामर्श देने की सर्वाधिक क्षमता होनी चाहिये। शिक्षक के लिये किसी भी मन स्थिति के बालक से बातचीत करके वांछित जानकारी या सूचना प्राप्त कर लेना या देना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है।

— अनुवर्ती अभ्यास के रूप मे जब तक आंशिक अभ्यास का अनुवर्तन नही होता रहेगा, परिणाम हितकर सम्भव नही हैं। शिक्षक अनुवर्ती अभ्यास को यथावत् बनाये रहे एव साप्ताहिक या पाक्षिक प्रगति का अकन भावी निर्देशन के लिये एकत्रित करें।

प्रशिक्षण प्रवेश

प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको को प्रवेश देते समय बुद्धि-लब्धि अक को मुख्यत दृष्टि के अन्तर्गत रखना समीचीन है। मिनीसोटा पूर्व-प्राथमिक मापक या स्टेनफोर्ड बिने का बुद्धि परीक्षण परख-पत्र (भारतीय स्थितियो मे यदि सम्भव हो तो) लिया जा सकता है। इससे प्रशिक्षण प्रवेश मे सुविधा होगी। शारीरिक आयु की दृष्टि से सात या आठ वर्ष का बालक सामान्यत प्रवेश सीमा मे है। मानसिक आयु की दृष्टि से इस अवस्था मे बालको का बुद्धि लब्धि अक २० या इससे ऊपर होना अपेक्षित हैं।

पर्यवेक्षण के द्वारा मस्तिष्क के आंशिक नियन्त्रण पर प्रभाव को भी प्रवेश मानदण्ड के लिये स्वीकृत किया जा सकता है। साधारण स्थूल सकेन्द्रित अवस्थाओ को भी जान लेना लाभप्रद होगा।

उत्तम होगा यदि प्रवेश से पूर्व बालक की शारीरिक, मानसिक, मनोकायिक, मनोसामाजिक एव अन्य अवस्थाओ का विशेषज्ञो द्वारा परीक्षण, निदान एव उपचारात्मक निर्देशन शिक्षक को प्राप्त हो सके, जिससे अध्यापक उसे नियन्त्रित वातावरण मे अवस्थानुसार उसकी आवश्यकताओ की पूर्ति को ध्यान मे रखकर प्रवेश प्रदान कर सके।

प्रशिक्षण नियोजन

प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको के प्रशिक्षण नियोजन मे निम्नलिखित अभ्यास प्रयास प्रयुक्त किये जाएँ —

परम्परित शिक्षण योजना के साथ विशेप रूप से सरचना या गठन पद्धति को अपनाना उपयुक्त है। सरचना पद्धति के विस्तार क्षेत्र मे लिये जाने वाले प्रमुख प्रतिबोधक एवं सम्बोधी रूप एव अन्य विषय-विवेचन इस प्रकार है —
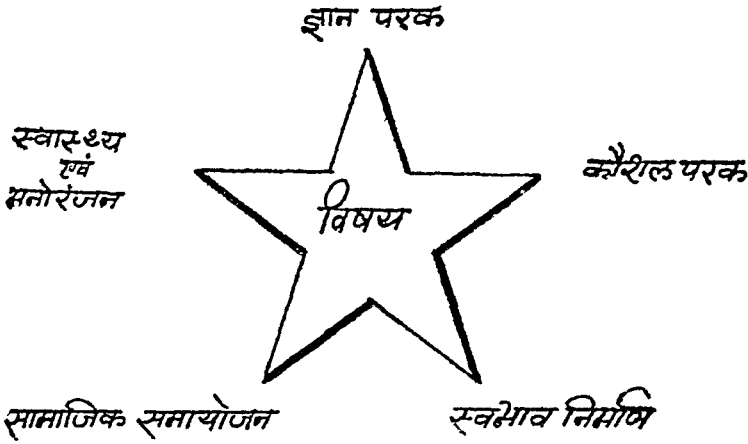
ज्ञानपरक

भापा—शब्द पढना, उनके साधारण प्रचलित प्रयोग एव उपयोगिता के अनुसार अर्थ जानना मुख्य हैं। शब्द का शुद्ध एव स्पष्ट वाचन भी इसी श्रेणी मे आता है। 'भय' (खतरा), 'सावधान', 'ठहरो', 'निजी क्षेत्र', 'प्रवेश निषेध', 'निषेध क्षेत्र', 'सडक बन्द', 'चिकित्सालय', 'डाकघर' आदि शब्दो को उपयोग की सीमा मे समझ सके। अभिव्यक्ति के साधारण वाक्य, बाजार मे वस्तुओ के भाव, नाम, घर या स्थान का पता बताना मुख्य हैं। मानसिक विकास स्मृति एव अन्तरपरक ज्ञान।

प्रारम्भिक स्तर पर समाचार पत्रो की शीर्ष पक्तियाँ पढ सकना। साधारण कविता या भाषा की अन्य साधारण पुस्तकें पढने की योग्यता का विकास।

कौशलपरक

आजीविकोपार्जन—साधारण गणित, वस्तु, आकार, रूप आदि का ज्ञान देना। विज्ञापन जान सकना। एक से अधिक वस्तुओ का मूल्य ज्ञात करना। घडी से समय का ज्ञान, दिन, माह, वर्प, आयु, आवास सस्था, दूरभाष सख्या, वस्तुओ का आदान-प्रदान, गुणा, भाग, जोड, बाकी आदि का प्रारम्भिक परिचय, बस या रेल के टिकट क्रय कर सकना, जल या विद्युत् के देयक निक्षेपित करना। साधारण माप-तोल आदि का ज्ञान व लेखा-जोखा रखना।

उद्योग—आजीविकोपार्जन हेतु उद्योग–काष्ठकला, धातुकला, कताई, बुनाई, यान्त्रिक मरम्मत केन्द्रो पर सहायक, रग करना या अन्य छोटे-बडे उद्योगो मे श्रमिक के रूप मे कार्य करने योग्य अपने को बनाना। साधारण उपयोगी कार्यो, भोजन बनाना, बर्तन मार्जन, बगीचे की देखभाल, कपडो की सिलाई आदि को प्रयत्न एव निपुणता से करना।

स्वभाव निर्माण

स्वय सहायता—प्राकृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु अपना कार्य स्वय कर

कर सकना। चोटें लग जाने या बीमार होने पर अवेक्षा, समय पर कार्य करने का अभ्यास, शौच, स्नान, भोजन, वस्त्र, घर की स्वच्छता, वस्तुओं को निश्चित स्थान पर रखना, वस्त्र प्रक्षालन आदि दैनिक जीवन के कार्यो को अपने स्वभाव मे ढाल लेना जिससे साधारण अवस्था मे दूसरो पर आश्रित न रहा जा सके।

विषय

(अ) सामाजिक समायोजन—साधारण सामाजिक शिष्टता का ज्ञान, अभिवादन, नमस्कार, प्रणाम आदि। उसे व्यवहार मे लाना, साथी बाल मित्रो के साथ आना-जाना, उठना-बैठना, पास-पडौस, परिचय, एक-दूसरे की सहायता, सामाजिक स्थानो—धर्मशाला, बाग-बगीचे, विद्यालय, पथ, डाकघर, रेलवे स्टेशन, अस्पताल आदि को अपने उपयोग के समय सामूहिक सम्पत्ति समझते हुये स्वच्छ रखना।

(आ) घर, परिवार एव समुदाय, इनकी उपयोगिता, आवागमन के साधन, साधारण विकास अवस्थाएँ, सामाजिक इतिहास की छोटी-बडी कहानियाँ व घटनाएँ, संस्कृति एव परम्पराओं के स्थूल आधार से परिचय एव उनका व्यवहार मे प्रचलन। मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारे व अन्य धार्मिक स्थान व तीर्थो के प्रति सम्मान की भावना, प्राणी मात्र के प्रति दया और सेवा की भावना।

(इ) स्थानीय व विश्व ख्याति के महापुरुष, शकराचार्य, बुद्ध, महावीर, सुकरात, ईसा मसीह, मुहम्मद साहब, गुरु नानक, गाँधी, विनोबा आदि का साधारण परिचय, इनके जीवन के छोटे-छोटे प्रेरक प्रसग, भारत के प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति आदि के नामो से परिचय।

मनोरजन एवं स्वास्थ्य

खेलकूद व गाना-बजाना—मानसिक एव शारीरिक पुष्टता को दृष्टिगत रखते हुये मनोरजन जीवन का अभिन्न अग है। अत इस स्तर पर मनोरजन को विशुद्ध स्थान दिया जाना समीचीन है। नृत्य एव सगीत बालक को प्रफुल्लित रखते हैं। सगीत वाद्य एव घोष (वाणी) दोनो ही लिये जा सकते हैं। व्यक्तिश गान और समूहगान के साथ नृत्य का भी अभ्यास दिया जाये एव साथ ही मनोरजन केन्द्रो पर भी इन्हें ले जाया जा सकता है।

स्वास्थ्य का अपना सुनिश्चित स्थान है। अत. स्वास्थ्य के साधारण नियमो से अवगत करना, उन्हे व्यवहार मे लाना, प्रात उठना, व्यायाम, खेलकूद, तैरना, अन्तर्कक्ष एव बाह्य दोनो खेलो की व्यवस्था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी।

शंका, सम्भावनाएँ एव समाधान

प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि बालको के सन्दर्भ मे कुछ शकाएँ अनवरत उत्पन्न होती रहती है कि—

क्या इन पर लगाया गया समय, शक्ति एव अर्थ उपयोगी होगा?

क्या यह सामाजिक समायोजन कर सकेंगे?

क्या यह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति, दैनिक कार्य, शौच, स्नान, भोजन आदि मे आत्मनिर्भर हो सकेंगे?

क्या साधारण नागरिक गुणो का विकास इनमे हो सकेगा?

क्या यह आजीविकोपार्जन मे स्वावलम्वी हो सकेंगे ?
क्या स्वास्थ्य के साधारण नियमो को जीवन मे अपना सकेंगे ?
क्या यह दैनिक उपयोग की वस्तुओ का ठीक ढग से प्रयोग कर सकेंगे ?

सम्भावनाएँ

प्रकट होती शकाओ को निर्मूल करती सम्भावनाओ की परिसीमा मे—"एक बालक का विद्यालय से इसलिये निष्कासन हुआ कि व्याकरण की साधारण बाते भी उसकी समझ मे नही आती थी। कुए पर लगे प्रस्तर मे गहरे निशान देखकर उसे अजेय रहस्य प्राप्त हुआ वह है 'अभ्यास'।" (चन्द्रपति) "कल्पद्रुम एव कामधेनु के सदृश अभ्यास समस्त सिद्धियो का प्रदाता है।" (रामदेव)

उपर्युक्त समस्त शकाओ का निराकरण एक अभ्यास मे निहित है। कालीदास और वैयाकरण वोपदेव इसी अभ्यास की देन हैं। निम्नलिखित ऋग्वेद का मूल मन्त्र द्रष्टव्य हैं—

अनुब्रवाणो अध्येति —(ऋक्)

"निरन्तर अभ्यास से ही मनुष्य सीखता है।" ऋग्वेद के इस कथन का सार उन सभी के लिये है जो सीखना चाहते हैं या जिन्हे सिखाना है। "करत-करत अभ्यास के, जडमति होत सुजान।" जडमति का तात्पर्य उन सर्वथा मन्द बुद्धि बालको मे है जिन्हे सिखाया नही जा सकता, परन्तु वे भी अभ्यास के माध्यम से कुछ करने योग्य हो जाते हैं।

अत सम्भावना की दृष्टि से मन्द बुद्धि बालको के शिक्षण मे सक्रिय सस्थाएँ, शिक्षक व व्यवस्था आशावान है कि मन्द बुद्धि बालको पर किया गया व्यय, समय व शक्ति निरर्थक नही जायेगी। यदि वे अपनी देखभाल प्रारम्भिक स्तर पर भी कर सके तो यह सफलता महत्त्वपूर्ण है। यदि विद्यालय स्वस्थ वातावरण उत्पन्न करने मे सक्षम हो सके तो निश्चय ही ऐसे बालक समाज मे अपनी स्वतन्त्र स्थिति बना लेंगे।

समाधान

सरचना पद्धति के माध्यम से अभ्यास की आवृत्ति बढाकर मन्द बुद्धि बालको को प्रशिक्षित किया जा सकता है। व्यक्तिश आवश्यकता, एव सामान्य आवश्यकता, दोनो को ही दृष्टिगत रखकर सरचना या सगठन पद्धति का निर्माण किया जाना चाहिये।

सामाजिक सह-सम्बन्ध सरचना

प्रौढ की प्रथमावस्था जब वह ऐसे बालक के व्यवहार मे प्रथम बार आता है। बालक के साथ अपने व्यवहार मे परिवर्तन न आने देना, इसके विपरीत बालक के व्यवहार की प्रत्येक अवस्था व परिवर्तन को स्वीकार करते रहना और उसे एक निर्दिष्ट वृत्त मे ले आना। अवस्था विशेष मे एक ही व्यवहार की अनवरतता बनाने मे सफल हो जाना। हम बालक को कुछ सिखा नही सकते, केवल वातावरण प्रस्तुत करते हैं। यही वातावरण बालक मे सामाजिक सह-सम्बन्ध को विकसित करता है।

सह-सम्बन्ध सरचना पद्धति का विशिष्ट गुण यह है कि वह एक ही अवस्था मे पुन पुन. उसी व्यवहार के अभ्यास को स्थान देता है जिससे स्थिति विशेष मे व्यवहार प्रकटीकरण परिपक्व हो जाता है। यथा, नमस्कार या अभिवादन, दूरभाष का प्रयोग,

इसके उदाहरणो मे लिये जा सकते है। सह-सम्बन्ध प्रेपण की स्थिति सामाजिक स्वीकृति पर निर्भर करती है।

वातावरणीय सह-सम्बन्ध सरचना

वातावरणीय सह-सम्बन्ध सरचना के अन्तर्गत दो प्रकार है—प्रथम, विद्यालयीय विशेष वातावरण, द्वितीय, वाह्य वातावरण। वालक कक्षा एव विद्यालय के नियन्त्रित वातावरण से वाहर निकल कर वाह्य दृष्टि के वातावरण मे अपनी स्थिति को देखता है। वह उपयोग की सार्थकता के अनुसार उसमे अनुकूलन का महत्त्व जानने लगता है।

विद्यालयीय वातावरण मे एक ओर जहाँ प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालको को वाह्य वातावरण से सुरक्षित रखा जाता है, वहाँ वाह्य वातावरण मे वालको को विद्यालयीय नियन्त्रित वातावरण मे मुक्त कर दिया जाता है। वाह्य वातावरण वालक की प्रेरक शक्तियो को विकसित करता है, जिससे सीखने मे सुविधा होती है। वालक अन्तर, दूरी, आकार, भेद, उपयोग आदि से परिचित होता है, यथा, शौच-स्थान, पुस्तकालय, सभा-भवन, खेल के मैदान आदि की जगह से परिचित होना।

शिक्षण पद्धति सह-सम्बन्ध सरचना

वालक का नैत्यक कार्य मे ढल जाना सबसे महत्त्वपूर्ण अवस्था है। प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालक की ओर से नैत्यक कार्य मे जब घर या विद्यालय निश्चित हो जाता है तो उसे शिक्षित किया जाना साधारणत सहज होता है। अध्यापक वालक को अध्ययन की ओर प्रवृत्त करे, इससे पूर्व वह निर्दशित विधि से नैत्यक कार्यो मे सही आवृत्ति का अकन प्राप्त कर ले, एव उसी के आधार पर यह भी जान ले कि कितनी अवधि मे एक अभ्यास उपयोगी सिद्ध होता है। उसी के अनुसार शिक्षण पद्धति सह-सम्बन्ध सरचना का निर्माण करके नूतन ज्ञान को प्रदान करने की व्यवस्था करे।

स्मरण रहे कि अध्यापक नैत्यक आवृत्ति परिणाम जान लेने पर भी वालक और वातावरण मे सह-सम्बन्ध की अपेक्षा अवश्य रखे। ज्ञान के अनुस्थापन मे यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विन्दु है। वालक को यदि वातावरण के फलस्वरूप अन्त करण से प्रेरणा मिलती है तो सीखने मे ध्यान का वेग अधिक वढता है। धीरे-धीरे ध्यान की अवधि कम, और वस्तु की स्थिति अधिक स्पष्ट होने लग जायेगी। इसके साथ ही वह कम समय मे अधिक वस्तुए अपने ध्यान मे लायेगा। अध्यापक इस अनुभव का वातावरणीय सह-सम्बन्ध सरचना द्वारा लाभ उठा सकता है। उपाधीयन सिद्धान्त भी वालक को अवस्था विशेष मे एक व्यवहार की ही प्रतिक्रिया देगा। सीखने मे उद्दीपक अवस्था को जितना विकसित करेगे, सीखना उतना ही प्रयासपूर्ण होगा।

प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालको के लिए आगिक अभ्यास, शिक्षण पुरोगम का प्रमुख आधार है। विकसित होते शैक्षिक साधनो एव अनुसन्धानो ने ऐसे वालको को प्रशिक्षित करने के लिए निम्नलिखित समाधान प्रस्तुत किये है

— दिन के अवेक्षा-विद्यालय, जहाँ ऐसे वालको की देख-रेख भली प्रकार हो सके।
— पूर्व–प्राथमिक शिक्षण एव स्वभाव निर्माण।
— सरक्षित उद्योग कक्ष जहाँ आगिक नियन्त्रण का प्रशिक्षण प्राप्त हो।
— सामुदायिक विद्यालय, सामाजिक समायोजन हेतु।

सार संक्षेप

१ प्रशिक्षण योग्य मन्द बुद्धि वालक—आंगिक प्रशिक्षण एव उपाधीयन के आधार पर नैत्यक कर्म करने मे सक्षम हो जाते है। इनका बुद्धि लब्धि अक २५ से ५० तक रहता है।

२ मन्द बुद्धि का कारण मनोकायिक कारण इसके फलस्वरूप वालक का अन्तर आनुशासनिक नियन्त्रण समाप्त हो जाता है। मस्तिष्क पर आघात से प्रेरण क्षमताए नष्ट हो जाती है। प्रतिवोधात्मक शक्ति का ह्रास हो जाता है।

३ आंगिक-प्रशिक्षण एव व्यावसायिक-प्रदान प्रशिक्षण की महत्ता, एव मस्तिष्क के नियन्त्रण मे आंगिक सचालन को ले आना।

४ सप्त सूत्री योजना।

५ प्राकृतिक आवश्यकताओ की पूर्ति एव आंगिक-प्रशिक्षण प्रधान पाठ्यक्रम, जिसमे सामाजिक समायोजन की भी स्थिति हो।

६ शिक्षक – प्रशिक्षित, निदेशन एव परामर्श मे निपुण एव विषय का विद्वान हो।

७ प्रशिक्षण प्रवेश से पूर्व वालक की शारीरिक, मानसिक, मनो-सामाजिक, एव अन्य अवस्थाओ का विशेषज्ञो एव विभिन्न मानवीकृत परख-पत्रो द्वारा परीक्षण।

८. प्रशिक्षण नियोजन के प्रमुख वर्गीकरण का आधार —

(क) ज्ञान परक
(ख) कौशल परक
(ग) स्वभाव निर्माण
(घ) सामाजिक समायोजन
(ङ) मनोरजन

९ ऋग् के इस मन्त्र 'अनुब्रुवाणो अध्येति' के आधार पर अभ्यास की प्रक्रिया पर सर्वाधिक वल देना।

१० विभिन्न सह-सम्बन्ध सरचना पद्धति पर वल देना जिससे एक ही प्रतिचार विभिन्न परिस्थितियो मे आये।

११. वालक मे सकारात्मक विचार के विकसन एव सामाजिक समायोजन के साथ विभिन्न कार्यक्रम, यथा सुनिश्चित अवेक्षा कक्षाए, सरक्षित उद्योग-कक्ष एव आवासीय कार्य-विद्यालय प्रशिक्षण योग्य मन्द-वुद्धि वालको के विकास हेतु प्रगतिशील प्रयास है।

* * *

४. सामाजिक समंजन और शिक्षा

I मनो-सामाजिक विकृति

व्यक्तित्व के विकास मे मनो-सामाजिक अवस्थाओ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। बालक जिस व्यवहार मे विकसित होता है, उस अवस्था का उसके मन पर अवस्था स्थिति को देखते हुए भार पडता है। मानसिक अवस्थाए प्राय व्यक्ति के व्यवहार से निर्दिष्ट होती हैं। मानसिक विचलन की अवस्था से तात्पर्य है बालक का अपने साथी बालकों, परिवार, विद्यालय या समाज मे समजन न होना।

मनो-सामाजिक विकृति का मूल कारण है कुसमायोजन। इसी कुसमायोजन को समन्वित करना अध्यापक का दायित्व है। इन्दिरा गांधी ने कहा है "बालक यह जाने कि एक की आजादी दूसरे की आजादी से सीमित है।" अत सामाजिक बोध आज की प्रमुख आवश्यकता है।

मनो-सामाजिक विकृति के कारण

मनो-सामाजिक विकृति के कारणो मे निम्नलिखित कारण स्पष्ट रूप से दृष्टव्य हैं :—

१. सामाजिक स्वीकृति का प्राप्त न होना
२ परिवार का एक पक्षीय दृष्टिकोण
३. जीवन के प्रति स्वस्थ परम्पराओ का न होना
४ अपराध के मूल को न जानकर, मात्र अपराध को ही सब कुछ मान लेना
५ प्रारम्भ मे उचित निदेश प्राप्त न होना
६ वातावरणीय प्रभाव
७ वैयक्तिक विभिन्नता के दृष्टिकोण का ध्यान मे न रखा जाना
८ बहुविकसित विचलन
९. मनोदशा एव अनाज्ञाकारिता
१० अपराध वृत्ति को सरक्षण
११ यौन शिक्षा के अभाव मे कुचेष्टाए
१२ मानसिक अस्थिरता
१३ शारीरिक रोग एव विकृतियाँ
१४ सवेदीय अस्तव्यस्यता
१५ सुरक्षा का अभाव

विकलाग शिक्षा के क्षेत्र के कार्य करने वाले विशेपज्ञो ने मनो-सामाजिक विकृति के प्रमुख तीन कारण माने हैं —

प्रथम—शारीरिक विकृति के परिणामस्वरूप
द्वितीय—मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ
तृतीय—मनोसामाजिक विकृतियाँ।

प्रथमावस्था का उल्लेख इसके पूर्व विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। यद्यपि द्वितीय एव तृतीय अवस्था का क्षेत्र मनोविज्ञान एव समाज मनोविज्ञान का है फिर भी विकास परम्परा मे विकलाग शिक्षा के साथ इनका अपना सम्बन्ध है। पावलोव ने व्यवहार

विचलन पर विशद अध्ययन किया एव वे इस परिणाम पर पहुँचे कि भाग्नाशा की स्थिति ही व्यवहार विचलन का प्रमुख घटक है। शनै शनै भग्नाशा की अपनी स्थिति बन जाती है एव उसमे परिवर्तन नही आता। व्यक्ति साधारण से साधारण समस्या का भी सामना करने मे अपने को अक्षम पाता है एव उसकी निर्योग्यता इतनी बढ जाती है कि वह उससे अधिक सोच भी नही पाता।

स्वभाव एवं भग्नाशा अवस्था

सामान्य रूप से व्यक्ति का स्वभाव भग्नाशा मे इतना डांवाडोल हो जाता है कि वह अपने को अस्थिर पाता है। उसके सामने कोई सामान्य स्थिति भी क्यो न आये जैसे उसके सपुर्द कोई काम किया जाये तो वह सोचने लगता है कि यह उसके प्रति व्यावहारिक आक्रोश है जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उसे कार्य विशेष प्रदान किया जा रहा है। वह पूर्ण तनाव के साथ उस व्यवहार को ग्रहण करता है। इसका प्रभाव उग्र स्वभाव, या अपने आप को नैराश्य की ओर ले जाने वाला होता है। पलायन की वृत्ति कार्य करते हुए बनी रहती है। भग्नाशग्रस्त बालक की शक्ति किसी कार्य मे उस कार्य की अवस्था के अनुसार प्रयुक्त नही हो पाती। ऐसे स्वभाव की अवस्था मे दृढता होती है। यही असामान्य व्यवहार है।

असामान्यावस्था का स्वरूप

बालक अपनी चेतन अनुभूतियो से विवश होने के कारण किसी अन्य परिवेश मे उलझकर अपने व्यवहार को समाज-स्वीकृत व्यवहार के प्रतिकूल कर उठता है। यथा, 'आम खाना, यद्यपि एक सामान्य स्थिति है, परन्तु चुरा कर आम खाना समाज से स्वीकृत, व्यवहार नहीं है। कतिपय अवस्थाओ मे एक समाज मे अस्वीकृत व्यवहार दूसरे समाज मे स्वीकृत भी होता है। पूर्वीय एव पश्चिमीय अनेको सस्कार भी यदि वे परस्पर विरोधी हो, बालक को असामान्यावस्था की ओर उन्मुख करते हैं।

शारीरिक विकृतियाँ भी सामाजिक समंजन की ओर बालक को ले जाती हैं। प्रमुख शारीरिक विकृतियाँ एक दृष्टि मे इस प्रकार प्रदर्शित की जा सकती है—

शारीरिक विकृतियाँ
- सिर सम्बन्धी विकृति
- नेत्र दोष
- कर्ण दोष
- दन्त विकार
- नासिका दोष
- अपगता
- विरूपण
- हकलाना या तुतलाना
- अत्यधिक कोमलता

विद्यालय का दायित्व

विद्यालय इस प्रकार के बालको को मैत्री, खेल भावना, अनुशासन, उत्तरदायित्व

नेतृत्व, कौशल कार्य आदि सम्बन्धी प्रवृत्तियो मे सलग्न करे, जिससे वालको मे उत्साह एव रुचि का विकास हो। शैक्षिक सुविधाएँ वैयक्तिकता को दृष्टि मे रख कर प्रदान की जा सकती है। पाठ्य-सहगामी क्रियाओ का भी समावेश ऐसे वालको के निमित्त किया जा सकता है।

विकलाग वालक असुरक्षा की भावना से अधिक ग्रसित रहता है। भारत मे प्राय विकलाग लडकियाँ भग्नाशा, कुण्ठा, अवसाद, असुरक्षा आदि की तीव्र भावना से अधिक ग्रसित रहती हैं, जिसका मूल कारण पितृसत्तात्मक परिवार की प्रधानता होना है। फिर भी विद्यालयीय वातावरण निम्नलिखित समायोजन प्रदान करने मे सक्षम है –

१ उत्साह एव कौशल का विकास
२. समूह भक्ति
३ एक्य भाव
४ नियन्त्रण एव दायित्व
५ कार्य विभाजन
६. साधनो का समुचित उपयोग
७ प्रत्याशायुक्त प्रतिक्रियाए

मनोसामाजिक विकृति के क्षेत्र मे वुद्धि लब्धि ७० से भी कम आकी गई है। इसके अतिरिक्त अन्य ऐसे कारण भी हैं जिनसे वालक का व्यवहार सामान्य नही रहता। शारीरिक, मानसिक एव सवेगात्मक कारणो के साथ घर का वातावरण एव शैक्षिक अपरिपक्वता भी वालक के असामान्य व्यवहार को वढावा देते है। आपसी व्यवहार, जिसे वालक समाज या घर मे देखता है, उससे भी वह प्रभावित होता है।

वस्तुत वही व्यवहार असामान्य माना जाना चाहिये जो वालक के सामाजिक समंजन मे वाधक हो। शिशु अवस्था मे वालक, वालिकाओ से अधिक उद्दण्ड मिलेंगे।

प्रमुख असामान्य व्यवहार

मनो-सामाजिक विकृति जनित असामान्य व्यवहार मे वे सभी अवस्थाए हैं जिनका अनुकूलन समाज मे नही होता। जैसे—

१ असत्य भाषण
२ चिढना या कुपित होना
३ ईर्ष्या या द्वेष
४ अनुशासनहीनता
५. लडाई-झगडा आदि
६. तोड-फोड
७ चोरी करने की प्रवृत्ति
८ कामुकता
९ अविश्वासीपन
१० निर्दयता
११ अकर्मण्यता
१२ उदासी या कुण्ठा

१३ वालापराध
१४ विद्यालय से भागना

प्रस्तुत असामान्य व्यवहार की समस्याओ को देखते हुए इसके दो कारण स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं—प्रथम आनुवशिक दूसरा पर्यावरणीय। परन्तु कई अवस्थाओ मे यह जानना ही कठिन हो जाता है कि व्यवहार विचलन का प्रमुख कारण इन दोनो मे से कौन-सा है। घर की आर्थिक स्थिति एव परिवार का व्यवहार सीधे वालक को प्रभावित करते हैं। मासी (द्वितीय पत्नी) का व्यवहार अपने साथी वालको का ईर्ष्यालु व्यवहार एव तृतीय अवस्था मे स्वय वालक का अत्यधिक सवदेनशील होना असन्तुलित व्यवहार का कारण बनता है। व्यवहार विचलन वालक के विकास को अवरुद्ध ही नही करता अपितु सामाजिक जन जीवन को भी अस्तव्यस्त कर देता है। इस दृष्टि से प्रमुख मनोसामाजिक विकृतियाँ निम्नाकित रेखाचित्र मे दर्शायी गयी हैं—

असामान्य स्थायी व्यवहार

असामान्य स्थायी व्यवहार भी यदाकदा सामाजिक कुसमायोजन का कारण वन जाता है। जव व्यवहार अपने मे इतना रुढ हो जाये कि वालक उसमे सामाजिकता के अनुसार परिवर्तन लाने को तैयार भी न हो तो अत्यन्त दुष्कर स्थिति हो जाती है।

व्यवहार का आक्रामक स्वरूप भी कुसमायोजन का कारण वन जाता है, जव एक वालक दूसरे के व्यवहार को जरा भी सहन न करे एव आरोप-प्रत्यारोप का ही सहारा ले। विशेषज्ञ प्राय ऐसे व्यवहार के लिए खेल विधि द्वारा आक्रोश का मार्गान्तरीकरण कर सकता है।

कई अवस्थाओ मे वालको से व्यवहार से पलायन उत्पन्न हो जाता है। जहाँ वालक को अनिरक्षण प्राप्त होता है वहाँ वालक का व्यवहार कुण्ठा के फलस्वरूप कम हो जाता है। इससे अधिक गम्भीर स्थिति व्यवहार-त्याग की है। भग्नाशा या कुण्ठा से ग्रस्त वालक अपने व्यवहार मे समाज द्वारा निरर्थक अवरोध मानने लगते है, अत उनकी रक्षा ऐसे व्यवहार मे अवश्य की जाय।

आर्थिक और सामाजिक पक्ष

जव वालक अपने आप को घर के समृद्ध वातावरण मे वाछित आर्थिक स्थिति मे एव उचित सामाजिक मान्यता के स्तर पर नही पाता है तो वह अपने व्यवहार मे कटु हो

जाता है। उसके व्यवहार में ईर्ष्या, द्वेप, दूसरो पर दोप लगाने की प्रवृत्ति को वढावा मिलता है। आर्थिक एव सामाजिक असमानता, कुसमायोजन के साथ, वाल-विकास मे वाधक सिद्ध होती है। प्रायः उच्च वर्ग का मध्य वर्ग से, एव मध्य वर्ग का साधारण वर्ग से सम्वन्ध नही वैंटता। इन वर्गो मे आपस मे सदा एक प्रकार की दूरी एक दूसरे से वनी रहती है। इसे पाटने के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक मान्यताओ एव मूल्यो का समुचित विकास हो। अनेको ऐसे पक्ष है जिनके विकास से सामाजिक व्यवहार मे पुष्टता उत्पन्न हो सकती है।

शारीरिक अक्षमता

शारीरिक अक्षमता या शारीरिक सरचना पर लगे आघात के पश्चात् व्यवहार मे अत्यन्त शीघ्रता मे परिवर्तन आ जाता हे। कई वालको का व्यवहार समय-समय पर परिवर्तित हो जाता है। कतिपय वालको का व्यवहार स्थान विशेष के आधार पर भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न हो जाता है, जैसे विद्यालय, घर, मित्र वर्ग या वाजार मे भिन्न-भिन्न व्यवहार एक ही वालक के दिखाई पड जाते है। इसका कारण है—

१ शाला या घर मे मान्यता न होना,

२ अन्य स्थानो पर सम्मान व स्वीकृति प्राप्त होना

३ अन्य स्थानो पर मनोद्वेगो को प्रकट करने के लिए अवसर मिलना।

समाज सेवी एव मनोविश्लेपक जन वालक के इस व्यवहार से निष्कर्ष प्राप्त करके उसे निश्चित दिशा पर लगा सकते हैं। अध्यापक वर्ग भी विभिन्न अवस्थाओ मे वालक के व्यवहार का अवलोकन करके उस पर निर्णय ले सकते हैं।

शरीर मे कई तत्त्वो के अभाव स्वरूप भी व्यवहार मे विचलन उत्पन्न हो जाता है, जैसे, शर्करा का अभाव व्यवहार मे तनाव एव अवसाद उत्पन्न करेगा। शारीरिक विकृतियो, अभावो एव वाहुल्य तत्त्वो का सीधा सम्वन्ध मस्तिष्क एव सवेगो से रहता है।

घर के वातावरण मे व्यावहारिक विचलन एव विद्यालयीय वातावरण के व्यवहार मे एकरूपता हो यह आवश्यक नही है फिर भी एक के व्यवहार का दूसरे के व्यवहार पर सीधा प्रभाव पडता है। इस दृष्टि से व्यवहार मे मनो-सामाजिक प्रभावो का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सवेदीय अस्तव्यस्तता भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यावहारिक विचलन का कारण वन जाती है। जैसे—

१. चिन्ता

२ भय

३. दुख

४ अप्रसन्नता

५ अवसाद।

उपर्युक्त कारण वालक के व्यवहार मे तनाव, अकर्मण्य स्थिति या कुण्ठा उत्पन्न कर सकते है। दूसरी स्थिति मे उसका व्यवहार अपने अध्यापक, कक्षा के वालक, या अभिभावक से भिन्न हो सकता है। वह अपने तनाव को कम करने के लिए लड-झगड भी सकता है, अपने साथी वालको से सघर्ष करवाने की स्थिति मे भी खडा हो सकता है, या फिर सभी प्रकार के कार्यो मे अपने को अलग कर सकता है। स्थायी मनोद्वेग की अवस्था का भी

उसमे विकास हो सकता है ।

सवेदीय विचलन का प्रभाव

विद्यालयीय वातावरण पर सवेदीय विचलन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पडता है । वालक की सम्प्राप्ति कम होगी, वह अनुपस्थित अधिक रहेगा । अनुशासनात्मक आपत्तियाँ अधिक होगी । कतिपय अवस्थाओ मे विद्यालय त्याग की भी वात आ जाती है । समाज के दुष्ट प्रवृत्ति के वालको के साथ सम्वन्ध वन जाने से असामाजिक प्रवृत्तियाँ वालक मे विकसित होने लगेगी ।

विद्यालय का दायित्व

सभी प्रकार के मनो-सामाजिक व्यवहार मे विचलन वाले वालको को वर्ग-क्रम मे वाँटा जाना श्रेयस्कर होगा । विशेषज्ञ एव परिभ्रामी अध्यापक द्वारा वर्णित निष्कर्षो के आधार पर वालको को समुचित निदेशन एव वातावरण प्राप्त होना चाहिये । जितनी भी पूर्वाग्रही अवस्थाए है उन्हे दूर करने का दायित्व अध्यापक, विशेषज्ञ विद्यालय, तथा अभिभावको का है । मनो-सामाजिक विकार से युक्त वालक को निम्नलिखित अवस्थाओ से दूर रखने का प्रयास करना चाहिये

१ खण्डित परिवार
२ पीडित एव भूखे परिवार
३ अपराधी परिवार
४ असन्तुष्ट एव त्याज्य परिवार
५ मस्तिष्क रोग से ग्रसित व्यक्ति
६ पराश्रित परिवार
७ असास्कृतिक, असामाजिक मनोवृत्ति ।

अध्यापक द्वारा प्रयास

व्यवहार विचलन से सम्वन्धित वालको के लिए अध्यापक, अतिरिक्त कक्षा की व्यवस्था के साथ, अलग से विशेष अवसरो पर विद्यालय लगा सकता है । दूसरे, अपनी सेवाओ को अलग से भी ऐसे वालको को प्रदान कर सकता है । तीसरी स्थिति ऐसी नियमित कक्षा की व्यवस्था से सम्वन्धित है, जिसमे गम्भीर प्रकार के व्यावहारिक विचलन वाले छात्र हो । चतुर्थ व्यवस्था आवासीय सुविधा प्रदान करके भी अध्यापक करवा सकते हैं, जहाँ वह स्वय समय-समय पर वालको के व्यवहार को नियन्त्रित एव निर्देशित कर सके । यह व्यावहारिक विचलन की अवस्था पर निर्भर करेगा कि एक ही प्रकार की समस्या से प्रभावित छात्रो की सख्या क्या है यदि इस सीमा से अलग कोई छात्र होगा तो उसे अतिरिक्त व्यवस्था दी जायेगी ।

अभिभावकों को निर्देशन एव परामर्श

वर्तमान शिक्षा अपने क्षेत्र मे उन सभी वर्गों को साथ लेकर चलना चाहती है जो किसी न किसी रूप मे वालक के व्यवहार को प्रभावित करते हैं । अभिभावको को समय-समय पर मिलने वाला परामर्श निश्चितरूपेण व्यवहार-समस्या मे सुधार उत्पन्न करेगा ।

अभिभावको हेतु व्यवहार्य निम्नलिखित तथ्य परामर्श की दृष्टि से उत्तम हैं —

१ बालक को अपना प्यार प्रदान करना ।
२. बालक की गतिविधियो से परिचित रहना ।
३ महत्त्वपूर्ण कार्यो मे बालक का योगदान लेना ।
४. बाल-व्यक्तित्व को स्वीकार करना ।

"बाल-व्यवहार एक अत्यन्त सुकोमल समस्या है, जहाँ सरक्षण और स्वीकृति, अनुशासन और मुक्तता साथ-साथ चलते है ।" (सुरेन्द्र)

बाल-व्यवहार का सागोपाग अध्ययन करने पर ही अध्यापक उसके अभिभावको को समुचित परामर्श प्रदान कर सकता है । बालक मे सुरक्षा एव स्वीकृति की भावना ही उसे असामान्य व्यवहार-अवस्थाओ से मुक्ति दिला देगी । घर एव विद्यालयीय जीवन मे ऐसी अनेको अवस्थाए आती हैं जो बालक को भग्नाशा या कुण्ठा के रूप मे स्थायी रूप से घेर लेती हैं ।

कक्षा व्यवस्था एव पाठ्यक्रम

आवश्यकतानुसार कक्षा-व्यवस्था मे परिवर्तन एव पाठ्यक्रम मे परिस्थितियो के अन्तर्गत सुधार कर लेना लाभकारी ही होगा । कक्षा-व्यवस्था बाल-व्यक्तित्व को दृढ एव शक्तिशाली बनाने मे सहायक हो सकती है । इसी प्रकार सुगठित पाठ्यक्रम सामाजिक एव सास्कृतिक मूल्यो का बालक मे विकास करके उसे अधिकाधिक समाजोपयोगी बना सकता है । असन्तुष्ट एव कुण्ठाग्रस्त बालक को सन्तुलित वृत्त मे लाने का श्रेय कक्षा-व्यवस्था एव पाठ्यक्रम पर भी निर्भर करता है ।

शिक्षण पद्धति

बालक मे आत्मविश्वास, व्यक्तित्व मे उभार एव उत्साह वर्धन, अच्छी शिक्षण पद्धति पर निर्भर करते हैं । कक्षा मे बालक की तत्परता, विषय के प्रति रुचि, आकर्षण एव जिज्ञासा आदि को विकसित करने के लिए अध्यापक अन्य सहायक उपकरणो का उपयोग कर सकता है । सिनेमा, प्रोजेक्टर, रेडियो, टेप रिकार्डर, चित्र आदि अनेक आधुनिक उपकरणो की सहायता मे पाठ को प्रभावशाली बना कर अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकता है ।

वैयक्तिक क्षमता एव अभिरुचि का भी अध्यापक पूर्ण ध्यान रख सकता है । आवश्यकतानुसार विशिष्ट पर्वो या अवसरो का सहारा लेकर बाल-व्यवहार को सन्तुलन प्रदान किया जा सकता हे । आयोजनीय दिवस अपने मे पूर्ण व्यक्तित्व होते है जो सीधे उत्प्रेरण का कार्य करते है ।

व्यवहार विचलन को नियन्त्रित करने वाले कतिपय अन्य तत्त्व

१ सामुदायिक परामर्श एव निदेशन मण्डल की स्थापना भी स्वतन्त्र रूप से, या विद्यालय के अन्तर्गत, सम्भव है ।
२. समाज सेवको द्वारा भी इस कार्य मे सहयोग लिया जा सकता है ।
३ मनो-विश्लेषक से समस्याओ के अध्ययन के उपरान्त दिशा निर्देशन एव परामर्श ग्रहण करना ।
4, शैक्षिक दृष्टि से पिछडे, सवेगात्मक एव सामाजिक विचलन अवस्था से ग्रसित

बालक अपराध वृत्ति की ओर न जाये उसके लिए विशेष अध्यापकों को यह दायित्व अपने निजी व्यवहार में ले लेना चाहिये।

५. सामान्य स्थान, सिनेमा, खेल मैदान, बाजार आदि में भी अवसरानुकूल बाल व्यवहार का अध्ययन, समस्यात्मक व्यवहार को नियन्त्रित करने के लिए, सुविधा प्रदान कर सकता है।

६ पुस्तकालय, प्रदर्शनी, पत्रिका, प्रवचन आदि की सुनियोजित व्यवस्था इस दिशा में ग्रहण की जा सकती है।

विभिन्न आयु-स्तर और व्यवहार विचलन

शिशु अवस्था

इस अवस्था में बालक अपने प्रति किये गये व्यवहार को अनुभव करने लगता है। परन्तु स्मृति सीमा इतनी अल्प होती है कि वह शीघ्र ही विस्मृत कर देता है। यथा मचला हुआ बच्चा गुब्बारा पाकर प्रसन्न हो जाता है।

बालावस्था

यह अवस्था व्यवहार विचलन को स्थायित्व प्रदान करने में सहायक होती है। बालक अपने व्यवहार में उन सभी सवेदीय अवस्थाओं को देखने लगता है जो सामाजिक मान्यता के न मिलने पर अनुभव की जाती हैं। अपने प्रति उचित-अनुचित व्यवहार के प्रति अपने मनोभाव भी व्यक्त करता है। इस अवस्था में प्राय असामान्य व्यवहार गम्भीर नहीं होता। व्यवहार के विकास में यह वय सन्धि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानी गई है।

किशोरावस्था

व्यवहार विचलन की यह अत्यन्त तीव्र गति वाली आयु होती है। इसमे जहाँ बालक एक ओर शारीरिक दृष्टि से विकसित होता है वहाँ वह अपने व्यवहार का क्षेत्र भी विस्तृत करता है। रुचि-वैचित्र्य भी तेजी से बढता है। मनोवृत्ति की दृष्टि से किशोर अपने को ही सही समझने लगता है। स्वामी भावना का विकास एव कल्पनालोक मे विचरण इस वय के विशिष्ट लक्षण हैं। मानसिक दृष्टि से कतिपय किशोर अत्यधिक असन्तुलित हो जाते हैं। कभी-कभी किशोर गम्भीर से गम्भीर अपराध तक कर बैठता है। उसमे बदले की भावना भी बलवती हो सकती है।

विद्यालय, विभिन्न सहगामी प्रवृत्तियों का आयोजन करके, बालकों को उनकी रुचि के अनुसार उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य उन्हे सौंप देता है। समाज सेवा, खेलों के आयोजन, बाल मेले, उद्योग, पर्व भ्रमण या सरस्वती यात्राएं जिनमें बालक अपनी रुचि एव शक्ति के अनुसार सम्मिलित होता है, ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जिनमे बालक का व्यवहार आशा के विपरीत सुधार हुआ होता है।

किशोर बालकों का व्यवहार विचलन उन्हे बहुधा अपराध प्रवृत्ति की ओर उन्मुख कर देता है। किशोरापराध जानकर की गई योजनाबद्ध अपराध-क्रिया नहीं है। यही कारण है कि इसे अपराध की श्रेणी मे नही रखा गया है। व्यवहार मार्गान्तरीकरण द्वारा इस वय सन्धि मे प्रभावी बालक के समक्ष विकल्प प्रस्तुत करना लाभदायक होता है।

प्रवीक्षण

साधारणत किशोरापराधियो को भविष्य मे सरल सामाजिक जीवन बिताने के अनुवन्धन पर मुक्त कर दिया जाता है। औसत अवस्था मे इस प्रवीक्षण विधि के अच्छे परिणाम देखे गये हैं। तामिलनाडु, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश मे यह सुविधाएँ हैं। प्रायः सभी राज्य इस दिशा मे जागरूक हैं।

सुधार विद्यालय

१८९७ मे भारत मे सुधार गृहो की व्यवस्था हुई। प्रमुख सुधार गृह निम्नलिखित है —

१. **हजारी बाग, सुधार विद्यालय**—इसमे बंगाल, बिहार, आसाम, उडीसा के कशोरापराधियो को विधिवत् शिक्षा प्रदान की जाती है। इसमे व्यावसायिक शिक्षा का भी पूर्ण प्रावधान है।

२ **हिसार, सुधार विद्यालय**—इसमे दिल्ली, पजाब, हरियाणा आदि के १५ वर्ष से कम आयु के किशोरापराधी आते है। आचरण पर विशेष बल दिया जाता है। व्यावसायिक उद्योगो की शिक्षा के साथ माध्यमिक स्तर की विद्यालयीय शिक्षा भी प्रदान की जाती है।

३ **जबलपुर, सुधार विद्यालय**—इसमे आत्मानुशासन एव स्वावलम्बन की शिक्षा के साथ विद्यालयीय शिक्षा व्यवस्था भी है। मध्य प्रदेश के किशोरापराधी यहाँ रक्खे जाते हैं।

४. **लखनऊ, सुधार विद्यालय**—९ से १५ वर्ष तक की आयु के किशोरापराधी यहाँ रक्खे जाते हैं। इन्हे खर्च की सामान्य सुविधा भी हैं। इसके साथ ही यहाँ के बालक सादे कपडो मे बाजार मे भी जा सकते है। व्यावसायिक शिक्षा एव विद्यालयीय शिक्षा की समुचित व्यवस्था है।

विशेष विद्यालय

यद्यपि सामान्य विद्यालय इस दिशा मे सक्रिय योगदान देते रहते हैं, फिर भी विशेष विद्यालय का अपना महत्त्व है। यह चार प्रकार से अपना कार्य कर सकते है।

१. **आवासीय सुविधा सम्पन्न विद्यालय**-इन विद्यालयो मे गम्भीर प्रकार के बालको को रक्खा जाना हितकर होगा। वे बालक जिन्हे अत्यधिक ध्यान, निरीक्षण, सरक्षण या निर्देशन की आवश्यकता हो या जिनके घर विद्यालय से दूरस्थ स्थलो पर हो। विशेषज्ञो ने जाच के उपरान्त यह अनुभव किया है कि इन बालको को आवासीय सुविधा-सम्पन्न विशेष विद्यालय मे प्रवेश देना श्रेयस्कर है।

बालापराधी भी इस प्रकार के विद्यालयो मे प्रविष्ट किये जा सकते है। प्राय विश्व के सभी प्रगतिशील देशो मे सुधार-गृह हैं परन्तु वहाँ पर बालको को निश्चित अवधि के लिए रोका जाता है। व्यवहारगत परिवर्तन पर अत्यधिक ध्यान सिद्धान्त के पक्ष मे चाहे कितना ही क्यो न विचार हो, व्यवहार पक्ष उतना नही उभर पाता जिसकी अपेक्षा की जाती है। अत स्वावलम्बन और दायित्व बोध के कार्य साथ-साथ चलने चाहिये।

२. **अल्पावधि विद्यालय शिविर**—वैयक्तिक कमियो या दोषो का अध्ययन करके

सम्वन्वित वालको को विद्यालय शिविरो मे अल्पावधि के लिए रख कर उनको व्यवस्थित करना उत्तम होगा। ऐसे शिविर प्रकृति के वातावरण मे रमणीय स्थानो पर आयोजित किये जाने चाहिये, जहाँ पूर्व वातावरण का प्रभाव न पहुँचे।

३. विद्यालय उपचार केन्द्र—मनोसामाजिक व्यवहार मे विचलन शारीरिक रुग्णता के कारण भी सम्भव है। अत प्रथम शारीरिक जाँच होने के पश्चात् शिक्षण व्यवस्था हितकर होगी। कुछ वालक घरेलू वातावरण या अन्य सामान्य वातावरण मे उपचारात्मक सुविधा ग्रहण नही कर पाते। ऐसे परिवार अपने वालको को विद्यालय उपचार केन्द्र मे प्रविष्ट करा सकते है। इन विशिष्ट विद्यालयो मे चिकित्सा, शिक्षा, स्वावलम्वन एव सामाजिकता का शिक्षण एक साथ विना किसी परीक्षा प्रणाली के चलना चाहिये।

वहुविकल्प योजना विद्यालय—इन विद्यालयो की यह विशेपता होनी चाहिये कि शारीरिक मानसिक एव सवेदीय दृष्टि से विचलन की सीमा मे आने वाले वालको को अनेक विकल्प शिक्षण की दृष्टि से प्राप्त हो। शैक्षिक दृष्टि से यह उत्तम होगा कि वालक के विकास को अनेक दिशाए प्राप्त हो।

व्यवहार विचलन को रोकने की दिशा मे वहुविकल्प योजना अच्छा कार्य कर सकती है। जो योजना या कार्य वालक के लिए उचित हो उसका प्रावधान विद्यालय मे होना चाहिये।

अध्यापक एव मनोविश्लेपक का यह दायित्व हो जाता है कि विधिवत् अभिलेख तैयार करके प्रत्येक वालक के लिए अलग से निदेशन व्यवस्था की जाये। इसके साथ ही विद्यालय समाज-सेवी सस्थाओ, सुधार गृहो, अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओ व अभिभावको का पूर्ण सहयोग भी प्राप्त करता रहे। समय-समय पर समाज मे होने वाले सामूहिक पर्वो एव आयोजनो मे वालको को सम्मिलित किया जाये।

वहु विकल्प योजनान्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्रमो को सक्रियता प्रदान की जा सकती है।

वहु विकल्प योजना एव कार्यक्रमो की सक्रियता

१ वालक को जीवन से सम्वन्धित व्यवसायो की ओर उन्मुख करना।
२ कौशल-परक व्यवसायो की व्यवस्था,
३ कलात्मक व्यवसायो की व्यवस्था,
४. प्रायोगिक व्यवसायो की व्यवस्था,
५ समाज सेवा से सम्वन्धित कार्यक्रम, तथा
६ श्रम कार्य।

कार्य की प्रकृति के अनुमार ही वालक के व्यवहार मे परिवर्तन, दायित्व एव रुचि का परिमार्जन सम्भव है।

पत्राचार द्वारा अनुवर्ती कार्यक्रम का विस्तार भी सम्भव है। समय-समय पर वालक के व्यवहार का ज्ञान परामर्शक, अध्यापक, अभिभावक एव मनोविश्लेपक को होता रहता है। सहानुभूति और सहयोग के वल पर अनुकूलन सम्भव है।

सामाजिक समजन को सजीव रखने के लिए यह समीचीन होगा कि अध्यापक

अपने छात्रो की रुचि, मनोदशा एव जीवन-लक्ष्य को जाने। श्रीमती इन्दिरा गाँधी के शब्दो मे * "हम मे बच्चो की वास्तविक और निरन्तर परिवर्तित होती आवश्यकताओ के प्रति सतत जागरुकता होना जरूरी है।" उन्होने आगे कहा—"हमारे देश मे पूर्वाग्रह, अन्धविश्वास और साम्प्रदायिकता के अतिरिक्त दुर्गुण हैं जो बच्चे के अभिभावको, शायद अध्यापको, और वातावरण मे भी विद्यमान है। हमे बच्चे को इन सबसे अलग लाना है।" यह स्थिति सभी प्रकार के बालको के लिए है। इस कथन को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करना सामाजिक समजन की दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा।

आचरण समस्या और विकलाग

"आचरण समस्या एक विकट समस्या है जो अधिगम की प्रक्रिया को सीधे प्रभावित करती हुई मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओ का कारण बन जाती है।" बालगोविन्द तिवारी का यह कथन सामान्य और आचरण-समस्या बालक दोनो के लिए अन्योन्याश्रित स्थिति वाला है। विकलाग के व्यवहार मे सामान्य बालक आचरण-समस्या बालक बन जाते हैं एव सामान्य बालक द्वारा तग किये जाने पर सामान्य-व्यवहार-विकलाग आचरण-समस्या-विकलाग बनकर अपना व समाज का जीवन अस्त-व्यस्त करने लगते हैं। शनै शनै गम्भीर आचरण-समस्या घर, अध्यापक, अभिभावक के लिए भी चिन्ता का कारण बन जाती है। दूसरी वही पूर्व स्थिति कि घर, अभिभावक एव अध्यापक का अन्यथा व्यवहार विकलाग को आचरण-समस्या-विकलाग बना देता है। इस दृष्टि से आचरण समस्या विकलाग का निम्नलिखित वर्गीकरण विभिन्न तीन स्थितियो मे द्रष्टव्य है।

प्रमुख आचरण समस्या एव विकलाग

मनो-शारीरिक	मनोभावात्मक	मनो-सामाजिक
* चोरी	उदासीनता	असामाजिक व्यवहार
* मारपीट, निर्दयता	भग्नाशा	धोखा
* समलिंग कामुकता	अनाज्ञाकारिता	चोरी
* हस्त मैथुन	झुझलाना	कर्त्तव्यहीनता
* अनुशासनहीनता	निर्लज्जता	सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट करना
	मिथ्या आलोचना	अविश्वास

शिक्षा सन्त स्वामी केशवानन्द के विचार से "आचरण-समस्या एक तरफा यातायात नही है। इसमे क्रिया-प्रतिक्रिया जितनी तीव्र गति से होती है उतनी अन्य किसी कार्य मे नही।" सामान्य बौद्धिक अनुपस्थिति मे किया गया व्यवहार-समस्या आचरण इस सीमा तक प्रसारित हो जाता है कि सामाजिक सामजस्य की गम्भीर चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। यही समस्या मानसिक विकृति का स्थायीकरण बनकर विरोधी, हिंसक या विनाशकारी कार्यों मे परिवर्तित हो जाती है।

आचरण-समस्या का इलाज कक्षा निष्कासन, शारीरिक या आर्थिक दण्ड, फटकार, सही स्रोत पर तो सफल हो जाता है परन्तु अधिकांशत प्रतिक्रियात्मक रूप धारण कर लेता है। अत सुरक्षा युक्तियाँ ही इसमे अधिक प्रभावी होती है। आचरण-समस्या मे मुख्य

बात यह देखने की है कि बालक अपने द्वारा प्रस्तुत उत्तर मे विश्वास करता है या नही। यदि वह विश्वास करता है तो आचरण-समस्या का हल प्राप्त हो गया, 'यदि नही, तो वह टालने वाली स्थिति है।

आचरण-समस्या एक चिन्तन पक्ष

अधिगम की समस्या के साथ जब पलायन, आत्मदण्ड, स्वदमन एव झिझक के साथ बालक एकान्तप्रिय और दिवास्वप्नी हो जाये तो निश्चय ही अपराध प्रवृत्ति विकसित होती है। आत्म-हत्या या किसी की भी अकारण हत्या तक आचरण विकृति से उत्पन्न हो सकती है। विकलांग परिपक्वता के साथ कुछ बालक अपने द्वेष को दूसरो के माध्यम से व्यक्त करते है। इस प्रकार की आचरण समस्या अत्यन्त दुर्बोध और जटिल होती है जिसके अत्यन्त हानिकारक परिणाम निकल सकते है।

आचरण-समस्या और निराकरण

अध्यापक, परिभ्रामी अध्यापक, मनोचिकित्सक एव समाज-शिक्षाविद् के सहयोग से "आचरण मानदण्ट" बना लेना चाहिये जो बालक की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति का समर्थन करती हुई उसमे सुरक्षा का भाव उत्पन्न करे।

आचरण-समस्या पर साधारण परिवार बालको को दण्ड देते है, परन्तु जब वे स्वयं अध्यापक या अभिभावक को विचित्र आचरण करते देखते है तो 'अदर्शी आचरण समस्या' उत्पन्न करने लगते हैं। यह आचरण-समस्या बालापराध की श्रेणी मे आती है। निराशा अधिकाश विघटनकारी दुराचरणो का कारण बनती है। सुरक्षा की भावना आचरण समस्या का सर्वोदयी निराकरण है। इसके लिए यह आवश्यक है कि समस्या की पृष्ठ-भूमि के कारण पूर्वाग्रही न हों एव पूर्व अवबोध पर निर्भर करें। दूसरे, बालिकाओ की अपेक्षा, आचरण-समस्या बालकों मे अधिक होती हैं। बालक प्राय विद्रोह, जिद्द, झूठी प्रतिष्ठा या आक्रामक स्थिति को शीघ्र स्वीकार कर लेते हैं, जबकि बालिकाएँ पलायन, भग्नाशा या आत्म-दण्ड के भाव से ग्रसित हो जाती हैं।

आचरण-समस्या के निराकरण के क्षेत्र मे विद्यालय सक्षम भूमिका निभा सकते है एव सामाजिक कुसमायोजन को भी रोक सकते है। क्योकि विद्यालय मे विभिन्न सामाजिक स्थिति से छात्र समूह एकत्रित होता है। इस दृष्टि से विद्यालय एक छोटा समाज है जिसका नियन्त्रित स्वरूप है, अत आचरण का शोधन, मार्गान्तरीकरण एव परिवर्द्धन विद्यालय मे सुविधा-जनक एव व्यवस्थित हो सकता है।

बाल अपराध

"बाल अपराध क्या है इसे जानना आसान है" परन्तु बच्चे अपराध क्यो करते है? इसके पीछे शरीर, घर, विद्यालय, समाज, मित्रमण्डली, आदि न जाने कितने ही प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, सचेष्ट-निश्चेष्ट, नियन्त्रित-अनियन्त्रित, सरक्षण-अवहेलना, प्रेम, घृणा आदि प्रभाव हैं जो बालक को अपराधोन्मुखी बना देते है।" (चन्द्रपति)

विकलांग शिक्षा के क्षेत्र मे बाल अपराध भी चिन्तनीय बिन्दु है क्योकि एक ओर जहाँ सामाजिक कुसमायोजन को इस विषय की परिसीमा मे लिया जाता है वहाँ बाल अप-राध वृत्ति भी विद्यालय, घर और समाज के लिए समस्या है। वयोवृद्ध स्वामी केशवानन्द

(शिक्षा सन्त) ने बाल दिवस पर एक बार कहा था "विकसित जीवन मूल्यो ने हमारे सोचने के नजरिए को एक नई दिशा दी है, कल के बच्चो का नाम और काम पुण्य और पाप से जुडा था। भूत-प्रेत बच्चो से अपराध करवाते है अत कठोर दण्ड दिये जाते थे। आज यह एक मानसिक विकृति है जिसका कारण है निदेशन, शिक्षा और बाल रुचि पर ध्यान न दिया जाना। अत बाल अपराधी को एक उत्तरदायी नागरिक बनाने के लिए आवश्यक है कि हम इन्हे समझें एव मनोवैज्ञानिक ढग से इनके व्यवहार का शोधन करें। इनकी क्षमताओ को व्यवस्थित विकास दें।"

अपने जीवन के ७० वर्ष शिक्षा के क्षेत्र मे निर्बाध होम देने वाले इस शिक्षा सन्त ने अनेको बाल अपराधी बालको को व्यावसायोन्मुखी शिक्षा के माध्यम से सुनियोजित नागरिक बनाया।

बाल अपराध अर्थ एव परिभाषा

सामाजिक मूल्यो के विपरीत बालक द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य बाल अपराध कहा जायेगा। अट्ठारह वर्ष से कम आयु के बालक द्वारा किया गया वह कार्य जो स्वय बालक व दूसरो के लिए हानि को उत्पन्न करता है, इस श्रेणी मे आएगा।

हेटफील्ड, बालक अपराध की परिभाषा बालक के असामाजिक व्यवहार से देते ह। एम० पी० जेरय के शब्दो मे "सोलह वर्ष तक की आयु के बालक/बालिका जो अनैतिक, अनुशासनहीन एव असामाजिक कार्य करते हैं, जिन्हे यदि वयस्क करें तो दण्ड के भागी होंगे, बाल अपराध की श्रेणी मे आवेगा।

सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सोलह वर्ष तक के बालको द्वारा सामान्य सामाजिक व्यवस्था को अपने क्रियाकलापो मे बाधा पहुँचाना बाल अपराध है। यद्यपि इनमे कुछ ऐसे भी कार्य हैं जिन्हे वयस्क करें तो अपराध नही कहलायेगा। यदि वही कार्य बालक करें तो बाल अपराध की श्रेणी मे आयेगा। यथा बाल आयु मे यौन सम्बन्ध या विवाह करना।

आवारा, भगोडे, उद्दण्ड, अनाज्ञाकारी बालक बाल अपराधी मान लिये जाते है। इनके कार्यों मे तोड-फोड और व्यवस्था का उल्लघन प्रमुख रहता है। लिंग सम्बन्धी अपराध, लडाई-झगडा, झूठ और अपने से बडो को चुनौती देना जैसे कार्य इनमे उम्र के साथ बढते चले जाते हैं। पुलिस शोध के अनुसार १६७० मे भारत मे लगभग ३० हजार बाल अपराधी पकड़े गये।

बाल अपराध का प्रकार, स्वरूप और कारण

बाल अपराध का प्रकार, स्वरूप और कारण निर्धारित करना यद्यपि दुष्कर कार्य है फिर भी शिक्षण-निदेशन को सुविधाजनक बनाने के लिए यह आवश्यक हे कि इसे जाने। बाल अपराध के प्रकार के अन्तर्गत वे सभी कार्य आ जाते है जिनसे सामाजिक जीवन मूल्यो मे बाधा और जान-बूझ कर अवहेलना होती हो या बाल अधिनियम १६२०, १६२४ एव १६४८ का उल्लघन होता हो। सामान्यत बाल अपराध को निम्न रूपो मे देखा जा सकता है।

बाल अपराध के पांच मुख्य प्रकार हैं—

शारीरिक — मारपीट, हिंसा, तोडफोड, हत्या, उठाईगिरी आदि है।

— मानसिक —ठग्गी, जुआ, झूठ, गालीगलोज आदि है।

— मनोव्यावहारिक—आवारागर्दी, अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार, नियम का उल्लघन, जेब काटना इत्यादि है।

— लैंगिक—गुदा मैथुन, हस्त-मैथुन, बल के द्वारा सम लिंगीय, और विषमलिंगीय मैथुन, पशुओ से मैथुन आदि है।

— अन्य—मद्यपान, भीख माँगना, भगोडापन आदि है।

बालापराध का स्वरूप

बाल अपराध का स्वरूप कितना और कैसा होगा यह अपराध प्रवृत्ति मे रत बालक के तत्क्षण मनोभावो से सम्बन्ध रखती है। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि अपराधी बालक कितना बुद्धि सम्पन्न है। १६ वर्ष से कम उम्र के असामाजिक कार्यो मे लगे बालक यद्यपि बालापराध की श्रेणी मे आते हैं परन्तु अपराध मे उम्र का माप कुछ बालको के लिए अन्यथा ही प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ बालक बनवारी लाल ने सुनियोजित ढग से कुछ प्रश्न-पत्र चुराये, काशीराम ने पूरी योजना के साथ हरिराम को पीटा, आनन्द ने धोखे से छोटी बालिकाओ को तग किया, अमरसिंह ने बडी सफाई के साथ पैसे चुराये, हरिराम ने खेल-खेल मे एक बालक का पैर तोड दिया, कक्षा मे प्रोक्सी बोलने वाले प्राय मिल जाते है। कक्षा से स्वय भागने वाले और सम्पन्न घरो के बालको से डराकर पैसे लेने वाले बालको के गिरोह किसी भी विद्यालय मे देखे जा सकते हैं। यौन सुख के लिए ये छोटे-छोटे बालक बहुत कुछ करते देखे गये हैं। अत बाल अपराध का स्वरूप सीधे अपराध के क्षेत्र से कम नही है।

इस दिशा मे विचारणीय पक्ष है–बाल अपराधी की वय। मानसिक आयु मे १४ वर्ष और शारीरिक आयु मे २४ वर्ष का दीनदयाल दो बार सजा काट चुका है। जबकि शारीरिक आयु मे १४ वर्ष और मानसिक आयु मे २० वर्ष का रामलाल अच्छी सम्पत्ति के स्वामी बन गये। परन्तु कानून अभी उम्र को ही आधार मानकर चल रहा है। सम्भव है शीघ्र ही समय आयेगा जब अपराध के स्वरूप को प्रमुखता दी जायेगी। सिर्ल बर्ट बाल अपराध के कारणो मे आनुवशिक प्रभाव को प्रमुखता देते हैं। परन्तु नेशनल चिल्ड्रन ब्यूरो बाल अपराध के कारणो पर वातावरण का प्रभाव अधिक मानते है।" बाल अपराध के प्राय वही कारण हैं जो वयस्क अपराध की श्रेणी मे आते है। इसी प्रकार जो वयस्क अपराध के घटक बनते हैं। साधारणतया वही स्थितियाँ बाल अपराध का कारण बनती है। अन्तर नियम और न्याय की दृष्टि से केवल आयु का है।" एन० के० भार्गव ने अपने सुदीर्घ अनुभव के आधार पर बताया। बाल अपराधो के कारणो को प्रमुख रूप से प्राय पाँच भागो मे विभक्त किया जा सकता है।

पारिवारिक कारण—खण्डित परिवार, आर्थिक हीनता, कुपोषण, माता-पिता की अपराधी और गन्दी आदतें, अवाछिन बालक, मारपीट, अवाछित, बालक/बालिका, परिवार का नष्ट हो जाना आदि।

सहपाठी एव विद्यालयीय कारण—सहपाठियो का हावी होना, निर्दयी एव उद्दण्ड बालको के चुंगल मे फँसना, विद्यालय मे रक्षण न मिलना, अध्यापको द्वारा अवहेलना, मारपीट, असफलता, अपमान आदि ।

सामाजिक कारण—सामाजिक मूल्यो मे कठोरता, असमानता, भेदभाव, जाति-पाँति,-छूआछूत, ऊँचनीच, सामाजिक अपमान आदि । वातावरण का प्रभाव भी बालको को अपराध वृत्ति मे प्रवर्त कर देता है ।

सवेदीय कारण—हीन व्यक्तित्व, बदले की भावना, अविश्वास, यौन सुख, अपने को महान दिखाने की प्रवृत्ति आदि ।

अन्य कारण—अपराधी लोगो के चगुल मे फँसना, काम सुख, अवैध बालक, युद्ध, अकाल, भूकम्प, महामारी, हत्या, आवश्यकताओं को अधिक बढा लेना, अपहरण आदि ।

उपर्युक्त वर्गीकरण मे ३०% बाल अपराधी खण्डित, अनपढ और अभावो से दबे परिवारो मे, १५% सामाजिक कारणो से, १०% सवेदीय कारणो से, ५% सहसाथी एव विद्यालयीय कारणो का प्रभाव पडता है । शेष ४०% अपराधी अन्य या मिश्रित कारणो से जुड़े होते है ।

बाल अपराध और विद्यालय

बाल अपराध के लक्षण विद्यालय मे दिखलाई पडने लग जाते है । ऐसी स्थिति मे अध्यापक टी० ए० टी० या सी० ए० टी० के परीक्षण के माध्यम से अव्यक्त बाल भावनाओ का पता लगा सकता है । टुकर का कहानी पूर्ति, बेल्म का वयक्तित्व समायोजन, रॉरशा जाँच परीक्षण आदि सुविधानुसार एव आवश्यकतानुसार और अन्य परीक्षण भी स्वाभाविक वातावरण मे किये जाकर भावी निदेशन व्यवस्थित किया जाना श्रेयस्कर होगा ।

बाल अपराध को समाप्त करने के सामान्य उपाय

"वे समस्त घटक जो बाल अपराध के कारण है उन्ही मे बाल अपराध को समाप्त करने के उपाय भी खोजने होगे" (शिक्षा सन्त, स्वामी केशवानन्द)

यह सत्य है कि परिस्थितियाँ एक साथ परिवर्तित नही होती परन्तु अध्यापक का यह दायित्व है कि वह विषम सामाजिक अवस्थाओ मे भी बालक के व्यवहार को स्थिर बनाये रक्खे । परिवार और विद्यालय इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है । बाल अपराध के मूल मे मानसिक अपरिपक्वता प्रमुख है । बाल अपराध के कारणो मे जहाँ पूर्व वर्णित घटक है वहाँ अविकसित बाल बुद्धि को विभिन्न प्रलोभनो मे उलझाकर सम्पन्न और सुशिक्षित घरो तक के बालको को यौन अपराध, मादक द्रव्यो के सेवन, जुआ खेलना आदि जैसी अपराध वृत्तियो मे लगा देते हैं । कुछ गिरोह धनाढ्य घरो के बालको को डराकर या ठगकर उनसे मासिक रुपया ऐंठते रहते है । श्री मालीराम शर्मा, जिला शिक्षा अधिकारी ने अनेक ऐसे बालको को इस प्रकार के गिरोहो के चगुल से छुडवाया, उन्होने कहा था -"सामाजिक रूढियाँ, अभाव, दबाव, शोषण, क्रूर माता-पिता व सगी साथी बाल अपराध के लिए जितने उत्तरदायी हैं उतने ही वे बालक स्वय भी जिनमे न नैतिक बल है, न मानसिक और न शारीरिक ही ।" इस दृष्टि से ऐसे बालक चाहे किसी भी वर्ग के हो बाल अपराध मे प्रवृत्त किये जा सकते हैं । अत विभिन्न स्तरो पर बाल अपराधो को रोकने के

लिए निम्नलिखित सुझाव महत्त्वपूर्ण है :—

पारिवारिक स्तर—बालको के पोषण व रक्षण की उचित व्यवस्था हो एव माता-अपने आचरण द्वारा आदर्श उपस्थित करे। घर मे सभी बालको को समान सुविधा प्राप्त हो।

विद्यालयीय स्तर—उत्तम पाठ्यक्रम उत्तम बालक बना सकता है। अत अध्यापक एव विद्यालयीय वातावरण भी प्रजातन्त्रीय हो, विभिन्न समाज-सास्कृतिक कार्यक्रमो के आयोजन मे बालको का सीधा योगदान लिया जाये। अध्यापक का व्यक्तित्व प्रभावशाली हो जो अपराधी लक्षणो को पहचान सके एव बालक को स्वाभाविक मार्ग दर्शन दे सके। विद्यालय से भागना यद्यपि एक सामान्य समस्या है। परन्तु इसके अहितकर दूरगामी परिणाम निकल सकते है। अत विद्यालय मे समय-समय पर बाल-समस्याओ को लेकर अध्यापक अभिभावक गोष्ठियाँ आयोजित हो जो अभिभावको को भी इन समस्याओ को दूर करने मे सक्रिय रखें। पुस्तकालय, वाचनालय एव चरित्र को विकसित करने वाली प्रदर्शनियो का भी योगदान लिया जा सकता है।

स्वास्थ्य एव मनोरजन केन्द्र—स्वास्थ्य के प्रति बालक को सावधान रखना और अवकाश के समय मनोरजन केन्द्र का समुचित उपयोग बाल अपराध को समाप्त करने मे महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। इन केन्द्रो पर स्वास्थ्य प्रदर्शन, उत्तम चलचित्र दिखाये जाएँ एव जीवन स्तर को उन्नत करने हेतु प्रदर्शनियो की व्यवस्था हो जिन्हे देखकर बाल-अपराधी ही नही अन्य बालक, अभिभावक और नागरिक भी बाल अपराध के दुष्परिणामो को जानकर उनमे बचे रहे व धोखे मे न आएँ।

बाल अपराधी बालको में सुधार हेतु प्रयास—बालक कब, क्यो और कैसे अपराध प्रवृत्ति मे पड गया व्यक्तिगत रूप से अपराधी बालक का पारिवारिक, शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक एव सामाजिक स्तर पर जाँच परीक्षण का अध्ययन करके विशिष्ट अध्यापक बाल सुधार गृह के निदेशक एव अभिभावक के सहयोग से अपराधी बालक का शिक्षण अध्यापक करे। अध्ययन के आधार पर यह निश्चित हो चुका है कि १०० से अधिक बुद्धि-लब्धि अक वाले बालक हत्या, ठगी, योजना बद्ध हिंसा एव यौन अपराध जैसे कार्य करते है। ७० से ८५ तक या औसत बुद्धि लब्धि अक वाले भीख माँगना, भागना, समलिंगीय या पशुओ से काम-सुख, उठाईगिरी, मादक पदार्थो का सेवन जैसे अपराध कार्य करते है।

विशिष्ट बाल अपराधियो के लिये 'बाल पुलिस अध्यापक' हो जो प्रभावित बालको को बाल सुधार गृह मे शिक्षा देने के साथ उन्हे किसी भी सक्रिय उद्योग को आजीविकोपार्जन के रूप मे दे सके। एक सुधार अभिलेख पजी साथ-साथ तैयार होती रहे जो मार्गदर्शन करने के काम मे आ सके। सामान्य बाल अपराधी को विद्यालय मे ही सुधारने का अवसर प्रदान किया जाये। प्राय परीक्षा मे असफलता, विद्यालय मे अपमान और अवहेलना बालक को अपराधी या भगनाशा बालक बना देती है। ऐसे बालक मानसिक दृष्टि से बदले की भावना से काम करते है। अत व्यवहार मे मृदुता, उत्साहवर्द्धन एव बाल भावना को आदर देकर अध्यापक, माता-पिता व बाल सुधार निदशक इनके लिये मनोवैज्ञानिक ढग से सहानुभूतिपूर्ण एव उपयोगी वातावरण निर्मित करें जिससे ये बालक स्वय को समाज का एक उपयोगी सदस्य अनुभव करने लगें।

बाल अपराध के रोकथाम हेतु कतिपय बिन्दु

१ माता-पिता द्वारा बालक के पालन-पोषण मे उचित ध्यान व सहानुभूतिपूर्ण वातावरण का निर्माण करना

२ बालकों के साथ समान व्यवहार करना ।

३ अध्यापक द्वारा अपराध भावना का शोधन एव मार्गान्तरीकरण करके जीवन के प्रति आस्था का विकास करना

४ प्रो० हेनले (लदन विश्वविद्यालय) का कथन है कि वातावरण परिवर्तित करके बालक मे आनुवंशिक दोषो को दूर किया जा सकता है ।

सार संक्षेप

(मनोसामाजिक विकृति)

मनोसामाजिक विकृति से तात्पर्य है मानसिक विचलन की वह अवस्था जहाँ बालक सहपाठी, घर, परिवार, विद्यालय या समाज से समजन स्थापित न कर सके । इसे सामाजिक कुसमायोजन की सज्ञा भी दी जा सकती है ।

मनो-सामाजिक विकृति के कारण

मानसिक शारीरिक एव आंगिक रोगो की असाध्यावस्था
वैयक्तिक विभिन्नता
यौन शिक्षा का अभाव
सवेदीय अवस्थाएँ
वातावरणीय प्रभाव एवं सुरक्षा का अभाव ।

भग्नाशा

नैराश्य बालक के व्यवहार को उदासीन, उग्र या पलायन वृत्ति वाला बना देता है ।

सामाजिक अस्वीकृति या भारतीय सस्कारो के विरुद्ध पाश्चात्य सस्कारो का उदय भी मनो-सामाजिक समजन मे बाधक है ।

विद्यालय का दायित्व—बालको मे कुण्ठा, अवसाद, नैराश्य के स्थान पर उत्साह, कौशल, ऐक्य-भाव, दायित्व एव समाज बोध जैसी भावनाओ को विकसित किया जाये । भग्नाशा बालको मे बुद्धि-लब्धि अक ७० से भी कम रहता है ।

असामान्य व्यवहार इस दिशा मे प्रमुख है । इसे प्राय आनुवंशिक एव पर्यावरणीय प्रभाव-घटाते-बढाते रहते हैं । घर, माता-पिता एव विद्यालयीय वातावरण इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकते हैं ।

प्रमुख असामान्य व्यवहार

— ईर्ष्या, द्वेष, उदासी, कुण्ठा, असत्य, प्रलाप, कामुकता ।
— अकर्मण्यता, विद्यालय से पलायन, लडाई-झगड़े, चोरी

— अनुशासनहीनता ।

बालक प्रत्येक अवस्था मे अपने व्यवहार मे समाज का अवरोध अनुभव करता है।

आर्थिक स्थिति भी कभी-कभी अशिक्षा या गृह के कारण असामान्य व्यवहार का कारण बन जाती है। "वर्ग, वर्ण, सम्प्रदाय एव जीवन मूल्यो के अन्तर असामान्य व्यवहार के जनक कहे जा सकते है।" सुरेन्द्र का यह कथन अपने मे यथार्थ का निरूपण है जो प्रेम, सहानुभूति, सद्भाव एव अपनत्व के वातावरण द्वारा बालक को अच्छा सामाजिक प्राणी बना सकता है।

शारीरिक निर्योग्यता भी असामान्य व्यवहार का कारण बन जाती है। इससे सवेदीय अव्यवस्था उत्पन्न होती है, यथा—
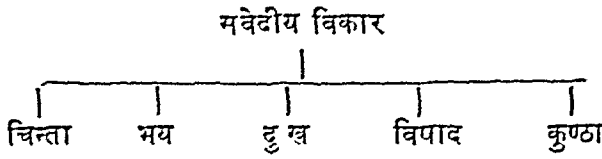
विद्यालयीय दायित्व पूर्वाग्रही मनोवृत्ति का शोधन। अध्यापकीय स्थिति व्यावहारिक विचलन को नियन्त्रित करने मे प्रभावी कार्य कर सकती है। अध्यापक को बाल मनोविज्ञान का एवं मनोसामाजिक विकृति के कारण एव समाधान का पर्याप्त अध्ययन होना चाहिये।

कक्षा-व्यवस्था एव पाठ्यक्रम

मनोसामाजिक विकृति के बालक को सतुलित वृत्त मे लाने का श्रेय उत्तम कक्षा-व्यवस्था एव प्रभावी पाठ्यक्रम पर अवलंबित है।

शिक्षण पद्धति के माध्यम से अध्यापक बाल व्यवहार को सामाजिक अनुकूलन की ओर सहज भाव से ले जा सकता है।

व्यवहार विचलन को नियन्त्रित करने वाले अन्य तत्त्वो मे विद्यालयीय सहगामी प्रवृत्तियाँ, परामर्श मण्डल, मनोविश्लेषक के परामर्श, समाज सेवी सस्थाएँ, धार्मिक व अन्य प्रभावशाली व्यक्तित्व भी समय-समय पर इस दिशा मे योग दे सकते है।

व्यवहार विचलन विभिन्न वय सन्धि पर भिन्न-भिन्न रूप मे लक्षित होगा—१ शिशु अवस्था, २ बाल अवस्था, ३ किशोर अवस्था।

परिवीक्षणाधीन रखकर भी बालापराध को नियन्त्रित किया जा सकता है। एतदर्थ सुधार—विद्यालयो की व्यवस्था भी राज्य की ओर से उपलब्ध है। आवासीय सुविधा-युक्त विद्यालय भी इस दिशा मे उत्तम परिणाम दे सकते हैं।

आवश्यकतानुसार अल्पावधि विद्यालय भी सयोजित किये जाने चाहिएँ। इनके अतिरिक्त बहुविकल्प योजना विद्यालय अधिक उपयोगी है। इनमे बालोपयोगी श्रम कार्य, जीवन मे समन्वित व्यवसाय, औद्योगिक कार्य आदि है।

पत्राचार एव अनुवर्ती कार्यक्रम, सहानुभूति प्राप्त करके, वैयक्तिक रूप से भी प्रभावी बालक को प्रदान किये जा सकते है।

आचरण-समस्या और विकलाग—प्रमुख आचरण समस्याओ का कारण "दो तरफा यातायात" है, जो विकलाग द्वारा अन्य को या अन्य द्वारा विकलाग की आचरण-समस्या

का कारण बनता है।

बाल अपराध

प्रजातन्त्र मे शिक्षाविदो के समक्ष बाल-अपराध एक चिन्तनीय विन्दु है। बालको द्वारा अपराध करने के पीछे घटनाओ एव वातावरण की वह स्थिति है, जिसमे बालक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सीधा प्रभावित होता रहता है। सोलह वर्ष से कम आयु के बालको द्वारा किये गये असामाजिक कार्य बाल अपराध की श्रेणी मे आते हैं जिसमे बालक और समाज दोनो को खतरा बन सकता है।

बाल अपराध के प्रकार, स्वरूप और कारण

शारीरिक, मानसिक, मनोव्यावहारिक, लैंगिक या अन्य ऐसे कार्य जो कानून और समाज की दृष्टि मे अमान्य हो व बालक उन्हे अपनी तुष्टि के लिये करवाये या स्वय करे, इस वर्ग मे आएँगे। वयस्क अपराध के कारणो और बल अपराध के कारणो मे कोई विशेष अन्तर नही है।

बाल अपराध की रोकथाम के उपाय

वे समस्त घटक जो बाल अपराध के कारण हैं उन्ही मे बाल अपराध को समाप्त करने के उपाय खोजने होंगे। अध्यापक, अभिभावक, विशिष्ट विद्यालय एव निदेशन के संयुक्त प्रयास द्वारा मनोवैज्ञानिक, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, उत्साहवर्धन एव प्रेरणा देकर बाल अपराधी बालक को राष्ट्र का एक उपयोगी एव उत्तरदायित्वपूर्ण सदस्य बनाया जा सकता है।

* * *
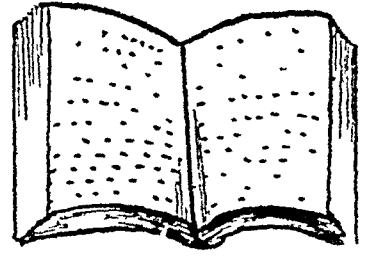
५. विकलांग शिक्षा व्यवस्था

I विकलाग शिक्षा एवं प्रशासन

"शिक्षा प्रजातन्त्र में पवित्र राष्ट्रीय प्रतिष्ठान है"

—शिक्षा सन्त स्वामी केशवानन्द

राष्ट्रीय प्रतिष्ठान के रूप मे शिक्षा का क्षेत्र समस्त बालको तक है। विकलाग शिक्षा के रूप मे यह दायित्व और भी विस्तृत है। प्रशासनिक दृष्टि मे यह समीचीन प्रतीत होता है कि विकलाग शिक्षा के लिये राज्य स्तर पर स्वतन्त्र विभाग हो। यह विभाग अपने क्षेत्र मे विकलाग बालको का पता लगाये तथा उनकी शारीरिक अवस्था एव क्षमता के आधार पर चिकित्सा, शिक्षा एव व्यावसायिक नियोजन के लिये विशेषज्ञो की टिप्पणी के अनुसार आलेखन तैयार करके सुविधा प्रदान करे। अविकसित एव विकसित समस्त राष्ट्र आज विकलागो के प्रति अपने कर्तव्य का बोध अनुभव कर रहे हैं। दुर्घटनाएँ, प्रकृति, युद्ध की स्थिति, बीमारी, असावधानी विकलागता को जन्म देती हैं। राष्ट्र उनके लिये स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करता है। इस प्रकार वर्तमान मे जीवन-मूल्यो को नई दिशाएँ प्राप्त हुई हैं। आशिक रूप से समर्थ बालक भी शिक्षा से वचित न रहे, यह लक्ष्य दृष्टि मे आया है।

विकलांग शिक्षा प्रशासन

एक अनिवार्य उपयोगिता—"जैसे-जैसे शिक्षा राज्य के घेरे मे सिमट रही है, शिक्षा प्रशासन एक अनिवार्य उपयोगिता के सन्दर्भ मे देखा जाने लगा है। जितना प्रशासन उत्तम होगा उतनी ही उत्तम शिक्षा व्यवस्था होगी।" प० फकीर चन्द कौशिक का यह कथन उन विकलागो हेतु भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जो राष्ट्रीय विकास मे अपना योग देने को आतुर थे, और विकलाग हो गये। सुदृढ राष्ट्र के लिये यह आवश्यक है कि वह किसी भी अवस्था के क्षमतावान बालक को शिक्षित और स्वावलवी बनाने के सभी सम्भव प्रयास करे। प्रजातन्त्र मे प्रशासन को दल-गत इच्छाओ से ऊपर उठकर मानवीय आधारो एव भौतिक साधनो के समन्वय को शिक्षा के लिये नियोजित करना होगा।

शिक्षा प्रशासन की उपयोगिता इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि वह अपव्यय एव अवरोधन को नियन्त्रित करे। शिक्षण पद्धति, निर्देशन, पर्यवेक्षण, सगठन, नियोजन आदि अगो पर प्रशासन सागोपाग व्यवस्था का समावेश कर सकता है। सुरेन्द्र का कथन है कि "प्रशासन विकलागो पर दया दिखाने की बाते सोचे, उत्तम होगा कि वह इस दिशा मे दायित्व बोध को विस्तृत करके विकलाग शिक्षा हेतु प्रभावी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे और शिक्षण प्रक्रियाओ मे जीवन से जोडने वाले पक्षो को स्वाभाविक गति दे।" इसी का दूसरा पक्ष है—"हमे इस क्षेत्र मे (शिक्षा) अत्यधिक अफसरशाही, कठोरता एव स्थिरता से बचना है।" (इन्दिरा गाँधी) के इस चिन्तन मे अनावश्यक औपचारिकता के स्थान पर कार्य को महत्त्व देना है।

प्रशासन का क्षेत्र

शिक्षा के विस्तृत क्षेत्र के एक अग के रूप मे प्रशासन अपने मे सम्पूर्ण अवस्थाओ पर विचार कर राज्य स्तर पर विकलाग शिक्षा की व्यवस्था प्रदान करना है। प्रशासन

अपने कार्य विस्तार के क्षेत्र मे निम्नलिखित अवस्थाओ को समाहित करे इस हेतु नव सूत्री व्यवस्था का उल्लेख अवलोकनीय है ।

योजना की निर्मिति एवं सम्भावनाए—सामाजिक परिवेश एव प्रजातन्त्र के सन्दर्भ मे योजना का उद्देश्य एव लक्ष्य निर्धारित करके आत्म-निर्भरता एव सुरक्षा की भावना जाग्रत करना ।

योजना का क्रियान्वयन एव व्यवस्था—उद्देश्य एव लक्ष्य के अनुसार योजना का क्रियान्वयन, एव योजना को व्यवस्थित रूप प्रदान करके विकलाग बालक मे नेतृत्व, उत्तर-दायित्व, सेवा-वृत्ति नियन्त्रण एव अनुशासन विकसित करना ।

विद्यालय एव कार्य-शाला—विकलाग शिक्षा हेतु विद्यालय के सम्बन्ध मे स्थिति, भवन, (विद्यालय, छात्रावास) पुस्तकालय, प्रयोगशाला, सभा भवन, चिकित्सा, कक्ष, सामान्य कक्ष, क्रीडागण, कार्य-शाला आदि का स्वरूप निर्धारित करना ।

अध्यापक एव पाठ्यक्रम—प्रशिक्षित अध्यापक, विशेषज्ञ अध्यापक एव विशिष्ट पाठ्यक्रम का चयन स्थायित्व लाने की दृष्टि से करना ।

विकलाग बालक एव शिक्षण प्रक्रिया—विकलाग बालक की अवस्था, क्षमता एव सम्भावनाओ को ध्यान मे रख कर शिक्षण प्रक्रिया को सुविधाजनक एव स्वाभाविक बनाना ।

विषय वस्तु एवं कौशल—विकलाग बालको की आवश्यकताओ, शक्तियो एवं कौशल क्षमताओ के आधार पर विषय वस्तु का वर्गीकरण करके उनका स्तरीकरण करना ।

व्यावसायिकता उपकरण एवं तकनीक—विकलाग अवस्थानुसार व्यवसायो का नियोजन, एव तदनुरूप श्रम शक्ति के आधार पर उपकरणो का प्रावधान करना ।

आय व्ययक—योजनानुरूप व्यवस्था हेतु अर्थव्यवस्था का लेखा जोखा निर्मित करना । आवर्तक एव अनावर्तक राशि निश्चित करना ।

उपलब्धि एवं मूल्यांकन—सम्पूर्ण उपलब्धि के आधार पर आलेखन निर्मित करके तदनुसार मूल्याकन करना जिससे भावी योजनाओ मे आवश्यक परिवर्तन सम्भव हो सके एव शिक्षा प्रशासन उपलब्धियो के माध्यम से नवीन प्रयोग भी कर सके ।

इसके अतिरिक्त प्रशासन अपने कार्य क्षेत्र मे निम्नलिखित बिन्दुओ का और समावेश कर सकता है —

व्यक्तित्व का विकास एव सरक्षण
समन्वय एव चरित्र निर्माण (लोक तन्त्र मे समायोजन हेतु)
वैज्ञानिक दृष्टिकोण
अनावश्यक प्रयास को रोकना
अनुकूलन

विकलाग शिक्षा प्रशासन एव सचालन

शिक्षा सचालन में योजना का प्रमुख आधार है-उद्देश्य, सिद्धान्त एव लक्ष्य की पूर्ति हेतु क्षमता एवं साधन का निश्चित क्रियान्वयन हेतु, नियम-उपनियम के अन्तर्गत, उपयोग । इसी मे व्यवस्था एव उनका व्यावहारिक पक्ष भी है । इस निमित्त तीन अग

विशिष्ट है (१) सचालन (२) व्यवस्था (३) उपलब्धि या मूल्याकन । यही तीनो प्रक्रियाएँ प्रशासन सचालन का वातावरण से समन्वय प्रदान करती है ।

विकलाग शिक्षा प्रशासन एक ठोस सगठन के रूप मे विकसित होना चाहिये । समय-समय पर प्रगति के लिये मूल्याकन आवश्यक एव अनिवार्य अग के रूप मे स्वीकार किया जावे । "प्रशासन शैक्षणिक स्थितियो का जीवन के भावी वातावरण से गहरा सबध स्थापित करता है । यह सम्बन्ध जितना गहरा और अनुकूल होगा विकलाग शिक्षा प्रशासन उतना ही सफल है ।" (ओम प्रकाश गौड)

विकलाग शिक्षा नियोजन की रूपरेखा

विश्व मानचित्र पर विकलाग शिक्षा का नियोजित स्वरूप जिस निष्ठा और प्रयास मे उभर रहा है वह निश्चय ही स्तुत्य है । शिक्षा आयोग (१९६४–६६) की धारणा है कि "शिक्षा व्यक्तियो की सम्पन्नता, कल्याण और सुरक्षा निश्चित करती है ।" केवल सामान्य समाज के बल पर राष्ट्रोत्थान की कल्पना पानी के बुदबुदे के अस्तित्व की भाँति है । विकलाग शिक्षा का नियोजन राष्ट्रीय जीवन मूल्यो मे एक महान् चेतना का प्रवाहक होगा ।

अनिवार्य विकलाग शिक्षा नियोजन के अन्तर्गत अल्पकालीन शिविर व्यवस्था, परिवर्तित तकनीकी आवश्यकता, परिवर्तित सामाजिक परम्परा एव मूल्यो मे उद्देश्याधारित शिक्षा नियोजन ही श्रेष्ठ है । क्षेत्रीय, राजकीय एव राष्ट्रीय नियोजनो का सम्बन्ध शृखलावत् रहना चाहिये । इस प्रकार उपयोगिता पर आधारित नियोजन एव परिस्थिति और साधन पर आधारित नियोजन का ही सर्वाधिक महत्त्व है ।

इसी पक्ष मे नियोजन का सबल पक्ष होना चाहिये, विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे सेवारत अध्यापक एव अन्य कार्यकर्त्ताओ की सेवा-सुरक्षा, सुविधा एव उन्नति हेतु विभिन्न योजनाएँ । शिक्षा-कानून इस क्षेत्र मे सेवाओ को शोषण से बचाए ।

"विकलाग शिक्षा के माध्यम से जब तक हमारे व्यवहार मे जीने की विधि तथा स्वभाव और कार्यप्रणाली मे उदार दृष्टिकोण का समावेश नही होगा, नियोजन असफल ही कहा जावेगा ।" श्रीमती विद्या कौशिक का यह कथन नियोजन के आधारभूत सिद्धान्तो के पुनर्गठन की ओर स्पष्ट सकेत है ।

विकलाग शिक्षा प्रशासन का राष्ट्रीय स्वरूप

शैक्षणिक कार्यक्रम राज्य स्तर पर भिन्न-भिन्न हो सकता है । यह भिन्नता विकलागावस्था पर भी निर्भर कर सकती है, परन्तु उद्देश्य, व्यवस्था एव स्तर मे राष्ट्रीय क्षेत्र मे एकरूपता अत्यावश्यक है । प्राथमिक एव माध्यमिक स्तर पर राज्य, अपनी मौलिकता का निर्वहन करते हुये, राष्ट्रीय स्तर पर विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे राष्ट्रीय सस्कृति एव चेतना का विकास अवश्य करे । परन्तु इस पक्ष मे दृष्टिकोण का भी अपना विशिष्ट महत्त्व होता है ।

* "हम कोई भी शिक्षा का स्वरूप स्वीकार करे अथवा कैसा भी इसमे सुधार लावें, वे सब निष्फल होगे यदि हमने कल्पनाहीन और सहानुभूतिरहित दृष्टि से इन्हे लिया तो ।" श्रीमती इन्दिरा गाँधी का विचार मूल भावना एव दृष्टि के साथ शिक्षा के स्वरूप को जोडता है ।

"लोकतन्त्रीय जागरूकता हेतु विधि, कार्य प्रणाली, पाठ्यक्रम, व्यवस्था, उपलब्धि एव मूल्याकन सघर्षशील समाज की आवश्यकताओ निमित्त साध्य के रूप मे स्वीकार किये जाएँ।" सुरेन्द्र का यह कथन समस्या एव सम्भावनाओ के अनुरूप व्यवस्था मे परिवर्तन एव आवश्यक शोध को प्रोत्साहित करके राष्ट्रीय स्तर पर विकलाग शिक्षा के सचालन एव नियोजन मे एकरूपता लाकर आधारभूत लोकतन्त्रीय व्यवस्था मे विकलागो के स्वस्थ प्रतिनिधित्व से जुडा हुआ है। वस्तुत इस विचार के मूल मे विकलागो को समाज का सक्रिय सदस्य बनाने से है।

एतदर्थ विचारणीय बिन्दु है—विकलागो की आवश्यकता एव क्षमता के अनुरूप शैक्षिक कार्यक्रमो का आयोजन करके उनमे अन्तर्दृष्टि विकसित करना, जिससे बुद्धिमतापूर्वक रचनात्मक प्रवृत्तियो मे विकलाग अपने कौशल व सूझबूझ का प्रयोग कर सकें।

भारत मे शिक्षा का नियन्त्रण (१) निजी सस्थाओ, (२) पचायत समितियो, (३) राज्य एव (४) केन्द्र के अधीन है। अत इस शृङ्खला मे तारतम्य नितान्त महत्त्वपूर्ण है।

आवश्यकताओं की पूर्ति—इस निमित्त अल्पकालिक एव दीर्घकालिक, दोनो ही योजनाओ की सरचना लाभदायक होगी। दोनो ही प्रकार की अवस्थाओ मे शाला भवन का समुचित उपयोग होना चाहिये।

विद्यालय भवन एवं प्रशासन—विकलाग विद्यालय की स्थिति एव अन्य सुविधाएँ सामान्य विद्यालयो से कई अवस्थाओ मे सर्वथा भिन्न होती है। विकलाग प्रकृति एव शैक्षिक आवश्यकताओ के अनुरूप ही भवन का निर्माण होना चाहिये। इस निर्माण मे स्मरणीय एक ही बात है कि भवन मे भावी विस्तार की पर्याप्त सुविधा रखनी चाहिये। आवश्यकतानुसार पुस्तकालय, कार्यशाला, दृश्य श्रव्य कक्ष, प्रयोगशाला, विश्राम कक्ष, शौच स्थान, जलागार आदि की समुचित व्यवस्था रहनी चाहिये। विद्यालयीय उद्यान एव क्रीडांगण व्यक्तित्व के विकास मे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान करते है।

विकलांग शिक्षा एवं अर्थव्यवस्था—अर्थव्यवस्था से तात्पर्य उस आवश्यकता की पूर्ति से है जिसका सीधा सम्बन्ध विकलाग शिक्षा पर होने वाले आवर्तक एव अनावर्तक व्यय से है। यह व्यय तीन अवस्थाओ मे नियोजित है —

(१) वास्तविक व्यय
(२) टूट-फूट, मरम्मत एव रक्षण
(३) भावी विकास योजनाएँ।

विकलाग शिक्षा की अर्थव्यवस्था, एव विकलाग विद्यालय का सचालन, दोनो की सफलता एक-दूसरे पर आधारित है। नियोजन एव अर्थव्यवस्था के साथ उपलब्धियो का मूल्याकन अत्यावश्यक ही नही है अपितु व्यय किये हुये धन की उपयोगिता की जाँच है। आय-व्यय का पूर्ण विवरण सहित उसकी जांच वित्तीय वर्ष मे एक बार अवश्य होनी चाहिये। वित्त-सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यो हेतु अलग से उत्तरदायित्व प्रदान किया जावे।

आय-व्ययक निर्माण करना प्रशासन का एक महत्त्वपूर्ण अग है। इसी पर भावी योजनाएँ एव सफलता निर्भर करती है। आवश्यकतानुसार ऋण, विभिन्न अनुदान, वित्तीय सहायता, स्थायी निधि की व्यवस्था, एव उसका समुचित उपयोग, वित्त के साथ सलग्न है।

आय-व्यय के निर्माण मे अपव्यय को रोकने पर पूर्ण ध्यान दिया जाना चाहिये। विद्यालयीय प्रशासन को अपनी तत्कालीन आवश्यकता की औचित्य-सीमा मे आय-व्ययक को परिवर्तित करने की सुविधा भी रहनी चाहिये।

विकलाग शिक्षा प्रशासन एव स्वास्थ्य

प्रशासन की दृष्टि मे विकलाग शिक्षा का आधार बालक की स्वस्थ शारीरिक, मानसिक एव मनोसामाजिक स्थिति है। यह निश्चित है कि विकलाग बालक सामान्य बालक से प्रत्येक अवस्था मे कम है। यदि विद्यालयीय वातावरण मे अस्वस्थ स्थितियाँ है तो विकलागो पर शिक्षा की दृष्टि से किये गये प्रयास अर्थहीन हो जावेगे।

विद्यालयीय भवन की स्थिति एव वातावरण

विद्यालयीय भवन—स्वच्छ शौच-स्थान एव मूत्रालय, भवन मे प्रकाश, वायु एव शुद्ध जल की समुचित व्यवस्था, विद्यालयीय उद्यान, सीलन वाले एव बदबूदार स्थान पर कली, डी टी टी एव अन्य कीटनाशक औषधियो को डालना आदि आवश्यक हैं। विद्यालय के छात्रावास एव भोजनालय मे रोगाणुओ को फैलने से रोककर स्वस्थ वातावरण उत्पन्न करके ही स्वास्थ्यकर अवस्थाओ को विकसित किया जा सकता है। यह ध्यान उन विद्यालयों मे रखना और भी आवश्यक है जहाँ भवन कच्चे या अर्द्ध-कच्चे है या आवासीय, औद्योगिक एव बाजारी केन्द्रो के निकट है।

स्वास्थ्य का दूसरा पक्ष है, विकलाग बालको के स्वास्थ्य के लिये दिया जाने वाला नियमित अभ्यास व समय।

स्वास्थ्य का तृतीय पक्ष है, पोषक आहार। विकलागो के लिये स्वास्थ्य की दृष्टि मे यह एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। प्रात एव साय के भोजन के अतिरिक्त इन बालको हेतु मध्याह्न मे पोषक आहार की व्यवस्था निर्विवाद रूप मे श्रेयस्कर है। इसके लिये आहार विशेषज्ञ से मिलकर उपयुक्त वस्तुओ की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिये।

चौथा पक्ष है, स्वास्थ्य की देखभाल। समय-समय पर विशेषज्ञ बालको के स्वास्थ्य की जाँच करें एव उनके व्यवहारगत परिवर्तन के आधार पर इस बात का भी ध्यान रखे। स्वास्थ्य की देखभाल प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार से ही सम्भव है।

पचम पक्ष है, स्वास्थ्य एव चिकित्सा सगठन। विकलागो की शारीरिक, मानसिक एव मनोसामाजिक विकृति की विभिन्न स्थितियो के आधार पर चिकित्सा एव स्वास्थ्य व्यवस्था साथ-साथ चलनी उचित है। इसी के अन्तर्गत भ्रमण, सरस्वती यात्राएँ, स्वास्थ्य प्रतियोगिताएँ, स्वास्थ्य सप्ताह आदि का आयोजन भी प्रभावकारी परिणाम लाने मे सफल है।

निरीक्षण एव पर्यवेक्षण व्यवस्था— विकलाग विद्यालय की गतिविधियो एव उपलब्धियो को जानने के लिये समय-समय पर विधिवत् निरीक्षण करके आलेखन तैयार किये जाने चाहिये। इन आलेखन के निर्माण मे पर्यवेक्षण विधि को भी पूर्ण स्थान मिलना चाहिये। निरीक्षण के समय विद्यालयीय व्यवस्था सावधान हो सकती है क्योकि यह पूर्व निश्चित और निर्धारित प्रक्रिया के अन्तर्गत होता है। जबकि पर्यवेक्षण स्वाभाविक वातावरण मे सम्पन्न होता रहता है। फिर भी इसका अचानक निरीक्षण जैसी स्थिति से कोई

सम्वन्ध नही है । स्थिति का यथावत् अवलोकन पर्यवेक्षण की श्रेणी मे आता है ।

अध्यापक, वालक एव व्यवस्था को प्रोत्साहित करने हेतु दण्ड देने या चेतावनी के स्थान पर उत्साह या सम्मानवर्धन अत्यन्त उपयुक्त विधि है । इससे शिक्षण-विधियो के दोप, कार्यभार, कार्यविधि, व्यवस्था एव परिणामो का सहज मूल्याकन किया जा सकता है, जिसके आधार पर विकलागो की व्यक्तिगत क्षमता एव शक्ति को रचनात्मक निदेशन दिया जा सकता है ।

इस दृष्टि से पर्यवेक्षण को जितना सम्भव हो सके व्यक्ति-निष्ठता से वचाया जाये । पर्यवेक्षक की दृष्टि वैज्ञानिक, लोकतन्त्रीय एव रचनात्मक होने के साथ-साथ समन्वयात्मक हो जो आन्तरिक एव वाह्य वातावरण से ठोस कडी के रूप मे सम्वन्धित रहे ।

निरीक्षण एव व्यवस्था पर्यवेक्षण को निम्नलिखित प्रकारेण व्यवस्थित किया जाये तो उत्तम होगा ।

सामान्य या नियमित पर्यवेक्षण ।

विशेप पर्यवेक्षण ।

व्यक्तिगत विकलाग वालक पर्यवेक्षण ।

उपलब्धि एव मूल्याकन के आधार पर पर्यवेक्षण ।

विस्तार योजनाएँ

विकलाग शिक्षा प्रशासन सुनिश्चित विस्तार योजनाओ की भी व्यवस्था कर सकता है, जिसके माध्यम से निकटस्थ विकलाग सीधी शिक्षा-सुविधा ग्रहण कर सकते है । चल पुस्तकालय, चल डाकघर एव चल चिकित्सालय की भाँति चल सुविधाएँ विकलागो हेतु राष्ट्र व्यापी स्तर पर उपलब्ध की जानी चाहिये ।

व्यवस्था की दृष्टि से विकलाग विद्यालय अपने यहाँ सीधी सेवा-सुविधाओ का नियोजन निम्नलिखित प्रकार से कर सकता है —

प्राथमिक स्तर (कक्षा ८ तक)	विकलाग वालको का वर्गीकरण प्रतिभावान, औसत एव सामान्य विशिष्ट विकलाग एवं चिकित्सा सुविधा ज्ञानात्मक विकास
उच्च स्तर	व्यावसायिकता एवं कौशलपरक विशिष्ट विकलागो हेतु आवासीय एव विशेष अध्ययन सुविधा
प्रौढ स्तर	व्यावसायिकता एव सामान्य ज्ञान रुचि-क्षमता एव शक्ति के अनुसार नियोजन निदेशन सुविधा
विशिष्ट स्तर	प्रतिभावाम विकलागो हेतु असाध्य विकलागता हेतु
चल सेवाएँ	विकलाग वालक एव प्रौढ़ो हेतु शैक्षिक, व्यावसायिक एव चिकित्सा सेवाएँ ।

प्रस्तुत वर्गीकरण प्रशासनिक दृष्टि से कार्य के नियोजन को सागोपाग नियोजित करने की दृष्टि मे एक वैज्ञानिक आधार कहा जा सकता है। इस प्रसग मे इतना और स्मरणीय है कि विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे जितना महत्त्व शिक्षा का है उससे कही अधिक महत्त्व नियमित चिकित्सा सेवाओ का है। किसी भी विकारावस्था मे त्वरित चिकित्सा सुविधा उपलब्ध नही होती है, तो विकलाग मे निराशा की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। वह यह अनुभव न करे कि उसके प्रति उदासीनता अपनाई गई है।

प्रोत्साहन एव पुरस्कार

प्रशासनिक दृष्टि से कार्यों के मूल्याकन के पश्चात् अच्छे कार्यकर्त्ता को प्रोत्साहित एव पुरस्कृत अवश्य किया जाय। एक ओर यहाँ यह कार्यकर्ता का सम्मान है, दूसरी ओर यही स्थिति अन्य लोगो के लिए प्रेरणा का स्रोत बनेगी। पुरस्कार एव प्रोत्साहन की यह प्रक्रिया विकलाग बालक और उस क्षेत्र मे कार्यरत, दोनो के लिए ही हो। वर्ष मे एक बार ऐसा स्नेह मिलन हो जिसमे सभी को अपनी प्रतिभा प्रकट करने का अवसर प्राप्त हो एव विकलाग विद्यालय अपना स्वय मूल्याकन करके भावी योजनाओ का निर्धारण करें।

सार संक्षेप

"शिक्षा प्रजातन्त्र मे पवित्र राष्ट्रीय प्रतिष्ठान है।"

(शिक्षा सन्त स्वामी केशवानन्द)

अविकसित तथा विकसित, समस्त राष्ट्र विकलागो के प्रति अपने कर्तव्य का बोध अनुभव कर रहे हैं। वर्तमान मे शिक्षा के प्रति जीवन-मूल्यों मे नई दिशाएँ प्राप्त हुई हैं।

विकलाग शिक्षा प्रशासन

प्रशासन जितना उत्तम होगा उतनी ही उत्तम शिक्षा व्यवस्था। सुदृढ राष्ट्र के लिए यह आवश्यक है कि वह किसी भी अवस्था के क्षमतावान बालक को शिक्षित और स्वावलबी बनाने के सभी सफल प्रयास करे।

प्रशासन विकलागो हेतु प्रभावी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे।

प्रशासन का क्षेत्र

सफल प्रशासन द्वारा निर्देशित नव सूत्री व्यवस्था
योजना की निर्मिति एव सम्भावनाएँ
उद्देश्य एव लक्ष्यानुसार योजना का क्रियान्वयन
विद्यालय एव कार्यशाला
अध्यापक एव पाठ्यक्रम
विकलाग बालक एव शिक्षण प्रक्रिया
विषय वस्तु एव कौशल
व्यावसायिकता उपकरण एव तकनीक
आय व्ययक
उपलब्धि एव मूल्याकन।

इसके अतिरिक्त प्रशासन पाँच अन्य विन्दुओ का भी समावेश कर सकता है—

१ व्यक्तित्व का विकास एव सरक्षण २ समन्वय एव चरित्र निर्माण ३. वैज्ञानिक दृष्टिकोण ४ अनावश्यक प्रयास को रोकना ५ अनुकूलन

प्रशासन सचालन की दृष्टि से तीन वाते प्रमुख हैं—

१ योजना का सचालन २ व्यवस्था ३ उपलब्धि एव मूल्याकन

प्रशासनिक-शैक्षणिक स्थितियो का जीवन के भावी वातावरण से गहरा सम्बन्ध होना चाहिये। यही प्रशासन की सफलता है।

विकलाग शिक्षा नियोजन की रूपरेखा

शिक्षा आयोग (१९६४-६६) की दृष्टि मे "शिक्षा ही व्यक्तियो की सम्पन्नता, कल्याण और सुरक्षा निश्चित करती है।" एतदर्थ अल्पकालीन एव स्थायी दोनो प्रकार के नियोजन आवश्यक है। नियोजन के मूल-भूत सिद्धान्त का गठन प्रजातन्त्र के सन्दर्भ मे होना अपेक्षित है।

विकलाग शिक्षा प्रशासन का राष्ट्रीय स्वरूप

स्थानीय या राज्य स्तर पर इस कार्य मे मौलिकता की दृष्टि से विभिन्नता आवश्यक है, परन्तु उद्देश्य, व्यवस्था, स्तर, विधि एव मूल्याकन मे राष्ट्रीय स्तर पर एक-रूपता आवश्यक है। इसके साथ ही आधारभूत सिद्धान्त, लोकतन्त्रीय परम्परा एव व्यवस्था मे विकलागो के स्वस्थ प्रतिनिधित्व को जोडा जाना महत्त्वपूर्ण है। जिसमे बुद्धिमतापूर्वक रचनात्मक प्रवृत्तियो मे वे अपने कौशल का प्रयोग करते हुए समाज के सक्रिय सदस्य के रूप मे जीवन-यापन करें।

विद्यालय भवन एव प्रशासन

विकलागो की आवश्यकता एव शिक्षण-सुविधानुसार भवन होना चाहिये जिसमे भावी विकास हेतु पर्याप्त सम्भावनाएँ भी रहे।

अर्थव्यवस्था

इसके अन्तर्गत वास्तविक व्यय, सरक्षण एव भावी विकास योजनाएँ आती है। आय-व्ययक जितना व्यवस्थित होगा वह अपव्यय को रोकने मे सहायक होगा।

आय-व्ययक कुछ लचीला भी हो जो तत्कालीन औचित्य या आवश्यकता के अनुसार अन्य मदो मे नियोज्य हो सके।

विद्यालय प्रशासन एव स्वास्थ्य

विकलाग का वर्गीकरण —१. शारीरिक विकलागता
२ मानसिक विकलागता
३. मनो-सामाजिक विकृति

वातावरण की स्वच्छता एव रोगाणुओ को फैलने से रोककर विद्यालय मे स्वास्थ्यकर आवश्यकताओं को विकसित किया जावे।

१ विकलाग बालको हेतु नियमित अभ्यास व समय

२ पोषक आहार

३ स्वास्थ्य परीक्षण
४ स्वास्थ्य चिकित्सा सगठन।

निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण व्यवस्था

प्रशासन विकलाग विद्यालय की गतिविधियो एव उपलब्धियो हेतु आलेखन तैयार करे। अध्यापक बालक या व्यवस्था को अच्छे कार्य के लिए प्रशासन अवश्य सम्मानित करे। यह सहज विश्वास है कि पर्यवेक्षक की दृष्टि वैज्ञानिक, लोकतन्त्रीय, एव रचनात्मक होने के साथ-साथ समन्वयात्मक हो जो आन्तरिक एव वाह्य वातावरण के ठोस कडी के रूप मे सम्बन्धित रहे। अत पर्यवेक्षण को चार प्रकार से निश्चित किया जा सकता है —

सामान्य या नियमित पर्यवेक्षण
विशेप पर्यवेक्षण
व्यक्तिगत विकलाग बालक पर्यवेक्षण
उपलब्धि एव मूल्याकन के आधार पर पर्यवेक्षण।

विस्तार प्रायोजनाएँ

विकलागो हेतु सीधी शिक्षा योजना, चल सुविधाएँ एव निर्देशन व्यवस्था राष्ट्रीय स्तर पर नियोजित की जावे।

वर्गीकरण की दृष्टि से विकलाग योजनाएँ

प्राथमिक स्तर
उच्च प्राथमिक स्तर
प्रौढ स्तर
विशिष्ट स्तर
चल सेवाएँ।

प्रस्तुत वर्गीकरण एक वैज्ञानिक आधार कहा जा सकता है।

प्रोत्साहन एव पुरस्कार

प्रशासनिक दृष्टि से अच्छे परिणाम आने पर कार्यकर्ता या विकलाग बालक को अवश्य ही पुरस्कृत किया जावे। वर्ष मे एक बार विकलाग विद्यालय अपना मूल्याकन अवश्य करे।

II विकलांग शिक्षा एव अध्यापक

स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवां अमृतान्पिप्रपच्च ऋक् ७।१७।४

(अध्यापक वही प्रशसा का पात्र है जो अपने शिष्यो को सुयोग्य, सदाचारी और सुशील बनाता है।)

यजुर्वेद मे श्रेष्ठ अध्यापक को माता के सदृश कहा है। अर्थात् जिस प्रकार माता के गर्भ मे बालक का पोषण और उसकी वृद्धि होती है उसी प्रकार स्वाभाविक रूप से

श्रेष्ठ अध्यापक अपने विद्यार्थियो को कर्म-धर्म की शिक्षा देकर उन्हे समृद्ध वनाता है।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।
यथेह पुरुषोऽसत् ।। यजु २।३३

अध्यापक के इसी स्वरुप ने 'आचार्यो मृत्यु' एव गुरु के लिये अज्ञानान्धकार को ज्ञान के प्रकाश से विकसित करने वाला कहा है। कवीर ने गुरु को ईश्वर से वढकर स्थान देते हुये कहा है—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।
वलिहारी गुरु आपकी, गोविन्द दियो वताय ।।

इन्ही अध्यापक (गुरु) के लिये कहा गया —

गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है, घड़ घड़ काढे खोट।
अन्तर हाथ सहारि दे, वाहर वाहे चोट ।।

मुझे लगा कि गुरु के इस दण्ड विधान स्वभाव स्वरूप को नई परिभाषा दी जाये।

गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है, लख लख काढे खोट।
अन्तर हाथ सहारि दे, वाहर राखे ओट ।।

वह मारपीट या दण्ड की अपेक्षा अव लख-लख अर्थात् अवलोकन (निरीक्षण एव पर्यवेक्षण) के माध्यम मे वालक के दोषो को दूर करे व ओट रखे, वाह्य वातावरण से उसकी रक्षा करे एव आन्तरिक क्षमताओ को विकसित करे जो जीवन को सुव्यवस्थित स्वरुप प्रदान करने वाले हैं उन्ही मनीषियो को गुरु की सज्ञा दी गई है।

विकलाग शिक्षा मे अध्यापक का स्थान

विकलाग शिक्षा मे अध्यापक का स्थान इस अर्थ मे भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि वालक मे स्वाश्रयिता एव ग्रहणीय क्षमता का आशिक या अधिक मात्रा मे अभाव है। विद्यालय मे उसका प्रवेश अधिकाधिक स्वाश्रयी होने के लिये एव शारीरिक क्षमताओ के विकास के लिये है। अध्यापक को विभिन्न विकलागावस्थाओ के स्वरूपो का ज्ञान, तदनुरूप विधियो के विषय मे विशिष्ट रूप से प्रशिक्षण से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है— विकलागो के प्रति विशेष झुकाव की ही दिशा मे विकलाग शिक्षक के रूप मे अध्यापकीय दायित्व का निर्वहन एव कार्य मे भावना पक्ष का आधारभूत सिद्धान्त। भावना के अभाव मे वालको मे भग्नाशा के विकास की सम्भावना वनी रहेगी जो उसे श्रम एव जीवन से पलायन वृत्ति का वना देगी।

विकसित होती नूतन पद्धतियाँ एव तकनीक से अध्यापक स्वय को परिचित रखते हुये अपनी पद्धतियो का अभिनवन करने वाला अध्यापक अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व रखता है। "प्रगतिशील अध्यापक शिक्षण की रूढियो के साथ चिपके नही रहते। वे वातावरणीय अवस्था, समाज की आवश्यकता एव विकलाग वालक की क्षमताओ के अनुसार अपनी शिक्षण प्रक्रियाओ को परिवर्द्धित, सशोधित एव विकसित करते है। प्रो० उमाशकर गौड के इस कथन मे विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे अध्यापक का स्थान और भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है कि विकलाग वालक को भूत या भविष्य की अपेक्षा वर्तमान के लिये सर्वप्रथम तैयार करना है।

विकलांग शिक्षा एवं विशेपज्ञ अध्यापक

विकलाग शिक्षा की सफलता का सूर्य अध्यापक के गुणो के प्रकाश से ही देदीप्यमान है। विकलागावस्था का ज्ञान, समाज का अध्ययन, शिक्षण मे विशेप दक्षता एव आत्म-विश्वास, विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे जुटे हुये विशेपज्ञ अध्यापक के गुण है। स्पष्ट ही है कि इस क्षेत्र मे सेवारत अध्यापक की कार्यावस्थाये विद्यालयीय कार्यक्रमो तथा विकलागो की प्रकृति, संख्या, पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक एव मनोवस्था पर निर्भर करती हैं।

सामान्य विद्यालय मे कार्य करने वाले अध्यापक से इस क्षेत्र मे सेवारत अध्यापक का दायित्व अधिक है। उसे विशेप आयु वर्ग के अनुसार भी वालको की क्षमता और शक्ति का पता लगाकर अपने शैक्षिक कौशल मे मोड देना पडता है। वहुधा विकलाग व्यक्तित्व भी अध्यापक को प्रभावित किये विना नही रहता। 'जैसे-जैसे विभिन्न विकलागावस्था मे वृद्धि होती जायेगी विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे अधिकाधिक निपुण, लगनशील एव विद्वान विशेपज्ञ-अध्यापक ही विकलागो को नवजीवन प्रदान करने की दिशा मे सफल हो सकेंगे।" शिक्षा सन्त स्वामी केशवानन्द की यह धारणा व्यावसायिक योग्यता एव विशेषज्ञ अध्यापको से ही विकलाग शिक्षा की सफलता को प्रकट करती है। शिक्षा सन्त ने ग्रामोत्थान विद्यापीठ, सगरिया (राजस्थान) मे सन् ४५ मे विकलागो के लिये व्यवसाय सुविधायें यथा—दर्जी, खाती, कुम्हार, हाथ कर्घा, वैद्यक आदि प्रदान की। यहाँ से अनेक विकलाग सम्पन्न जीवन की ओर अग्रसर हुए।

विकलांग शिक्षा एवं विशेषज्ञ अध्यापक

विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य करने वाले अध्यापको मे सहिष्णुता, स्नेह, सेवा-भाव के साथ सहयोग की भावना भी अति प्रवल होनी चाहिये; विशेपकर उन अध्यापको मे जो विकलाग शिक्षा के विशेपज्ञ कहे जाते है। ये क्षमतायें उतनी ही आवश्यक है जितना कि विपय पर अधिकार।

अध्यापक एव विकलांग

अध्यापक का विकलागो की अवस्था, रूप, रोगग्रस्तता, उपचार, कार्यक्षमता, एव सामाजिक स्तर से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। जव तक अध्यापक विकलागो की अवस्था से अपरिचित रहेगा वह उन्हे विश्वासपूर्वक शिक्षण प्रदान नही कर सकेगा। दूसरी वाधा उपस्थित होगी शैक्षिक समजन की। इसके अभाव मे कार्यक्रम का विभाजन भी उचित नही होगा। अत शिक्षक का अपने शिक्षार्थी की अवस्था से परिचित होना नितान्त महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत समस्त स्थितियो से वढकर है विकलाग वालक का विश्वास प्राप्त करना।

अध्यापक एव विभिन्न विकलागावस्था

शारीरिक, मानसिक एव संवेगात्मक दृष्टि से विकारग्रस्त वालको की ही नही, स्वय रोगो की संख्या भी इतनी अधिक है कि एक अध्यापक विभिन्न विकारो से ग्रस्त अवस्थाओ से परिचित नही रह सकता, जवकि अध्यापक का इन सभी पक्षो से परिचित होना नितान्त आवश्यक है। इन पक्षो मे रोग, चिकित्सा एव शैक्षिक समजन की नवीनतम

पद्धतियाँ भी सम्मिलित है। अत यह समीचीन होगा कि इस क्षेत्र मे कार्य करने वाला अध्यापक विभिन्न विकलागावस्था एव शिक्षण का नीचे लिखे अनुसार पचमार्गी समायोजन करे —

१ पुनर्बोधन कार्यक्रम
२ अस्पताल मे प्रत्यक्ष रोगी सम्पर्क
३. विद्यालय, अभिभावक एव चिकित्सा का विचार-विमर्श कार्यक्रम
४ शिक्षण कार्यक्रम
५ विशिष्ट।

पुनर्बोधन कार्यक्रम

अध्यापक नवीनतम उपचार-कार्यो एव शिक्षण पद्धतियो से परिचित रहे, यह साधारण जीवन मे तभी सम्भव है जब पुनर्बोधन कार्यक्रम की व्यवस्था विद्यालय द्वारा हो। यह कार्यक्रम तीन भागो मे सम्पन्न किया जा सकता है :—

१ शारीरिक एव मानसिक चिकित्सा के क्षेत्र मे विशेषज्ञ एव चिकित्सक द्वारा नवीनतम विकास अवस्थाओ, विभिन्न परीक्षणो, जन-सामान्य तक उनकी सम्भावनाओ, सुविधाओ एव उपलब्ध स्थलो का विवेचन किया जाये।

२ पुनर्बोधन कार्यक्रम मे विशेषज्ञ द्वारा सम्बन्धित अध्यापक की सीमा, दिशा-निर्देश एव परामर्श क्षेत्र का सम्भाव्य निर्धारण होना चाहिये।

३ चिकित्सा के अभाव मे अध्यापक का दायित्व क्षेत्र क्या, कितना और किस प्रकार हो, स्पष्ट रहना चाहिये।

४ आवश्यक चार्ट्स, मॉडल एवं साधारण विधियाँ दर्शाने वाले उपकरणो की उचित व्यवस्था होनी चाहिये।

अस्पताल मे प्रत्यक्ष रोगी सम्पर्क

स्वास्थ्य सेवा विभाग से सम्पर्क स्थापित करके या सीधे चिकित्सालय से सम्बन्ध स्थापित करके विभिन्न प्रकार के रोगी बालको का पर्यवेक्षण किया जा सकता है, जिससे उपचार, लक्षण, अवस्था एव सुधार स्थिति का प्रत्यक्ष परिचय विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य करने वाले अध्यापक को हो जाये।

अध्यापक अपने ही रोगी छात्र के स्वभाव एव ग्रहणीय शक्तियो से जानकारी प्राप्त करके सामान्यावस्था मे आने पर उचित दिशा निर्देशन एव शिक्षण प्रदान कर सकता है।

सर्वाधिक उपलब्धि पुनर्बोधन कार्यक्रम की यह है कि अध्यापक स्वय विभिन्न उपकरणो एव विधियो का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर ले।

अध्यापक, अभिभावक एवं चिकित्सक का विचार-विमर्श कार्यक्रम

विकारग्रस्त बालक की समस्या का सम्बन्ध जहाँ अध्यापक से है, वहाँ अभिभावक एव चिकित्सक का भी विशिष्ट दायित्व है। इनमे से एक पक्ष की भी उदासीनता विकलाग बालक के विकास मे बाधा उत्पन्न कर देगी, इसमे शेष दो पक्षो द्वारा किया गया

श्रम, शक्ति एव निर्मित वातावरण ग्रर्थहीन हो जायेगा। ग्रत इस कार्य मे इन तीनो पक्षो का विचार-विमर्श जिस निष्कर्ष को देगा वही शिक्षण का ग्राधार होगा।
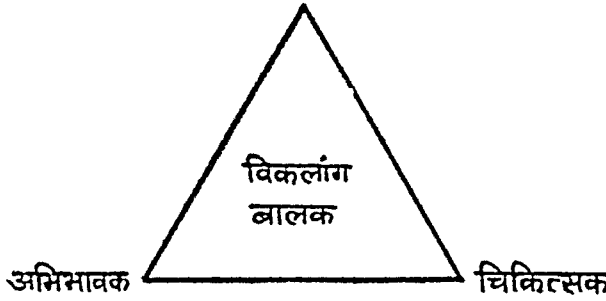
विकलाग शिक्षा एक त्रिभुजी प्रक्रिया है, जिसमे ग्रध्यापक, ग्रभिभावक, एव चिकित्मक तीनो एक विचार से सहमत हो, विकलाग वालक के शैक्षिक विकास मे योग-दान दें। रिकनर के शब्दो मे, "समस्त विकलाग वच्चो के लिये इस वात की समान रूप से आवश्यकता है कि उन्हे ग्रपनी क्षमताग्रो तथा परिसीमाग्रो का यथार्थ वोध हो तथा वे ग्रपने वारे मे एक सम्पूर्ण वैयत्तिक सकल्पना का विकास करें। प्रत्येक वालक के व्यक्तित्व पर हर प्रकार की वाधा का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडना इन वच्चो के लिये विशेष सेवाग्रो की स्थापना के पक्ष मे एक प्रभावशाली तर्क है।"

प्रस्तुत कथन की सत्यता इस त्रिभुजी कार्यक्रम के सुव्यवस्थित समजन पर ही निर्भर करती है। ग्रध्यापक, ग्रभिभावक एव चिकित्सक तीनो से एक के भी ग्रभाव मे विकलाग विद्यालय मे शैक्षिक समजन पगु है। ग्रध्यापक के ग्रभाव मे शिक्षण एव भावी जीवन की तैयारी की शृखला खण्डित हो जाती है। ग्रभिभावक के ग्रभाव मे सरक्षण एव सुरक्षा, ग्रौर चिकित्मक के ग्रभाव मे शारीरिक विकार मे सुधार, नियन्त्रण, एव क्षीण होती कार्य शक्ति का निर्मूलन ग्रसम्भव है। इन तीनों से सामाजिक स्वीकृति, सवेगात्मक नियन्त्रण, ग्रात्मनिर्भरता एव विकलाग व्यक्तित्व के विकास मे समुचित सहायता प्राप्त होती है।

ग्रध्यापक शैक्षिक समजन की दृष्टि से ग्रभिभावक एव चिकित्सक की भूमिका का भी पर्याप्त सीमा तक दायित्व निभाता है, ग्रत वह ही एक मात्र ऐसी धुरी है जिस पर ग्रभिभावक एव चिकित्सक दोनो के श्रम का फल ग्रवलम्बित है। इस दृष्टि से ग्रध्यापक का कार्य क्षेत्र ग्रौर भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

शिक्षण कार्यक्रम

शिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था विकलाग वालक मे या सामान्य विद्यालय मे सुनिश्चित विधि के ग्रन्तर्गत की जाये, जिसमे निम्नलिखित विन्दुग्रो का समावेश उल्लेखनीय होगा :—

(आ) नेत्र, कर्ण एव वाणी दोष सम्बन्धी
(इ) विभिन्न विकार सम्बन्धी

२ मानसिक विकलागता
(अ) मन्द बुद्धि सम्बन्धी
(आ) शिक्षणोपयुक्त मन्दता सम्बन्धी
(इ) प्रतिभा बालक (विशिष्ट बालक)

३. सवेगात्मक विकलागता
(अ) व्यवहार की समस्या
(आ) सामाजिक कुसमायोजन

४. विशेष शैक्षिक कार्य, असाध्य विकलागो हेतु

५. समय विभाग चक्र
(अ) क्षमता
(आ) समय
(इ) विषयवस्तु
(ई) उद्योग (स्वावलम्बी कार्यक्रम)
(उ) विश्राम अवधि

६. अल्पाहार एव मध्याह्न भोजन

७. मनोरंजन

८ परिवहन की व्यवस्था

९ प्रगति आलेखन

उपर्युक्त तथ्यो को दृष्टिगत रखकर अध्यापक का दायित्व है कि वह कार्यक्रम की रूपरेखा निर्मित करे और तदनुसार शिक्षण समारम्भ करे। अध्यापक को यह भी अधिकार है कि वह शैक्षिक कार्यक्रम की योजना निर्मित करते समय विकलागो की वैयक्तिक समस्याओ एव बाधाओ को भी दृष्टि मे रखे।

"विकलाग बालक को विद्यालय मे परीक्षा उत्तीर्ण कराने की दृष्टि से ग्रहण करना बहुत बडी भूल होगी। यह धारणा विकलांग शिक्षा के आधारभूत तत्वो को ही निर्मूल नही कर देगी, अपितु विकलाग बालको के साथ धोखा होगी।" चन्द्रपति की विचारधारा विकलागो को निरे सैद्धान्तिक ज्ञान से बचाना है। विकलाग व्यावहारिक क्षेत्र मे जितना आत्म-निर्भर होगा उसका जीवन के प्रति उतना ही विश्वास पैदा होगा जिससे वह समाज की एक उपयोगी इकाई अपने को अनुभव करने लगेगा। यही शिक्षण कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य है।

विशेष परिभ्रामी अध्यापक

विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे यदि सामान्य विद्यालय अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करते हैं और उनके समक्ष कोई विशेष कठिनाई उपस्थित होती है तो वे मनोविज्ञान-शास्त्रियो, उच्चारण सुधार के क्षेत्र मे कार्य करने वाले अध्यापको या समाज सेवा के क्षेत्र मे कार्य

करने वाले सामाजिक मनोवैज्ञानिको की नियमित सेवाएँ प्राप्त कर सकते है। इन सेवाओ की उपयोगिता विकलागो की अवस्था एव आवश्यकता पर निर्भर करेगी। अत विद्यालय विकलागो का वर्गीकरण करके उनकी समस्याओ के निराकरण हेतु उचित व्यवस्था प्रदान करें। अत विशेप परिभ्रामी अध्यापक के लिये प्रमुख विचारणीय बिन्दु नीचे लिखे जा रहे हैं —

१. विकलागो की विभिन्न अवस्थाएँ एव उनकी समस्याओ का वर्गीकरण।
२ विकलागो का क्षेत्र, विशेप निर्देशन की अवधि एव विकलागो का प्रगति आलेखन।
३. विशेप परिभ्रामी अध्यापक एक साथ कई विद्यालयो को अल्पकालीन अन्तर से अपने परामर्श एव निरीक्षण हेतु ले सकता है।
४ सामान्य दृष्टि दोप से युक्त बालक या श्रवण सामान्य दोप से युक्त बालक चिकित्सा के उपरान्त आकस्मिक निर्देशन मे लिये जा सकते है।
५. विकलाग शिक्षा विशेपज्ञ द्वारा शारीरिक विकलागता के नियन्त्रण के उपरान्त नियमित अध्यापको का विकलागो को शिक्षित करने हेतु प्राथमिक दायित्व हो जाता है।
६ विकलाग शिक्षा के विशिष्ट अवसर एव शिक्षण प्रभार एव विकलाग छात्रो की कार्य क्षमता का सन्तुलित प्रावधान निश्चित किया जाना ही श्रेयस्कर है।
७ परिभ्रामी अध्यापक विकलाग बालको की सामाजिक, पारिवारिक, भावात्मक अवस्थाओ से परिचित होकर विकलाग छात्रो को, नियमित एव आकस्मिक परामर्श, जैसी भी स्थिति हो, व्यवस्था कर सकता है। इस कार्य का सर्वाधिक औचित्य ग्रामीण क्षेत्रो मे अत्युत्तम है जहाँ प्राय विकलाग छात्र आस-पास के गाँवो मे कम सख्या मे होते हैं। साथ ही ग्रामीण क्षेत्र मे विशेप शिक्षा सुविधाएँ नाम मात्र को रहती है।
८ पुरोगम निर्धारित करते समय विकलागो के प्रकार एव वर्तमान अवस्था का पूर्णरूपेण ज्ञान विकलाग शिक्षा विशेपज्ञ को होना चाहिये। माता-पिता एव अभिभावको का भी यह दायित्व हो जाता है कि वे सामाजिक अनुकूलन या आवेगात्मक स्थिति मे विशेपज्ञो को सूचित करें एव सहयोग दें।
९ विद्यालयीय कक्षाध्यापक परिभ्रामी अध्यापक से परामर्श एव सशोधन के रूप मे सक्रिय सम्पर्क बनाये रख सकता है। विकलागो की विशेप गतिविधियो के अवसर पर उचित मार्गदर्शन ग्रहण कर तात्कालिक आवश्यक कार्यवाही कर सकता है।

विशेप कक्ष एवं विकलाग

विद्यालय विकलागो हेतु विशेप कक्षा की व्यवस्था कर सकता है, जिसे विशेप कक्ष के रूप में प्रयोग मे लिया जाये। नेत्र, दृष्टि एव श्रवण दोप वाले तथा लूले-लँगडे या अन्य प्रकार के विकलाग, विशेप रूप से विकलाग, शिक्षा के क्षेत्र मे प्रशिक्षित अध्यापक की देखरेख मे शिक्षा ग्रहण करे। विशेप कक्ष का उपयोग नियमित अवधि से अधिक होना आवश्यक है। आवश्यकता पडने पर विकलाग छात्र को विशेपज्ञ परामर्श या देखभाल हेतु नियमित कक्षाओ से भी परीक्षण उपरान्त निर्देशन के लिए बुलाया जा सकता है। ऐसी स्थिति मे विशेप कक्ष का उपयोग ससाधन कक्ष के रूप मे हो सकता है।

विशेष कक्ष में विकलांग छात्र को, ज्योंही वह सामान्य अवस्था मे आये, अन्य छात्रो के मध्य शिक्षा ग्रहण करने के लिये भेज दिया जाये। सावधानी इस बात की रखनी चाहिये कि कही विकलांग छात्र विशेष कक्ष को ही सर्वस्व न मान लें।

विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापक आवश्यकतानुसार विकलांगो की विभिन्न अवस्था की दृष्टि से विशेष कक्ष मे सहायक उपकरणो के माध्यम से बालक को अभ्यास दें जो नियमित कक्षा मे सम्भव नही होते। एक प्रकार से यह विशेष कक्ष प्रयोगशाला के रूप मे सक्रिय होंगे।

विद्यालय विकलांग छात्रो को घर से विद्यालय लाने व ले जाने की व्यवस्था भी करें, जिससे सुरक्षा और सम्मान की भावना का भी विकलांगों मे विकास हो। भ्रमण एव शैक्षिक कार्यक्रमो का आयोजन भी अल्पान्तर से इन छात्रो हेतु होते रहना आवश्यक है। सामान्य बालको से इन्हे अलगाव की स्थिति मे नहीं दर्शाना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर ऐसे छात्रो का उनके घर पर भी शिक्षण सम्भव है। माता-पिता या अभिभावको से विचार-विमर्श कर ऐसे छात्रो हेतु विशेष निर्देशन शिक्षण के अन्तर्गत आकस्मिक देखभाल के साथ-साथ बालक को विद्यालय मे भी अनुकूलन की स्थिति मे लाया जा सकता है।

भावात्मक या आवेगात्मक स्थिति में, जबकि बालक पड़ौसियो द्वारा, या समाज के अन्य लोगो द्वारा, चिढाया या तग किया जाता है, अपना सन्तुलन नही बनाये रख सकता। ऐसी स्थिति मे बालक को विकलांगो हेतु बने विशेष आवासीय कक्ष मे प्रवेश दिया जाना आवश्यक है जिससे उनके आवेगात्मक उद्वेगो को नियन्त्रित करने में सुविधा हो सके। एतदर्थ परिभ्रामी अध्यापक का योगदान महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है।

विकलांग शिक्षा एवं विशेषज्ञ

शिक्षाविदो ने सर्वसम्मत दृष्टि से यह स्वीकार कर लिया है कि विकलांगो की समस्या अपनी व्यक्तिगत समस्या है। वह समाज मे कृपा की नही, सहयोग की अपेक्षा करते हैं। समाज को उनकी समस्याओ को समझकर सुनिश्चित समाधान निकालना होगा। अत यह समीचीन होगा कि विकलांगो को सही शिक्षण प्रदान करने हेतु, अध्यापक उनकी समस्याओ को समझें।

विकलांग शिक्षा विशेषज्ञ की आवश्यकता

विकलांग बालक की समस्या एव व्यवहार को समझने, एव नियन्त्रित, संशोधित परिवर्धित एव मार्गान्तीकरण करने हेतु यह उपयुक्त होगा कि अध्यापक विभिन्न विकलांगावस्था से पूर्णत परिचित हो। विकलांग बालको मे मानसिक विकलांगता से युक्त बालक के व्यवहार को असामान्य-बुद्धि वालक की शिक्षा के क्षेत्र मे प्रशिक्षित अध्यापक सही प्रकार से नियन्त्रित कर सकता है। इसी प्रकार शारीरिक, संवेगात्मक एवं अन्य प्रकार के विकलांग बालकों को शिक्षण प्रदान करने के लिए उस क्षेत्र मे विशेषज्ञ अध्यापक का होना अत्यन्त आवश्यक है। विकलांग शिक्षा विशेषज्ञो की आवश्यकता निम्नलिखित बिन्दुओ द्वारा सहज स्पष्ट हो जाती है :—

(अ) विकलांग शिक्षा विशेषज्ञ, बालक की क्षमता एवं अन्य स्वस्थ अगो की कार्य सीमा से परिचित होकर, उन्हे सक्रिय करता है।

(आ) आत्मविश्वास की भावना से विकलाग बालक के व्यक्तित्व को वह पुष्टता प्रदान करता है।

(इ) विशेषज्ञ अध्यापक परम्परित अध्यापक से अधिक त्वरित गति से विकलाग बालक को पहचान कर शिक्षा दे सकता है।

(ई) वह विकलाग बालक के व्यक्तित्व को मान्यता देता हुआ समजन स्थापित करता है।

(उ) परम्परित अध्यापक की अपेक्षा वह अधिक शीघ्रता से विकलाग बालक मे विश्वास उत्पन्न करता है।

(ऊ) विशेषज्ञ होने के कारण वह विकलाग बालक की रुचि को उसकी क्षमता के अनुसार सक्रिय करके और योग्य व्यावसायिकता के कौशल मे ढालकर जीवन को उन्नत स्तर से जीने योग्य बनाता है।

(ए) वह विकलाग बालक की असामान्य अवस्था मे भी देखभाल कर सकता है।

(ऐ) विशेषज्ञ विकलागो के प्रति जनसाधारण के पूर्वाग्रही विचारो को परिवर्तित करें जो परिवार एव परिवार से सामाजिक योग्यता को प्रदान कर उस खाई को पाटने मे सक्षम है, जो वर्षों से इस वर्ग के साथ व्यवहार मे चली आ रही है।

(ओ) वह स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से स्वस्थ स्वभाव, एव स्वच्छता को व्यावहारिक रूप मे अपनाया जा सकता है जिससे विकलागो मे स्वस्थ स्वभाव का विकास होगा।

(औ) अवकाश के उचित उपयोग के साथ-साथ वह शैक्षिक कार्यक्रमो के अन्तर्गत सामुदायिक सेवाओ मे योगदान देने की क्षमता का विकास करके दायित्व एव कर्तव्यो के प्रति सजग रख सकता है।

प्रस्तुत विन्दुओ के आधार पर विकलाग-शिक्षा विशेषज्ञ अध्यापक की आवश्यकता को प्रमुख चार भागो मे स्वीकार किया जा सकता है।
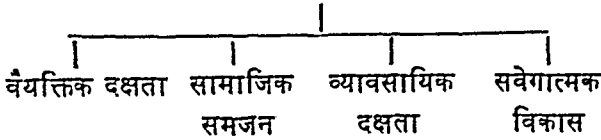
वयक्तिक दक्षता

शिक्षण मे वैयक्तिक दक्षता एक-पक्षीय नही होती। जो अध्यापक बालक को दक्ष बनाना चाहता है उसका स्वय भी दक्ष होना आवश्यक है। अवस्था, क्षमता एव रुचि के आधार पर अध्यापक विकलाग छात्र की शेष निहित शक्तियो को दक्षता प्रदान कर सकता है। वैयक्तिक दक्षता विकलाग के कार्यो के प्रति उसके स्वाभाविक झुकाव को लेकर होगी, परन्तु ऐसा करने मे विशेष दक्षता युक्त अध्यापक ही सफल हो सकते हैं।

सामाजिक समंजन

विकलांग बालक समाज से बाहर कोई स्वतन्त्र इकाई नहीं है। वह समाज का अग है। उसका सम्पूर्ण व्यवहार और जीवन समाज के साथ प्रत्येक कोण से जुडा हुआ है।

समाज उसे अपग समझकर अपने से भिन्न समझता है एव वह स्वय अपनी अवस्था के फलस्वरूप अपने को समाज मे अलग-थलग मान बैठा है, जिससे विकलाग बालक के जीवन मे भग्नाशा व्याप जाती है। ऐसे बालक समाज के लिये घातक सिद्ध हो सकते है, यथा—सामाजिक मूल्यो या मान्यताओ की अवहेलना, उल्लघन आदि। सामाजिक समजन एक प्रकार से समाज की स्वीकृति है, जो विषम अवस्थाग्रस्त बालक के अस्तित्व को पूर्ण सम्मान प्रदान करती है। बालक, चाहे किसी भी अवस्था का क्यो न हो, अपने को समाज का अविभाज्य अग मानकर ही जीवित रह सकता है।

अध्यापक सांस्कृतिक एव धार्मिक परम्पराओ एव मान्यताओ के उदार स्वरूपो का विवेचन करके इस अभाव की पूर्ति कर सकता है। यथा—कुब्जा की कथा, शबरी के बेर, रन्ति देव की अतिथि सेवा, सूर की कहानी आदि।

व्यावसायिक दक्षता

स्वावलम्बन एव आत्मनिर्भरता जीवन मे सन्तोष की सर्वाङ्गपूर्ण स्थिति कही जा सकती है। व्यावसायिक दक्षता के माध्यम से इसे सहज अर्जित किया जा सकता है। विकलाग अपनी क्षमतानुसार भी व्यावसायिक दक्षता का अर्जन करले, एव समाज उसे आत्मनिर्भर बनाने की दिशा मे वह सभी सम्भव प्रयास करे जिससे उसके द्वारा निर्मित वस्तुओ को विक्रय एव सरक्षण की समस्या का सामना न करना पडे। अवस्थानुसार कार्यों का चयन एव उनका प्रशिक्षण भी सम्भव है। विकलाग द्वारा हीन भावना का त्याग व्यावसायिक दक्षता के विकास से भी सम्भव है। इस हेतु राज्यस्तरीय या राष्ट्रीय व्यावसायिक निर्देशन केन्द्रो की सहायता ली जा सकती है।

सवेगात्मक विकास

वृत्ति को उदार, विचारो को दूरदर्शी, एव विकलागो को चिन्तनशील बनाने के लिए समय-समय पर प्रदर्शनियो, विचार गोष्ठियो, शिविरो एव अन्य आयोजनो की सुव्यवस्था करनी श्रेयस्कर है। विद्यालयीय स्तर के अतिरिक्त, सवेगात्मक विकास का परिमार्जन करने हेतु उनको भ्रमण, सरस्वती यात्राएँ, वनभोज एव अन्य कार्यक्रमो मे सम्मिलित करे। मेलो एव पर्वो के अवसर पर उन्हे विशेष सेवा-कार्य सौपे जाएँ।

प्रेरक एव उपचारात्मक अवस्थाएँ शिक्षण की दृष्टि से भिन्न हो, परन्तु छात्र-भेद न किया जाए। अध्यापक विकलागो की सकारात्मक एव नकारात्मक अभिवृत्तियो से भी परिचित हो।

विकलागो मे ही नही, प्राय साधारण बालको मे भी सहपाठी, विद्यालयीय एव सामाजिक समजन के प्रति असन्तोष के पीछे, घर का वातावरण, आर्थिक अभाव एव तनावपूर्ण व्यवहार ही होता है। अत अध्यापक बालक मे स्वत प्रेरित सवेगो का स्वागत करे, न कि उसमे ऊपर उठ दबाव दे।

अखिल भारतीय जिला शिक्षा अधिकारी सम्मेलन मे ६ मार्च ७६ को बोलते हुए प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी ने कहा—"बालको को दिया जाने वाला शिक्षण महत्त्वपूर्ण है, तो अध्यापक का व्यक्तित्व भी कम महत्त्वपूर्ण नही है।" इसके साथ ही उन्होंने यह स्पष्ट किया कि "जो अध्यापक जीवन और ससार के क्रिया कलापो मे रुचि नही लेता वह प्रभावशाली व्यक्ति नही।" आज विश्व की सर्वाधिक व्यस्त महिला जो भारतीय जन-जीवन के

समस्त पहलुग्रो पर व्यावहारिक चिन्तन प्रदान कर रही है ग्रध्यापक को मात्र वृत्ति (नौकरी) तक ही सीमित नही देखना चाहती ग्रपितु उसमे जन-जीवन से जुडा, एक व्यावहारिक ग्रध्यापक व्यक्तित्व विकसित करना चाहती है। ग्रध्यापक के व्यक्तित्व की यही स्वाभाविकता विकलाग बालको मे ग्रात्म-विश्वास उत्पन्न करेगी।

सार संक्षेप

विकलाग शिक्षा ग्रौर अध्यापक

स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षाद्देवा ग्रमृतान्पिप्रयच्च।

ऋग् ७ ।१७।४.

(ग्रध्यापक वही प्रशसा का पात्र है जो ग्रपने शिष्यो को सुयोग्य, सदाचारी ग्रौर सुशील बनाता है।)

दण्ड की ग्रपेक्षा बाह्य वातावरण से रक्षण, निरीक्षण एव पर्यवेक्षण के माध्यम से ग्रन्त शक्तियो का विकास करने वाले मनीषी गुरु कहलाते है । विकलाग शिक्षा के ग्रध्यापक मे भावना पक्ष का प्राबल्य होना चाहिये। सुरेन्द्र की विचारधारानुसार, "विकलाग बालक की ग्रावश्यकता एव क्षमताग्रो की उपयोगिता एव पूर्ति ही शिक्षण का केन्द्र है।"

विशेषज्ञ ग्रध्यापक विद्वान एव व्यवसाय के प्रति निष्ठावान भी हो। शिक्षा सन्त, स्वामी केशवानन्द ग्रध्यापक को बहुमुखी प्रतिभा का धनी स्वीकारते हुए कहते है "ग्रध्यापक ही गाँव का चिकित्सक है।"

विभिन्न विकलागावस्था हेतु कार्यक्रम

पुनर्बोधक कार्यक्रम
विचार विमर्श (ग्रध्यापक, ग्रभिभावक एव विशेषज्ञ)
चिकित्सालय मे प्रत्यक्ष रोगी सम्पर्क
विशिष्ट—ग्रभिभावक कार्यक्रम

ग्रध्यापक ही एक मात्र ऐसी धुरी है जिस पर ग्रभिभावक एव चिकित्सक दोनो के श्रम का फल ग्रवलम्बित है।

शिक्षरा कार्यक्रम

विकलागो की ग्रवस्था एव वर्गीकरण —

शारीरिक विकलागता
मानसिक विकलागता
सवेगात्मक विकलागता
ग्रसाध्य विकलागता

विद्यालयीय नियोजन

शिक्षण मे समय विभाग चक्र निर्माण के सिद्धान्त एव व्यावहारिक समस्याग्रो का निराकरण।

विकलागो की ग्रवस्था एव शारीरिक क्षमता
ग्रवधि एव विषय विशेष

उद्योग (आजीविकोपार्जन हेतु)
मनोरजन
मध्याह्न भोजन एव अल्पाहार
परिवहन की व्यवस्था

चन्द्रपति के शब्दो मे 'विकलाग बालक को विद्यालय मे परीक्षा उत्तीर्ण कराने की दृष्टि से प्रविष्ट कराना बहुत बडी भूल होगी, यह धारणा विकलाग शिक्षा के आधारभूत तत्वो को ही निर्मूल नही कर देगी, अपितु विकलाग बालको के साथ भी बहुत बडा धोखा होगी।'

विशेष परिभ्रामी अध्यापक

सामान्य विद्यालय हो या विशिष्ट, दोनो ही विद्यालयो मे परिभ्रामी अध्यापक का महत्त्व है। विद्यालयीय समस्याओ का समाधान, व्यक्तिगत विभिन्नता एव विशिष्ट मार्ग-दर्शन हेतु परिभ्रामी अध्यापको की सेवाएँ उपयोगी है।

कतिपय अवस्थाओ मे परामर्शद के रूप मे इनकी सेवाओ का उपयोग, अध्यापक, अभिभावक एव विकलाग छात्र तीनो के लिए लाभप्रद है क्योकि इन्हे अपने भ्रमण काल मे अनेको बालको, अवस्थाओ एव विकारो से परिचित ही नही होना पडता अपितु उनके लिए विभिन्न साधन, उपकरण एव उपचार प्रयोग मे लाने से उनके अनुभव का विकास विविध क्षेत्र मे होता है।

सामान्य विद्यालय मे ही विकलाग बालक शिक्षा ग्रहण करे। केवल विशिष्टावस्था मे ही विशेष विद्यालयो मे बालको को प्रवेश दिलवाया जावे।

विशेष प्रयोगशाला विशेष कार्यो हेतु परिभ्रामी अध्यापको के नियन्त्रण मे सचालित हो।

आवागमन हेतु सुरक्षा एव सम्मान की भावना दर्शाने वाले वाहन हो। भावात्मक एवं आवेगात्मक अवस्थाओ मे भी परिभ्रामी अध्यापक का योगदान महत्त्वपूर्ण रहता है।

विशेष कक्ष एव विकलाग

विशेष कार्य, परीक्षण, रुचि एव कार्यो की योजना विकलागो की अवस्थानुसार ही होनी चाहिये। विशेष कक्ष मे बालक अपनी क्षमता का उपयोग करे, उपकरण एव अन्य ससाधन को आसानी से प्रयुक्त कर सके। व्यावसायिकता की दृष्टि से जीवन स्तर को समुन्नत करने के लिए अवकाश का उपयोग हो।

"अवकाश के सदुपयोग की दृष्टि से विकलागो हेतु विशेष कक्ष जीवन की सफलता का सोपान कहा जा सकता है।" (डा रतन लाल शर्मा)

विशेषज्ञ अध्यापक की उपयोगिता

वैयक्तिक दक्षता का विकास
सामाजिक समंजन
व्यावसायिक दक्षता
सवेगात्मक विकास

श्रीमती इन्दिरा गाँधी जीवन और ससार के क्रियाकलापो से भिन्न अध्यापक के व्यक्तित्व को महत्त्वहीन मानती है। उन्होने अखिल भारतीय शिक्षा अधिकारी सम्मेलन (मार्च ७६) मे शिक्षा के समग्र पहलुओ पर अपना विचार दिया।

III विकलाग विद्यालय

वैज्ञानिक प्रगति, आवागमन के साधनो का विकास, समय और दूरी पर विजय एव औद्योगीकरण ने नगरीकरण का विकास जिस तेजी से किया वह इस सदी का चमत्कारी प्रभाव कहा जा सकता है। जनसख्या की वृद्धि एव जीवन स्तर मे तालमेल न होने से मानसिक तनाव का रूप प्रतिदिन परिलक्षित होता है। दुर्घटनाएँ, कुपोषण, गर्भावस्था मे माता की अपर्याप्त देखभाल, प्राकृतिक प्रकोप, अशिक्षा आदि के परिणामस्वरूप जन सामान्य अपनी धारणाओ, दृष्टि और विचार मे प्रजातन्त्रीय आधार पर परिवर्तन लाने मे असमर्थ रहा है। आज भी विकलागो की ओर से हम उदासीन है। डा वी वी गिरी (भूतपूर्व राष्ट्रपति) ने विकलाग विद्यालयो के सदर्भ मे कहा था, "यह अत्यन्त दुःख की बात है कि विकलागो के प्रति दया दिखाने वाले दृष्टिकोण मे परिवर्तन नही आया। सरकारी सेवाओ मे विकलागो हेतु स्थान सुरक्षित रखकर उन्हे अपने जीवन को भार रूप मे नही, मुक्त एव समाजोपयोगी रूप मे जीना बताएँ।"

प्रस्तुत भूमिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि विकलाग विद्यालय का महत्त्व एव उपयोगिता स्वत सिद्ध है। विकलाग विद्यालय को विशेष प्रयोगशाला के रूप मे प्रयुक्त किया जाना चाहिये। प्रथम श्रेणी के नगरो मे, जहाँ कि जनसख्या लाखो मे होती है, विकलागो के लिए अलग से विद्यालय की आवश्यकता है, जहाँ पर आवासीय सुविधा व्यवस्था हो।

विशेष विद्यालयो का गठन विकलागो हेतु पूर्ण सुविधा की दृष्टि से होना चाहिये ताकि अन्धे, बहरे, लूले, लगडे, आशिक रूप से या अन्य किसी प्रकार के विकलाग उनमे प्रशिक्षण ग्रहण कर सकें। आवासीय विकलाग सस्थाओ का विकास प्राचीन है। प्राचीन काल मे दानी सज्जनो, या समाजसेवी वर्ग से धन एकत्रित करके विकलाग सस्थाओ का निर्माण होता था। आत्म-निर्भरता या स्वावलम्बन की अपेक्षा एक स्थान पर विकलागो को रखकर उनके भरण पोषण की ही व्यवस्था पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता था। विचार केवल एक ही था कि विकलाग दर-दर भटकते या मागते न फिरें। इस दृष्टिकोण ने प्रशासनिक स्तर पर ही नही जन साधारण के स्तर पर भी एक नया विचार विकसित किया है जो इस वर्ग के प्रति अलगाव की खाई को पाटने का कार्य करेगा।

विकलाग विद्यालय भवन

सामान्य विद्यालय भवन मे जो विशेषताएँ और सुविधाएँ होती हैं, वे सब विकलागो के विद्यालय भवन हेतु भी होनी चाहिये। प्रकाश, वायु, धूप या जलवायु आदि की अवस्थाओ को दृष्टिगत रखकर विकलागो हेतु विद्यालय भवन का निर्माण होना चाहिये। इनके अतिरिक्त विकलागो की विशेष आवश्यकताओ की पूर्ति के साधन भी प्रस्तुत किये

जाने चाहिये ।

मुक्त वातावरण, कोलाहल पूर्ण स्थानो से अलग, विस्तृत क्षेत्र में विद्यालय भवन बने । विद्यालय भवन के चारो ओर हरियाली हो और अनेको प्रकार के वार्षिकीय एव मौसमी पौधे । विद्यालय भवन के सामने घास के उत्तम मैदान, अच्छे मार्ग, खेल के मैदान व अन्य सुविधाओ से युक्त प्रागण हो । विशेषकर, आने-जाने के मार्ग अधिक सुविधाजनक हो ।

पुस्तकालय भवन—विकलाग विद्यालय मे पुस्तकालय भवन का अपना विशिष्ट महत्त्व हो जाता है, क्योकि अन्धे ब्रेल लिपि की पुस्तके चाहेगे जिनका सामान्य विद्यालयो मे उपलब्ध होना सम्भव है । इसी प्रकार अन्य प्रकार के विकलागो हेतु अन्य सामग्री या विशिष्ट पुस्तके हो । पुस्तकालय भवन मे जल, विद्युत् एव पखो की सभी सुविधाएँ होनी चाहिये । विकलाग विद्यालय मे पुस्तकालय एक विशिष्ट प्रयोगशाला है, जहाँ विकलाग अपनी अर्जित शक्ति पर परीक्षण, एव उसके सवर्धन हेतु अभ्यास, कर सकते हैं । आचार्य लेखराम शर्मा का यह कथन विकलागो के मुक्त विकास की दृष्टि से पुस्तकालय के सन्दर्भ मे पूर्णत सत्य प्रतीत होता है ।

कार्य कक्ष या उद्योग कक्ष—शिक्षा मे स्वावलम्बन की दृष्टि से ही सामान्य बहु-उद्देशीय उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालयो की स्थापना की, एव उनमे उद्योग को अनिवार्य विषय के रूप मे पढाये जाने की धारणा थी, किन्तु विकलाग अपना जीवन यापन स्वय कर सके, इस निमित्त विकलाग विद्यालयो मे कार्य कक्ष या उद्योग कक्ष का होना तो अत्याव-श्यक है । रुचि एव शारीरिक योग्यता के अनुसार विकलागो को लकडी का काम, बुनाई का काम, कम्बल और दरी बनाना, रगाई-छपाई, वैल्डिग का काम, खिलौने बनाना, चित्रकारी, या वस्तुओ की मरम्मत का काम सिखाया जाये । गू गे बहरे यह कार्य अत्यन्त सावधानी से कर सकते है । विकलाग विद्यालय का कार्य कक्ष केवल कार्य करने तक ही सीमित नही रहना चाहिये अपितु आत्म-निर्भरता के व्यावहारिक रूप मे भी सक्रिय रहे । वर्तमान (अर्थात् १९७६) राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री हरिदेव जोशी का यह कथन कि, "विकलांगो के लिए जन साधारण यह अनुभव करने लग जाये कि इन लोगो की सेवाएँ भी समाजोपयोगी है एवं ये भी अपने को समाज और राष्ट्र का समर्थ सदस्य सिद्ध करे ।" स्वय सिद्ध है । एक हाथ (पूरी बायी बाह) से हीन श्री जोशी स्वय अपने ही कथन के आदर्श उदाहरण है जिनका जीवन समाज और राष्ट्र की सेवाओ मे पूर्णत सक्रिय है ।

प्रदर्शनी कक्ष—प्रदर्शनी कक्ष का अपना एक मनोवैज्ञानिक महत्त्व है । इसमे रखी विकलाग छात्रो की वस्तुएँ उनमे उत्साहवर्धन करती है । प्रदर्शनी कक्ष जन सामान्य मे विकलागो के प्रति चले आ रहे दृष्टिकोण मे परिवर्तन करता है । इसके द्वारा जो दूरी वर्षो से विकलाग वर्ग के प्रति अनुभव की जा रही है उसे पाटने मे तथा समाज मे उसको प्रतिष्ठा अर्जन के साथ-साथ समाजोपयोगी सदस्य के रूप मे अपनी स्थिति बनाने मे सुगमता होती है । "समाज द्वारा विकलाग को पूर्ण सदस्य के रूप मे मान्यता प्राप्त होना एक बहुत बड़े मूल्य का विकास है ।" (डा० हरि)

सामान्य कक्ष—वर्तमान सदी मे सामान्य कक्ष का महत्त्व विद्यालयीय व्यवस्था की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखता है । "यही वह स्थान है जहाँ छात्र बिना औप-चारिकता के कुछ देर के लिए विश्राम कर सकता है । मस्तिष्क को शिक्षण भार से मुक्त

करके तरोताजा हो सकता है, नयी स्फूर्ति ग्रहण कर सकता है।" (शिव रतन थानवी)

सामान्य कक्ष एव विकलांग—सामान्य छात्र की अपेक्षा विकलाग बालक शीघ्रता मे थकता है। विद्यालय के दिन भर के व्यस्त कार्यक्रम मे वह विश्राम भी चाहता है, एव मुक्त रूप से अपने श्रम का परिहार भी। अत सामान्य कक्ष की उपयोगिता विकलाग विद्यालय मे सामान्य विद्यालय से अधिक है। सामान्य कक्ष मे रेडियो, टेपरिकार्डर, ट्राजिस्टर, टेलिविज़न सैट, ग्रामोफोन, अन्त खेल, (जैसे कैरम, शतरज, भापायी खेल) आदि के अतिरिक्त अन्य मनोरजक खिलौने हो तो अधिक अच्छा है। सामान्य कक्ष सुन्दर एवं सजा हुआ होना चाहिये। मन्द-बुद्धि छात्रो हेतु सामान्य कक्ष मनोरजन के द्वारा शिक्षण का भी कार्य कर सकते हैं। व्यक्तिगत रुचि के अनुसार प्रत्येक छात्र अपना मनोरजन कर सकता है। आवश्यकतानुसार सामान्य कक्ष मे साधन सामग्री मे भी परिवर्तन होते रहने से विकलाग नयापन अनुभव करेंगे।

विकलाग एव खेलकूद

साधारण बालक की ही भाँति विकलाग बालक की रुचियाँ, क्षमता एव जिज्ञासा होती भी है। वह भी खेल-कूद मे भाग लेना चाहता है। गूँगे एव बहरे शारीरिक श्रम के सभी खेल खेल सकते हैं। फुटबाल, बालीबाल, कबड्डी, खो खो इनके प्रिय खेल हो सकते हैं। लगडे कृत्रिम पैरो का प्रयोग मनोरंजन एव खेल के क्षेत्र मे कर सकते हे। "अनुभव एव शोध के आधार पर विकलागो हेतु यह स्वीकार कर लिया गया है कि अन्य औसत बालको के सदृश ही इन्हे भी विकास के अवसर प्रदान करना शिक्षा का अपरिहार्य अग है। अत माता-पिता विकलाग बालको को भार या समस्या बालक नही, अपितु सामान्य बालक के रूप मे ग्रहण करके उन्हे शिक्षित करे। मात्र पुस्तकीय ज्ञान या व्यावसायिक दृष्टि से प्रशिक्षित करने की अपेक्षा यह उत्तम होगा कि विकलागो हेतु भरपूर खेल कूद की सुविधा उपलब्ध हो (श्रीमती चन्द्रपति)

खेलकूद शारीरिक स्फूर्ति के साथ मानसिक स्वस्थता भी प्रदान करते है। एक ही प्रकार के वातावरण मे, व्यस्त विकलाग के सक्रिय अंग तो थकते ही है, उनके अतिरिक्त अन्य अग भी कुन्द हो जाते हैं। उन्हे गतिशील बनाये रखने के लिये खेलकूद का विशिष्ट स्थान है।

विभिन्न सहगामी प्रवृत्तियाँ

विकलाग विद्यालयीय कार्यक्रम मे शारीरिक, मानसिक एव व्यावसायिक कौशल की वृद्धि के साथ-साथ मौलिकता के विकास हेतु अवश्य अवसर प्रदान किए जाने चाहिये। अभिव्यक्ति के विकास एव आवेगात्मक अवस्थाओ के निस्सरण हेतु विभिन्न सहगामी प्रवृत्तियो का आयोजन उत्तम रहता है।

विकलाग साहित्यिक एव सास्कृतिक परिषद्, नाट्य परिषद् या विकलाग परिषद् के तत्वावधान मे, विद्यालय मे विभिन्न कार्यक्रमो की समुचित व्यवस्था निम्नलिखित बिन्दुओ मे स्पष्ट परिलक्षित है —

विभिन्न कार्यक्रम—(विकलांगो द्वारा आयोजनीय)—

१: अभिनय—(शारीरिक एव मानसिक नियन्त्रण एव मनोरजन)

२ विचित्र वेशभूषा—(जनजीवन का परिचय)
३ कवि गोष्ठी—(मौलिक उद्भावना एव स्मृति विकास हेतु)
४ सगीत—(सुगम एव शास्त्रीय)
५ नृत्य—(लोक नृत्य, देशी एव विदेशी)
६ वाद-विवाद (सम सामयिक समस्याओ पर)
७ वन महोत्सव (प्रकृति प्रेम)
८ भ्रमण एव सरस्वती यात्राएँ (राष्ट्र प्रेम एव सद्भावना हेतु)
९ उत्सव एव पर्व (सस्कृति एव आदर्शों मे परिचय)
१० मेले (समाज एव राष्ट्र मे अपने स्वस्थ योगदान हेतु)
११ विकलाग परिषद्—(प्रतिनिधित्व एव उत्तरदायित्व)
१२ विकलाग सहकारी भण्डार (आत्मनिर्भरता)

विकलाग परिषद् समय-समय पर विकलाग सहकारी भण्डार के आय-व्यय की जाँच करके अभिलेख प्रस्तुत करती रहे एव अन्य छात्रो के सुझाव भी आमन्त्रित करती रहे जिससे आयोजनीय कार्यक्रम की व्यावहारिक रुपरेखा निर्मित की जा सके।

विकलांग जलपान गृह

साधारणत जलपान गृह का महत्त्व प्राथमिक विद्यालय से लेकर विशिष्ट विद्यालय एव प्रशिक्षण महाविद्यालयो तक ने स्वीकार कर लिया है। अनिवार्य रूप से जलपान गृह सर्वत्र सक्रिय हैं, परन्तु व्यवस्था, सेवा उपयोगिता एव स्वच्छता की दृष्टि से आपत्ति सर्वत्र है। फिर भी विश्रान्ति, भूख या मानसिक विचलन की अवस्था मे जलपान गृह से दूध, चाय, फल आदि क्रय करके सेवन किये जा सकते हैं। जलपान गृह विकलागो की आवश्यकतानुसार सामग्री रखकर इसे और भी महत्त्वपूर्ण बना सकता है।

विकलाग प्राथमिक चिकित्सा कक्ष

प्राथमिक चिकित्सा सेवा का विकास इस युग की अभूतपूर्व मानवीय सेवा है। आकस्मिक दुर्घटना इतनी दु खद नही है जितना कि तत्काल प्राथमिक सहायता का प्राप्त न होना है। विकलाग बालको की अवस्था और भी सुकोमल है। साधारण ठेस, असन्तुलन, एव अशक्त अग के कारण कभी भी सकट उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसी अवस्था मे प्राथमिक चिकित्सा कक्ष की सेवाओ का तत्काल उपयोग वरदान सिद्ध होगा।

विकलांग एव जिमनेशियम

जिमनेशियम का अपना एक महत्त्व है। शारीरिक अशक्तता की अवस्था मे शक्ति वर्धन का कार्य, एव दुर्बल अग को पुन सशक्त करने हेतु, साधारण व्यायाम . जैसे भार खेंचना, उठाना, हाथ या पैर को गतिशीलता देना आदि का अपना व्यावहारिक महत्त्व है। विकलाग विद्यालय मे जिमनेशियम को उन सभी विशिष्ट उपकरणो से युक्त कर देना चाहिये जिनकी उपयोगिता विकलागो के उपयोग की दृष्टि से आवश्यक है।

अध्यापक की देखभाल मे विकलाग बालक विशेष व्यायाम का, विशेष रूप से अशक्त अगो मे शक्ति वर्धन हेतु, अभ्यास करें। स्वास्थ्य के समुचित एव व्यवस्थित विकास हेतु विकलागो मे जिमनेशियम स्वभाव का विकास भी करना श्रेयस्कर रहेगा जिमनेशियम

स्वभाव से तात्पर्य है जिमनेशियम का शारीरिक स्वास्थ्य के लिए नियमित प्रयोग । जिमनेशियम मे आवश्यक मनोरजन सुविधाएँ भी दी जा सकती है । वही सवातन एव प्रकाश की उत्तम व्यवस्था के साथ जल की भी व्यवस्था होनी चाहिये । इस कक्ष मे रखी अभ्यास सामग्री विकलागो की अवस्थाओ के अनुरूप अवश्य हो ।

विकलाग सहकारी भण्डार —

विकलागो की दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु विकलाग सहकारी भण्डार की स्थापना विकलाग विद्यालय मे होनी चाहिये । इसमे व्यावहारिक प्रशिक्षण के साथ-साथ स्वय विकलाग अपनी निर्मित वस्तुएँ भी बिक्री हेतु रख सकते हैं । हानि एव लाभ से परे, विकलाग सहकारी भण्डार का उद्देश्य बालको को अधिकाधिक उपयोगिता प्रदान करना है । सुविधा की दृष्टि से विकलागो से पाक्षिक आवश्यकताओ की सूची प्राप्त करके सामान का क्रय करना अपव्यय एव बेकार वस्तुओ के बढने से रोकेगा ।

प्राथमिक चिकित्सा कक्ष

विकलाग विद्यालय मे प्राथमिक चिकित्सा कक्ष मे अन्त रोगी शैया व्यवस्था का होना नितान्त समीचीन होगा । आवेगात्मक अवस्था या किसी अग के विकारयुक्त या अचानक दुर्घटना से अत्यधिक गम्भीर स्थिति के उत्पन्न हो जाने पर विकलाग को अतिशीघ्र प्राथमिक चिकित्सा कक्ष मे पहुचा देना चाहिये । यह समस्या कक्षा कालाश के समय भी आ सकती है । सम्भव है कुछ विकलाग नियमित चिकित्सा सेवा के अन्तर्गत भी रहते है । डाक्टरो या विशेषज्ञो के परामर्श पर विकलागो को नियमित स्वास्थ्य निरीक्षण के अधीन किया जा सकता है । ऐसी सभी स्थितियो मे विकलांगो हेतु प्राथमिक चिकित्सा कक्ष की उपयोगिता है ।

विकलाग विद्यालय मे शिक्षा-रत सभी विकलागो के स्वास्थ्य की नियमित जाँच एव निर्देशन के अनुसार शिक्षण के साथ-साथ चिकित्सा व्यवस्था भी आवश्यक है । इस दृष्टि से भी प्राथमिक चिकित्सा कक्ष का विकलाग विद्यालय मे विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

विकलाग छात्रावास

विकलाग विद्यालय की कल्पना आवासीय व्यवस्था के बिना करना विकलाग विद्यालय की विशिष्ट अवस्था को ही स्वीकार न करने के समान है । क्योकि विकलाग बालक घर के वातावरण मे अपने को अलग-अलग अनुभव करता है ।

प्रस्तुत कथन की सत्यता सामुदायिक जीवन दर्शन के परिपेक्ष्य मे खरी उतरती है । सहयोग, सेवा, स्वावलम्बन, सामाजिकता के भावो का उदय छात्रावास जीवन मे सम्भव है । सामुदायिक जीवन का विस्तृत पाठ विकलाग छात्रावास के जीवन मे सहज पढ सकते है । छात्रावास का जीवन उत्तरदायित्व एव कर्तव्यो का मिश्रित जीवन है । यहाँ विकलाग बालक अभ्यास करने के लिए स्वय स्वतन्त्र है ।

विकलांग छात्रावास भवन

विकलाग छात्रावास भवन खुला और सीधा होना चाहिये । कमरो के दरवाजो के दहलीज न हो, जिससे ठोकर लगने का भय न रहे । कमरो मे खिडकी एव अलमारी सरल

प्रकार की बनी हो जिनके खोलने एव बन्द करने मे विकलागो को कठिनाई न हो । इसी प्रकार छात्रावास भवन के सामने रास्ता पेड-पौधो से स्पष्ट अलग होना आवश्यक है ।

छात्रावास भवन मे कक्ष बडे हो तो उत्तम है । एक कक्ष मे ६ विकलागो से लेकर १० विकलागो के लिए स्थान होना चाहिये । विकलागो हेतु छोटे कमरे प्राय सुविधाजनक नही होते । प्रकाश एव वायु की व्यवस्था अन्य छात्रावासो की ही भाँति हो । विद्यालय के एक पार्श्व मे ६० तक छात्रो के लिए आवासीय व्यवस्था हो । यह व्यवस्था विकलाग बालको के अनुपात से बढाई जा सकती है ।

विकलाग छात्रावास उपकरण

विकलागो की स्थिति एव उपयोगिता को दृष्टिगत रखकर छात्रावास मे विकलागो हेतु चारपाई, मेज, कुर्सी व कपडे आदि रखने के लिए अलमारियो की व्यवस्था रहनी नितान्त आवश्यक है । यह उपकरण सहज परिवर्तित किये जा सके, ऐसी व्यवस्था अत्यधिक लाभकारी रहती है । इसी प्रकार ऐसे विकलागो हेतु, जिनका सोते समय गिर जाने का भय है, पार्श्व-अवरोध-चारपाई हो, एव जो पैरो से अपग हैं, उनके लिए नीची चारपाई की व्यवस्था रहे । "विशेष स्मरणीय इसमे यही है कि उपकरण के लिए विकलाग नही है, अपितु विकलागो की सुविधा एव उपयोग हेतु उपकरण है ।" (मा रा पालीवाल) छात्रावास मे जल एव प्रकाश की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये । सुविधा के अतिरिक्त उपयोगिता का सहज पक्ष भी है कि विकलाग बालक जल एव प्रकाश को आसानी से ग्रहण कर सके ।

विकलाग छात्रावास सामान्य कक्ष

मनोरजन, एव सामुदायिक भावना के विकास मे सामान्य कक्ष का महत्त्वपूर्ण योग है । विकलाग अपनी रुचि के अनुसार कक्ष खेल, रेडियो का सुनना, तबला, हरमोनियम तथा अन्य वाद्य यन्त्रो का प्रयोग स्वेच्छा से कर सकें । पत्र-पत्रिकाओ आदि की भी व्यवस्था इसमे हो, इसके अतिरिक्त विकलागो के हित या उपयोग की दृष्टि से अन्य उत्तम सामग्री का भी चयन किया जा सकता है । सामान्य कक्ष मे दीवार के साथ आराम कुर्सियाँ, तख्त जिन पर गद्दे हो, या सोफा हो । सामान्य कक्ष मे अच्छी दरी बिछी हुई होनी चाहिये जहाँ विकलाग अपनी इच्छानुसार वर्गो मे या अपने मित्र विकलागो के साथ चर्चा कर सके ।

विकलाग छात्रावास भोजनालय

विकलाग छात्रावास भोजनालय, छात्रावास से सलग्न होना चाहिये, जहाँ विकलाग सहज रूप से आ जा सके । पाकशाला एव भोजन कक्ष मे सीधा सम्बन्ध होना चाहिये जिससे भोजन गर्म एव शीघ्रता से दिया जा सके । भोजन कक्ष मे स्वच्छता एव अन्य आवश्यक सुविधाओ का पूर्ण प्रबन्ध होना चाहिये । जल विकलाग बालको की सहज पहुंच मे होना चाहिये ।

विकलाग छात्रावास प्रसाधन

विकलाग छात्रावास मे प्रसाधन की व्यवस्था अत्यन्त उत्तम होनी चाहिये । छात्रावास से ही सलग्न प्रसाधन कक्ष होने आवश्यक है । इसमे शौच स्थान एव स्नानागार की

व्यवस्था इस प्रकार हो कि विकलाग इन वस्तुश्रो का सरलता से उपयोग कर सके। प्रसाधन स्थल का श्रागन चिकना या फिसलन वाला नही हो। प्रसाधन स्थल छोटा न हो ताकि श्राना-जाना सुविधापूर्वक हो सके।

विकलांग छात्रावास भवन मे श्रन्य सुविधा

१. **प्रकाश**—शिक्षण की दृष्टि से भवन मे प्रकाश की श्रत्युत्तम सुविधाश्रो का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकाश प्राकृतिक एव कृत्रिम, दोनो ही प्रकार का होना चाहिये। प्रयत्न यह उत्तम होगा कि प्रकाश नियन्त्रित हो ताकि श्रावश्यकता श्रनुसार उसे प्राप्त किया जा सके। शिक्षण मे प्रकाश के बाहुल्य से यह सर्वाधिक समीचीन होगा कि वह चमकहीन हो।

२ **वायु**—प्रकाश ही की भाँति यह उपयुक्त होगा कि छात्रावास भवन मे प्राकृतिक एव कृत्रिम वायु की सुविधा रहे। वायु का विशिष्ट श्रनुपात मे प्राप्त होना जितना श्रावश्यक है उससे श्रधिक महत्त्वपूर्ण है, शुद्ध वायु का प्राप्त होना। उत्तम सवातन व्यवस्था से यह सम्भव है। शुद्ध वायु के प्रभाव से छात्रो मे थकान का न होना एव स्फूर्ति का बना रहना शक्य है।

३ **उद्यान**—छात्रावास के चतुर्दिक लघुवाटिका, घास का मैदान, गमलो मे विभिन्न प्रकार के पौधे, भवन के चतुर्दिक् उत्तम प्रकार के वृक्ष, नीम, पीपल, वड, श्रावला, श्राम, शहतून, श्रशोक, श्रर्जुन, श्रमलताश, कचनार श्रादि के वृक्ष हो। उद्यान मे भी जल एव प्रकाश की व्यवस्था रहे। उद्यान मे विकलाग बालको के बैठने के लिए बैच श्रादि की व्यवस्था भी श्रावश्यक है।

४ **खेल स्थल**—छात्रावास मे श्रन्त खेलो एव बाह्य खेलो का भी यथावश्यक प्रावधान रहना चाहिये। जो भी व्यवस्था या खेल सुविधा विकलाग बालको को प्रदान की जा सके, उचित है। शारीरिक दृष्टि से छोटे या श्रन्य उपकरणो का प्रयोग विकलाग सुविधा पूर्वक कर सकें, एव प्रातः साय व्यायाम, खेल या मनोरजन कर सके, ऐसी वस्तुएँ खेल वेला मे प्राप्त हो।

पर्व एव श्रायोजन

"पर्व हमारी सस्कृति के मूर्त स्वरूप हे, तो उनका श्रायोजन सास्कृतिक विरासत को प्राणवन्त रखना।" डा० हरि शकर शर्मा के इस कथन मे प्राचीन के प्रति एक तादात्म्यता है। विकलाग श्रपने श्राप को इसी तादात्म्यता से भिन्न श्रनुभव करने लगे है, यही कारण है कि वे समाज से श्रलग-थलग जा पडे। दायित्व एव कर्तव्य-बोध की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है कि विकलाग श्रपने को श्रनाथ न समझे। पर्व एव विभिन्न श्रायोजन उन्हे विश्वास के धरातल पर लावेगे, तो दूसरी श्रोर उनमे श्रपनी सभ्यता एव सस्कृति के प्रति एक निष्ठा उत्पन्न होगी। इन पर्वो का श्रायोजन उसी प्रकार सम्पन्न होगा जैसा समाज मे होता श्रा रहा है, परन्तु इनकी व्यवस्था एव स्वरूप विकलाग ही प्रदान करेंगे।

वर्गीकरण की दृष्टि से विकलागो हेतु पर्व एव श्रायोजनो का वर्गीकरण
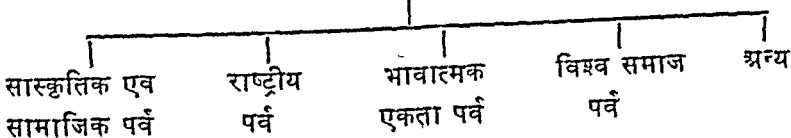
सांस्कृतिक एवं सामाजिक पर्व-दीपावली, होली, वसन्तोत्सव शरदोत्सव एवं क्षेत्रीय या आंचलिक संस्कृति के अनुसार कोई अन्य पर्व भी विकलांगो द्वारा आयोजित किये जा सकते है। जो इस वर्ग को संस्कृति और समाज से जोडेगा।

राष्ट्रीय पर्व—गणतन्त्र दिवस, स्वतन्त्रता दिवस, शहीद दिवस, अध्यापक दिवस, बाल दिवस आदि पर्वो का आयोजन विकलांग विद्यालय अच्छे स्तर पर कर सकते है। इससे विकलांग अपने को राष्ट्रीय इकाई के रूप मे अनुभव करेंगे।

भावात्मक एकता पर्व—रक्षा बन्धन, ईद, बडादिन, वैसाखी आदि एकता देते हैं। इन अवसरो पर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आपस मे एक दूसरे की मगल कामना करते हैं।

विश्व समाज पर्व—विश्व स्वास्थ्य दिवस, विश्व विकलांग दिवस आदि के द्वारा विश्व बन्धुत्व के दृष्टिकोण को उजागर कर सकते है।

अन्य— विकलांग छात्र ऋषि अष्टावक्र, सूर, लुई ब्रेल आदि के सम्बन्ध मे विशिष्ट आयोजन करके समाज के सम्मुख एक मूल्यांकन प्रस्तुत कर सकते हैं।

पर्व एव आयोजन की परम्परा के निर्वाहन की उपयोगिता के सन्दर्भ मे प्रो० ओम-प्रकाश शर्मा का कहना है कि "पर्वो का आयोजन विचारो एव भावो का शुद्धीकरण ही नही करता अपितु उनसे वैचारिक विकास, दृष्टिकोण मे उदारता एव व्यक्ति और उसके जीवन मे आस्था उत्पन्न करके उसे सक्रिय बनाता है।"

पर्व एव आयोजनो के अभाव मे विद्यालय मात्र-यन्त्र-सभ्यता से अधिक नही है, जबकि विकलांगो को सहयोग, सहानुभूति एव उत्साहवर्धन की आवश्यकता है। अत विकलांग विद्यालय मे उन समस्त पर्वों एव आयोजनो का सचालन एक बडे अभाव और दूरी को समाप्त करने वाला होगा।

सार संक्षेप (विकलांग विद्यालय)

दुर्घटना, कुपोषण, यौन विकृतियाँ, बीमारी, प्राकृतिक-प्रकोप आदि ने विकलांगो की प्रत्येक स्तर पर वृद्धि की है। अत यह आवश्यक है कि विशेष रूप से विकलांगो हेतु ही विद्यालयो का निर्माण हो।

इन विद्यालयों मे पाँच विशिष्ट सुविधाएँ होनी अपेक्षित हैं —

१ वैज्ञानिक विधि से शिक्षण
२ प्रशिक्षित अध्यापक
३ जीवन से समन्वित शिक्षण
४ आवासीय व्यवस्था
५. मनोरजन सुविधाएँ।

विकलांग विद्यालय भवन सुविधा से युक्त (जल, विद्युत्, वायु) हो। पुस्तकालय भवन उद्योग या कार्यकक्ष, शिक्षण कक्ष, कक्षा उपकरण, विक्रय कक्ष, सामान्य कक्ष, चिकित्सा कक्ष, सभा भवन एव शौच स्थान आदि की इसमें समुचित व्यवस्था हो।

क्रीडागण एव खेल कूद के मैदान, एव अन्त कक्ष खेलो की व्यवस्था भी आवश्यक है। खेलकूद के माध्यम से ऐसा वातावरण उत्पन्न हो कि विकलांग सामाजिक जीवन मे अपना अनुकूलन करने मे सक्षम हो सकें।

शारीरिक स्फूर्ति, कार्य-क्षमता की वृद्धि, मानसिक स्वस्थता, थकान से मुक्ति जिस स्वाभाविक विधि से खेल कूद के माध्यम से सम्भव है, उतनी अन्य से नही।

सहगामी प्रवृत्तिया—आवेगात्मक अवस्थाओ के निस्सरण हेतु निम्नलिखित विभिन्न आयोजनो की व्यवस्था की जानी चाहिये ।

अभिनय
विचित्र वेश भूषा
विभिन्न गोष्ठियाँ
विभिन्न प्रतियोगिताएँ
विभिन्न आयोजनीय दिवस, पर्व एव जयन्तियाँ
विभिन्न खेलकूद
भ्रमण एव सरस्वती यात्राएँ

विकलागो हेतु जलपान गृह की सुविधा विद्यालय मे अवश्य रहनी चाहिये।

विकलाग विद्यालय मे प्राथमिक चिकित्सा कक्ष की सुविधाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसके लिए चिकित्सको की नियमित सेवाओ की उचित व्यवस्था समीचीन है। विकलाग बालक की शारीरिक अशक्तता, थकान या पीडा की स्थिति मे शीघ्रातिशीघ्र प्राथमिक उपचार प्राप्त होना विकलाग के लिए वरदान है। स्वास्थ्य की नियमित जांच भी होती रहनी चाहिये ।

विकलाग जिमनेशियम विकलागो की आवश्यकता, अभ्यास और क्रियाओ के अनुसार होना चाहिये। अभ्यास व्यवस्था विशेष अध्यापक के अधीन रहनी चाहिये एव विकलाग भी पूर्ण अवेक्षा से काम लें।

विकलाग सहकारी भण्डार मे विकलागो की उपयोगिता की वस्तुएँ क्रय हेतु एव उनकी स्व-निर्मित वस्तुएँ विक्रय हेतु रखी जायें।

छात्रावास आवासीय दृष्टि से सुविधा सम्पन्न हो, एव भोजनालय व्यवस्था उत्तम हो। स्वच्छता एव शुद्धता का पूर्ण ध्यान रखा जावे ।

प्रसाधन सुविधा प्रकाश एव वायु की दृष्टि से उत्तम हो, इसके साथ ही स्वच्छ दुर्गन्धरहित फर्श चिकने न हो ।

अन्य सुविधा—
प्रकाश—चमक हीन एव पर्याप्त हो।
वायु —उत्तम सवातन व्यवस्था हो।
जल —स्वच्छ हो
उद्यान—उत्तम वृक्ष एव पौधे (नीम, तुलसी, वड, पीपल, अर्जुन) आदि हो।
खेल स्थल—स्वच्छ एव दूर्वा-दल पूर्ण हो।
पर्व एव आयोजन वैचारिक शुद्धि के साथ व्यावहारिक पक्ष भी उजागर करे।

IV विकलांग शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम एव शिक्षण विधि

पाठ्यक्रम, शिक्षण की क्रमागत इकाई के रूप मे, शिक्षण की सीढियाँ है, जो सहज भाव से बालको (औसत स्वस्थ या विकलाग) मे सुरक्षा, व्यक्तित्व का विकास,

आत्म-निर्भरता, सामाजिक अनुकूलन, राष्ट्रीय समृद्धि की वृद्धि एव सास्कृतिक सरक्षण की सहज दृष्टि प्रदान करती हैं। पाठ्यक्रम सीखने और सिखाने की सचेष्ट, पूर्व ज्ञान स्तर को दृष्टिगत रख एक व्यवस्थित प्रक्रिया है।

विकलाग हेतु पाठ्यक्रम निर्मित करते समय वे सभी परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर रहे जो विकलाग बालक की आवश्यकता से सम्बन्धित हैं। प्रत्येक विकलाग मे प्रजातन्त्र के मूल्यो को समझने की क्षमता उत्पन्न हो, एव पाठ्यक्रम मे वैज्ञानिक एव मनोवैज्ञानिक अवस्था के अनुसार विषय वस्तु उपलब्ध की जाये।

विकलाग शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम के प्रमुख आधार

१. शारीरिक विकलागता—शारीरिक दृष्टि से विकलाग बालक की अवस्था, आवश्यकता, कार्यक्षमता एव कार्य के प्रकार का आगिक अशक्तता के कारण तत्क्षण पता चल जाता है। अत अन्धे, बहरे, गूगे, अपग (लूले, लगडे) आदि के लिए सामान्यत शारीरिक विकलागता से सम्बन्धित पाठ्यक्रम अत्यन्त सहज है। केवल शिक्षण पद्धति एव विशिष्ट उपकरण की उपयोगिता अपना विशिष्ट प्रभाव रखती है। अभ्यास से कौशल क्षमता वढकर प्रभावित अग की कार्य शक्ति स्वस्थ अग के समान हो सकती है।

२. मानसिक स्थिति—मन्द बुद्धि, सामान्य बुद्धि एव जड बुद्धि बालको हेतु पाठ्यक्रम की सरचना विषय वस्तु की दृष्टि से हो।

३ आवेगात्मक अवस्था—सामाजिक अनुकूलन एव वैयक्तिक सन्तुष्टि के साथ आवेगात्मक अवस्था का समायोजन अच्छे पाठ्यक्रम का गुण है। विभिन्न आवेगात्मक अवस्था मे ग्रसित बालक असामान्य बालको की श्रेणी मे आ जाते है। दिवास्वप्न, मनोरचनाओ की अनिपूर्ति एव मनोवृत्तियो मे प्रमादावस्था प्राय अपराध वृत्ति को विकसित कर देती है। अत आवेगात्मक अवस्थाओ का स्थानान्तरण, सयुक्तीकरण एव उत्कर्ष आवश्यक है।

मूलत विकलाग शिक्षा का पाठ्यक्रम बालक की समस्या और विकलाग-बाल-रुचि का अध्ययन करके ही निर्धारित किया जा सकता है। इससे विकलाग के स्वभाव एव रुचियो मे परिष्कार होकर स्वावलम्बन का विकास होगा, एव भावी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये समर्थता उत्पन्न होगी। विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे पाठ्यक्रम की सोद्देश्यता एव उपयोगिता की सम्भावनाओ को अनुभव करके निर्धारित करना अधिक श्रेयस्कर होगा।

विकलाग शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम विभाजन

जहाँ विकलाग शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम विभाजन सामान्य बालको हेतु निर्मित पाठ्यक्रमानुसार हो, वहाँ उसमे कतिपय विशिष्ट विन्दुओ के समावेश का भी अपना औचित्य है। इस दृष्टि से निम्नवर्णित दस दिशि आधार महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा —

विकलाग शिक्षा पाठ्यक्रम का विशिष्ट पक्ष

विकलाग शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय विशिष्ट ध्यातव्य पक्ष यह है कि सम्पूर्ण पाठ्यक्रम विकलाग के जीवन से जुडा होना चाहिये। वर्तमान एव भविष्य का ऐसा समायोजन पाठ्यक्रम मे हो कि विकलाग भावी जीवन के प्रति आश्वस्त ही नही हो अपितु वे जीवन के प्रति आकर्षण भी ग्रहण करे, अपने को मानवीय उत्तरदायित्वो के प्रति सजग अनुभव करे एव विश्व प्रगति मे सक्रिय सदस्य के रूप मे अपना योगदान दे सके।

विकलाग बालक एव शिक्षण पद्धति

विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य करने वाले अध्यापको एव विशेषज्ञो का यह अभिमत है कि मानसिक विकलागो को छोडकर विकलाग बालक, शिक्षण की दृष्टि से, अन्य बालको के समान ही होते है। परन्तु रोगग्रस्त एव मानसिक विकृति से युक्त विकलाग बालक इस श्रेणी मे नही आते। अन्तर केवल पद्धति का हे। जैसे अन्धो को उभरे हुए विन्दु-सकेतो के माध्यम से, या स्पर्श-वाचन विधि के माध्यम से, शिक्षित किया जाता है। शारीरिक अवस्थाओ के सचालन की दृष्टि मे नेत्रहीन एव नेत्रवान बालको मे पर्याप्त अन्तर होता है। पढने की दृष्टि मे नेत्रहीनो के लिये ब्रेल लिपि अत्यन्त सफल लिपि अनुभव की गई है। प्राचीन धारणा यह थी कि अन्धे व्यक्तियो मे कुछ विशेष चमत्कारी शक्ति होती है। परन्तु शोध के उपरान्त इस धारणा को मिथ्या पाया गया। पढाई के अतिरिक्त अन्धे बालक बुनाई जैसे कार्यों मे निपुणता पुरस्कार तक ग्रहण कर चुके है। परन्तु, इसका कारण कोई चमत्कार नही, वरन् उनका कार्य-सलग्न रहना हे।

विकलाग शिक्षण पद्धति का उद्देश्य बालक की अपूर्ण, या पूर्णत अशक्त, इन्द्रियो की कार्य-शक्ति के अभाव को, अन्य ज्ञानेन्द्रियो या कर्मेन्द्रियो द्वारा क्षमतानुसार अधिकतम समुन्नत करना है। अत ऐसी शिक्षण पद्धति का सहारा लिया जाये जिससे अशक्त इन्द्रियो की कार्य शक्ति के अभाव की पूर्ति हो सके परन्तु इसके साथ ही विषय वस्तु को गौण नही होने देना चाहिये। † "शिक्षण विधि आवश्यक हे, पर उतनी नही जितनी कि विषयवस्तु" श्रीमती इन्दिरा गाँधी के विचार मे नूतन ज्ञान की ही सार्थकता है जबकि पद्धति एक माध्यम मात्र है।

विकलाग शिक्षण पद्धति विशेष कौशल के माध्यम से इस अभाव को दूर करने मे

सक्षम है। यह कौशल है एक ज्ञानेन्द्रिय की कार्य-क्षमता को दूसरी ज्ञानेन्द्रिय को समर्पित कर देना, जैसे, अन्धे बालक की स्पर्श शक्ति को विकसित करके उसे पढने योग्य बना देना। इस निमित्त टेलर या क्यूवोरिथ्म, गणित पट्टियाँ विशेष बीजगणित चिह्नो के माध्यम से पढना या जानना सम्भव है। रासायनिक पदार्थों के सकेत, सामान्य स्पर्श द्वारा भाषा के सकेत, स्पष्ट रूप से हाथ की स्पर्श शक्ति को विकसित करना है। अभ्यास एव प्रशिक्षण के माध्यम से अन्धे बालक वस्तुओ, जीवो, पेड-पौधो, मार्गो एव व्यक्तियो को वैसे ही जानने लग जाते हैं, जैसे, नेत्र युक्त व्यक्ति।

शिक्षाविद् यह कहते है कि यदि विकलाग को निष्क्रिय कर दिया तो उसकी शेष कार्य क्षमता, प्रेरणा शक्ति, जिज्ञासा, उत्साह, स्पर्श-ज्ञान शक्ति एव घ्राण शक्ति का दमन हो जायेगा। विकलाग बालक की शेष स्वस्थ गतियाँ भी कुण्ठित होने लगेगी। यह आवश्यक है कि विकलागो हेतु प्रयुक्त शिक्षण पद्धति उनमे स्वतन्त्र विचरण व्यवहार एव अवकाश के उपयोग को सक्रियता प्रदान करे। वा० गो० तिवारी के शब्दो मे, "शिक्षण पद्धति सीखने की प्रक्रिया मे वह दिशा है जो बाधा स्थलो मे सीखने वाले को उत्साही एव जिज्ञासु बनाये रखती है।" सकेत और स्पर्श की भाषा विकलागो को विचार ग्रहण, अर्थ ग्रहण एव भाव ग्रहण करने मे सहायता देती है।

विकलागो हेतु प्रदत्त शिक्षण पद्धति की विशेषता मे आगिक सचालन के अभ्यास के साथ-साथ विचार, व्यवहार एव मानसिक विकास का परिष्कार भी अत्यावश्यक है। अन्धे छात्रो हेतु श्रवण उपकरण, रेडियो, टेप रिकार्डर, ग्रामोफोन आदि का शिक्षण मे प्रयोग किया जाये। इसी प्रकार गूँगे एव बहरो के लिये दृश्य उपकरणो का शिक्षण मे प्रयोग सहज सम्भव है, इसमे मॉडल चार्ट, दृश्य चित्र, सिनेमा, प्रोजेक्टर, स्लाइड्स आदि के माध्यम से शिक्षण सम्भव हो सकता है। श्रवण-सहायक (विद्युत) इतना सशक्त होता है कि वज्र बहरा भी सुनने लग जाता है एव इसके प्रयोग से बोलने के लिये स्वत प्रयत्न सम्भव हो जाता है। कृत्रिम हाथ-पैर व्यक्तिगत अग विकृति को सचालित करने के लिये स्थायी रूप से सहयोगी अग के रूप मे अभ्यास क्रियाएँ ग्रहण करते हैं, जिससे शिक्षण मे कौशल क्षमताओं का विकास हो सके।

प्रस्तुत सन्दर्भ मे कतिपय विशिष्ट शिक्षण पद्धतियो का उल्लेख विकलाग शिक्षण हेतु समीचीन होगा। यह शिक्षण पद्धति विकलागो के विधिवत् वर्गीकरण के उपरान्त ही प्रयुक्त की जानी चाहिये। प्रो० सन्त कुमार के शब्दो मे "प्रवाह युक्त शिक्षण पद्धति-विशेष का अनुकरण नही करता, फिर भी शिक्षक को विभिन्न शिक्षण पद्धतियो का ज्ञान एव उपयोग आना ही चाहिये।"

विकलाग शिक्षण हेतु प्रमुख शिक्षण पद्धतियाँ

विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे अध्यापक के लिये शिक्षण पद्धतियो के ज्ञान का जितना महत्त्व है उससे कही अधिक महत्त्वपूर्ण स्थिति यह है कि वह विभिन्न पाठन विषयो एव विकलाग की अवस्था का तालमेल बैठाकर शिक्षण प्रदान करे।" प्रो० ईश्वर भाई पटेल का यह दृष्टिकोण विकलाग शिक्षण पद्धति का व्यावहारिक धरातल कहा जायेगा। अत इस पक्ष को ध्यान मे रखते हुये विकलाग शिक्षण के लिये निम्नलिखित शिक्षण पद्धतियाँ प्रयुक्त की जा सकती हैं :—

१. बुनियादी शिक्षण विधि—श्री टी० एस० अविनाश लिगम् ने बुनियादी शिक्षा को महात्मा गांधी द्वारा राष्ट्र को उपहार माना है। बुनियादी शिक्षण पद्धति एक व्यावहारिक शिक्षण पद्धति है, जो विभिन्न विषयो के साथ आधारभूत उद्योग को माध्यम मानकर बालक को आत्मनिर्भर बनाती है, उसे समाज से जोडती है।

२. क्रियात्मक विधि—यह विधि सहज प्रवृत्तियो को प्रेरक शक्ति के साथ मिलकर शिक्षण मे ऊब को समाप्त करती है। विकलाग बालक इस माध्यम से स्वाभाविक अनुभव ग्रहण करने लगता है।

३. वैयक्तिक एव कक्षा शिक्षण विधि—कक्षा शिक्षण विधि अमनोवैज्ञानिक है एव विभिन्न प्रकार की प्रवृति के विकलागो के प्रति न्याय नही करती। साधन, सुविधा एव स्वाभाविक शिक्षण की दृष्टि से वैयक्तिक शिक्षण अत्यन्त प्राकृतिक या मनोवैज्ञानिक है, यद्यपि सामाजिक समजन की दृष्टि से कक्षा शिक्षण पद्धति का अपना एक स्थान है।

डॉ० रामचन्द्र इस पद्धति से "करके सीखना" मे व्यावसायिक कौशल के नैसर्गिक प्रवाह को देखते हैं। इस पद्धति मे बुनियादी शिक्षण विधि, मान्तेसरी विधि, किन्डर गार्टन विधि, खेल विधि, प्रोजेक्ट विधि, डाल्टन विधि आदि विधियाँ आ सकती हैं।

४. आधार शिक्षण विधि—जैसे ग्रामो के विकास के लिये कुञ्जी ग्राम योजना (विलेज की स्कीम) का स्वरूप निर्धारित किया गया है, उसी प्रकार इस विधि मे विकलागों के लिये उनकी रुचि एव क्षमता के अनुसार किसी विषय एव उद्योग को आधार (बेस) मान लिया जाता है, एव उसको अन्य विषयो से समन्वित या सानुबद्ध करके शिक्षण दिया जाता है। मध्यम प्रकार के विकलागो के लिये यह विधि उत्तम है क्योकि इस विधि मे तुलना पक्ष अधिक सबल है। घर, विद्यालय एव समाज मे एक सम्बन्ध स्थापित करके आधार विषय या उद्योग का चयन, कार्यक्रम एव परिणाम को प्रतिपादित करती है।

५. आगमन एवं निगमन विधि—'आगमन विधि मे पहले बहुत से उदाहरण प्रस्तुत करके निष्कर्ष प्रतिपादित किया जाता है एव निगमन विधि सिद्धान्त को प्रस्तुत करके उसके आधार पर विषय या कार्य का स्पष्टीकरण करती है।" (प्रो० ओम प्रकाश शर्मा)। साधारण विकलांगो के लिये यह विधि अत्यधिक लाभदायक है।

६. खेल विधि—रचनात्मक या कौशलपरक क्रियाओ को समुन्नत करने के लिये यह विधि उपयोगी है। इसके द्वारा विकलागो मे सगीत, शारीरिक व्यायाम, अभिनय, मनोरजन, कृषि, बागवानी या अन्य उद्योगो के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है। विकलागो के लिये यह विधि अच्छी है। इससे युयुत्सा की प्रवृत्ति परिष्कृत होती है। मानसिक, भावात्मक एव सामाजिक विकलागता के परिहार के लिये यह विधि उत्तम है। इसमे सीखने के प्रति स्थायी उत्साह एव स्फूर्ति की प्राप्ति होती है। यशदेव शल्य के शब्दो मे "विकलाग के शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य के लिये खेल विधि अनुकरणीय विधि है।"

७. ह्यूरिस्टिक विधि—स्पेन्सर के शब्दो मे यह ऐसी विधि है जो विद्यार्थी को अधिकाधिक सीखने के लिये अभिप्रेरित करती है। ह्यूरिस्टिक का शाब्दिक अर्थ भी "स्वय खोजना" है। मानसिक एव शारीरिक विकास की प्रक्रिया मे यह विधि अपने मे खेल विधि,

आगमन विधि एव करके सीखने की विधि, क्रिया विधि का वैज्ञानिक समावेश करती है। अत यह विकलाग मे सीखने के प्रति विश्वास की भावना को दृढ करके अनुकूल परिणाम देने वाली है।

८ योजना (प्रोजेक्ट) विधि—जॉन ड्यूवी एव डब्ल्यू० एच० क्लिपैट्रिक ने इस विधि को निश्चित रूप प्रदान किया। एक बड़ी इकाई के माध्यम से यह सामाजिक वातावरण मे सम्पन्न किया जाने वाला उद्देश्यपूर्ण कार्य है, जिसे बालक, चाहे वह विकलाग ही क्यो न हो, एक उत्तरदायित्व के साथ करने की ओर अग्रसर होता है। व्यक्तिगत विभिन्नताओ का ध्यान रखती हुई, यह पद्धति बाल-केन्द्रित है। कार्य समाप्ति पर कार्य अभिलेख तैयार करना इस पद्धति की विशेषता है।

९. डाल्टन विधि—कु० पार्क हर्स्ट ने कार्य को शीघ्र सम्पन्न करने की दृष्टि से इस पद्धति को आरम्भ किया। विकलागो के लिये यह विधि इस रूप मे अच्छी है कि सीखने और सिखाने की क्रियाओ मे एकता स्थापित करके समाज के ही सदृश कार्य करती है। यह विधि विकलागो हेतु इस दृष्टि से हितकर है कि वे अपनी वैयक्तिक इच्छा या सुविधा के अनुसार कार्य करने मे स्वतन्त्र है। औपचारिकता से परे, साथी बालको मे रह कर, विकलाग बालक इस विधि द्वारा अपने परिश्रम का पुरस्कार प्राप्त कर सकता है।

इस विधि मे सामूहिक दायित्व भी सौंपा जाता है, जिससे एक ही प्रकार के विकलाग वर्ग मे सहयोग, सहायता, स्वार्थहीनता, सहृदयता, कार्य विभाजन जैसे सामाजिक मूल्यो का विकास सम्भव है। इस विधि मे सम्पूर्ण कार्य एक निश्चित अनुबन्ध के अन्तर्गत चलता है।

१०. मान्तेसरी एव किण्डर गार्टन विधि–राजकीय अन्ध विद्यालय बीकानेर(राज) के भूतपूर्व आचार्य श्री राम प्रसाद सहल वाल वर्ग के लिये इन विधियो की सफलता का जनक अध्यापक को मानते हैं। कर्मेन्द्रियो एव ज्ञानेन्द्रियो के प्रशिक्षण हेतु इन दोनो ही विधियो मे अध्ययन की तत्परता एवं अभ्यास की निपुणता अध्यापक के निर्देशन पर निर्भर करती है। डॉक्टर मान्तेसरी ने, जो स्वयं चिकित्सक थी, मूलत जिस विधि को मन्द बुद्धि बालको के लिये आरम्भ किया था किन्तु उसे आज स्वस्थ बालको के लिये ग्रहण कर लिया गया है। वस्तुत यह विधि विकलाग बालक के लिये उपयोगी है। इस विधि मे प्रशिक्षण द्वारा इन्द्रिय चेतना जाग्रत की जाती है, यथा—त्वचा से स्पर्श, नासिका से घ्राण, चक्षु से दृश्य, जिह्वा से स्वाद, कर्ण से ध्वनि के वैविध्य की पहचान की जाती है।

११. इकाई योजना विधि—"यह विधि अपने ठोस परिणामो के फलस्वरूप सर्वाधिक अपनाई जा रही है।" (डॉ० के० कुमार) इस विधि मे शिक्षण विषय के यथोचित पक्ष को समग्रता प्रदान कर दी जाती है। यही समग्रता एक इकाई कहलाती है। जेम्स एम० ली, थामस एम० रिस्क, नेलसन एल० बोसिंग आदि शिक्षाविदो ने पाठ्य इकाई को पूर्व नियोजित समस्या, क्रियाओ एव वातावरण के अनुसार सगठित करके वाछित परिणाम पर आधारित माना है। सम्भवत इकाई स्वय मे शिक्षण की विधि नही, अपितु शिक्षण की योजना है। डॉ० श्याम लाल कौशिक के शब्दो मे, "इकाई वैयक्तिक विभिन्नता, उद्देश्य, विषयवस्तु एव पूर्व अभ्यास से सम्बन्धित एक संगठनात्मक स्थिति है जो सीखने मे कठिनाई और कुशलता का स्तर दर्शाती रहती है।" विकलागो हेतु यह विधि प्रभावशाली है।—

१२. हरबर्ट विधि—शारीरिक दृष्टि से विकलाग एवं मानसिक दृष्टि से स्वस्थ बालको हेतु यह विधि अच्छी है। इस विधि मे निश्चित व्यवस्था, पूर्व ज्ञान से शिक्षण का सम्बन्ध जोडते हुये नवीन विषय का स्वरूप स्पष्ट होता है। भारत के सभी शिक्षा महाविद्यालयो मे प्राय यही पद्धति प्रचलित है। इसमे पाँच पद है —

(क) प्रस्तावना (विषय परिचय)
(ख) विषय प्रवेश (प्रस्तुतीकरण)
(ग) तुलना
(घ) सामान्यीकरण, एव
(ङ) अर्जित ज्ञान का उपयोग।

डॉ० सरनामसिह के विचार मे, "ज्ञानार्जन के लिये यह व्यवस्थित एव क्रमबद्ध बहु प्रचलित विधि है।"

१३. औपनिषदक विधि—गुरुकुलीय व्यवस्था मे जिज्ञासा शमन प्रमुख था। महात्मा सुकरात के प्रवचनो की विधि भी प्रश्नोत्तर या समस्या समाधान की श्रेणी मे आती है। प्राय विश्वविद्यालय एव उच्च स्तर पर यह सफल विधि कही जा सकती है। मानसिक विकलागो हेतु इनका उपयोग सम्भव नही है। गुरुकुलीय पद्धति मे शिष्य गुरु के निकट श्रद्धा से ज्ञानार्जन करता है।

१४. देक्राली विधि—डॉ० देक्राली ने विकलांगो के लिये ब्रुसेल्स मे एक विद्यालय आरम्भ किया एव उन्होंने कुछ वर्ष बाद स्वस्थ बालको के लिये दूसरा विद्यालय खोलकर एक मध्य पद्धति को जन्म दिया। देक्राली स्वय चिकित्सक थे, अत विकलागो को स्वजीवन एव सामाजिक समजन के लिये तैयार करना उनका प्रमुख लक्ष्य था। अनुभव, निरीक्षण एव परीक्षण इस पद्धति की प्रमुख विशेषताये है।

१५ विनेटका विधि—व्यावसायिक प्रशिक्षण इस विधि का मुख्य आधार है। विकलाग अपनी रुचि या क्षमता के अनुसार कार्य सीखकर सुरक्षा अनुभव करता है। इस विधि मे लगभग चालीस उद्योग कार्य सम्मिलित है। इस विधि की विशिष्टता यह है कि इस विधि मे मनोरोग चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक एव चिकित्सक की बालको हेतु स्थायी व्यवस्था होती है।

१६. स्प्रिगफील्ड विधि—सामाजिक विकलागता को समाप्त करने के लिये यह विधि उपयोगी है। इसमे जनतान्त्रिक, असास्कृतिक, मानव, समूह एव विभिन्नताओ मे ऐक्य ग्रहण करके बिना वर्ग, वर्ण, जाति या रग भेद के बालक एक साथ अध्ययन करते हैं।

१७ गैरी विधि—इस विधि मे विद्यालय का समय ८ से १० घण्टे का रहता है। विकलागो हेतु यह विधि थका देने वाली और कष्टकर होगी। अत इसका अपना महत्त्व होते हुये भी यह उपयोगी नही है।

(विशेष—विनेटका, स्प्रिगफील्ड एव गैरी, तीनो ही नगरो के नाम हैं।)

अध्यापन, अध्ययन एव अनुभव द्वारा किसी विषय का ज्ञान या कौशल प्राप्त कर लेना या अधिगम की वह सहज प्रक्रिया जो विकलांग के अनुभव एव व्यवहार मे शोधन, वर्द्धन या परिवर्तन कर दे या अभिरुचियो का मार्गान्तरीकरण करदे—एक प्रभावी शिक्षण

पद्धति पर निर्भर करती है। बालक या छात्र मे अभिरुचियो के द्वन्द्व को अभिभावक, अध्यापक या चिकित्सक मनोद्वेगीय अवस्था मान लेते हैं। यही अभिरुचियो का द्वन्द्व बालक मे एक ग्रन्थि को जन्म दे देता है। यही ग्रन्थि उसके मनोसामाजिक विकास मे बाधक होती है। इस सन्दर्भ मे भगतराम मित्र का कथन अवलोकनीय है, "बालक विकलाग हो या स्वस्थ, इनकी अपनी पृथक् भाव-भूमि, अभिवृत्ति, जीवन दिशा एव कार्य-प्रणाली होती है, जो साधारण अध्यापक को झकझोड देती है, एव यह बालक समस्या-बालक बन जाते है।" इस अर्थ मे विभिन्न शिक्षण पद्धतियो का विशिष्ट महत्त्व, विशिष्ट वातावरण एव छात्र की ग्रहणीय अवस्थाओ से है।

सहज रूप से विकलाग शिक्षण के क्षेत्र मे वही शिक्षण पद्धति सफल हो सकती है जो छात्र की प्रेरणा, रुचि, क्षमता एव सीमाओ का स्पर्श करे एव विकलागो के लिये उन्ही के परिवेश मे दक्षता एव विकास की दिशाएँ खोले।

विकलाग शिक्षा एवं दृश्य-श्रव्य उपकरण

शिक्षण को अधिकाधिक प्रभावी बनाने के लिये ज्ञानेन्द्रियो का उद्दीपन आवश्यक है। गूँगे और बहरे बालको को छोड दें, तो अन्य विशिष्ट परिस्थिति भारत मे श्रवण-उद्दीपन ही शिक्षण का आधार है। विपिनविहारी वाजपेयी का कहना है कि "शिक्षक ज्ञानेन्द्रियो को समग्र रूप मे उद्दीप्त करके शिक्षण मे वाछित सफलता प्राप्त कर सकता है, और यह सम्भव है विभिन्न दृश्य-श्रव्य उपकरणो के प्रयोग से।" इनके द्वारा आकृति, भेद, अन्तर, रग, तुलना, विशिष्ट अवस्था, बनावट आदि स्पष्ट, सुनिश्चित, मूलाकृति के रूप मे दर्शाये जा सकते हैं।

किसी भी ज्ञान का बोध एव प्रतिधारण ज्ञानेन्द्रियो व कर्मेन्द्रियो के समन्वित प्रभाव से तत्परता ग्रहण करता है। मानसिक एव पैशिक थकान को परे रखने मे दृश्य-श्रव्य उपकरणो की भूमिका शिक्षण मे एकमत होकर स्वीकार कर ली गई है। विशेषकर विकलाग बालक के शिक्षण मे ये अभिप्रेरक का कार्य करते है।

प्रमुख दृश्य-श्रव्य उपकरण एव विकलाग

इन उपकरणो को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है —

१. दृश्य उपकरण
२ श्रव्य उपकरण
३. दृश्य-श्रव्य उपकरण :

१. दृश्य उपकरण—चित्र, रेखाचित्र, मॉडल, चित्र दीप (मैजिक लैन्टर्न) चार्ट, फोटो, प्रोजेक्टर, चित्र विस्तारक (एपिडियोस्कोप), मानचित्र, पट आदि।

२. श्रव्य उपकरण—टेप रिकार्डर, ग्रामोफोन, रेडियो, लिग्वाफोन आदि।

३. दृश्य एवं श्रव्य उपकरण—सिनेमा, टेलिविजन एव अन्य।

दृश्य-श्रव्य उपकरण विकलाग शिक्षा की रीढ

दृश्य उपकरणो की यह विशेषता है कि यह सस्ते, समय या शिक्षण की आवश्यकतानुसार, बनाये गये होते है। इनका प्रयोग अध्यापक एवं छात्र अपनी सुविधा से कर सकते हैं। छात्र स्वय भी उपयोगितानुसार इनका निर्माण कर सकते हैं।

श्रव्य एवं दृश्य-श्रव्य उपकरण—भाषा शिक्षण मे लिग्वाफोन, टेप रिकार्डर या ग्रामोफोन महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। दृश्य-श्रव्य उपकरण के रूप मे सिनेमा एव टेलिविजन आकर्षण के साथ घटनाओ एव स्थितियो का सजीव ज्ञान प्रस्तुत करते हैं।

नियमित अध्ययन क्रम मे दृश्य-श्रव्य उपकरणो का स्वाभाविक प्रयोग अपेक्षित परिणाम देने वाला है। विकलाग शिक्षण मे इनका उपयोग एक बडे अभाव की पूर्ति है।

सार संक्षेप (विकलांग शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधि)

पाठ्यक्रम का क्षेत्र

— शारीरिक क्षमता का विकास
— आजीविकोपार्जन
— प्रजातन्त्रात्मकता
— सामाजिक समजन
— मनोरजन
— सौन्दर्य अभिवृद्धि
— सृजनात्मकता
— स्वभाव निर्माण

वर्तमान एव भविष्य का ऐसा समायोजन हो, जिसमे बालक भविष्य के प्रति आश्वस्त हो। उसे जीवन जीने मे एक आकर्षण दिखलाई पडे।

शिक्षण पद्धति शारीरिक विकलागता, मानसिक विकलागता एव आवेगात्मक विकारो से युक्त बालको का अलग-अलग वर्गीकरण करके उनकी अशक्त इन्द्रियो की कार्य-क्षमता बढाने हेतु साधारण अभ्यास प्रक्रियाएँ अपनाना। मानसिक विकलागता मे साधारण श्रम, विश्राम एव सरल माध्यम से ज्ञान देना, एव आवेगात्मक स्थिति मे उपचार और अध्यापन साथ-साथ चलाना हितकर है। विशिष्ट पद्धतियो को भी अपनाया जावे।

विकलाग शिक्षण

अनवरत अभ्यास एव प्रशिक्षण कुण्ठित शक्तियो को चेतना प्रदान करेगा। "निष्क्रियता शिक्षण नही है, शिक्षण तो क्रियात्मक है।" सुरेन्द्र के इस कथन मे सतत कर्माभिरत रहना ही शिक्षण का प्रभावी स्वरूप है। शिक्षण उपकरणो का मुक्त प्रयोग होना चाहिये। वैयक्तिक विभिन्नता का अध्ययन करके तदनुसार यन्त्रो, दृश्य-श्रव्य उपकरणो मॉडल, चार्ट, चित्र, ग्रामोफोन, छायाचित्र, ध्वनिवृत्त चित्रो, एव अन्य उपकरणो के अति-रिक्त भ्रमण योजनाओ, प्रस्तार कार्यक्रम एव विशिष्ट विशेषज्ञो की सेवाओ का नियमित रूप से शिक्षण कार्यक्रम मे समायोजन किया जा सकता है।

विभिन्न शिक्षण विधियाँ—बुनियादी शिक्षण विधि, क्रियात्मक विधि, वैयक्तिक एव कक्षा शिक्षण विधि, आधार शिक्षण विधि, आगमन एव निगमन विधि, खेल विधि, ह्यूरिस्टिक विधि, योजना विधि, डाल्टन विधि, मान्तेसरी एव किंडर गार्टन विधि, इकाई योजना विधि, हरवर्ट विधि, औपनिषिद्क विधि, द्रेकाली विधि, विनेटका विधि, स्प्रिंग-फील्ड विधि, गैरी विधि आदि प्रमुख है।

V विकलांग शिक्षा मे निर्देशन

सम्पूर्ण शिक्षा क्रम आज बालक निमित्त पृष्ठभूमि के निर्माण मे सलग्न है। बाल रुचि, क्षमता, वातावरण एव माता-पिता सभी अवस्थाओ को दृष्टिगत रखकर विद्यालय बालको का स्वागत करते है। "आज के विद्यालय बालक को वह नही बनाते जो वह नही है, अपितु जो वह है उसी को विकसित करने की दिशा मे वे प्रयत्नशील है।" ग रा शर्मा के इस कथन मे बालक की प्रकृति को विकसित करने का उल्लेख है।

विकलांग शिक्षा मे निर्देशन का अर्थ

निश्चयपूर्वक, अध्ययन एव बालक की रुचि के अनुसार उसमे समजन एव कार्य करने की सन्तुलित दृष्टि उत्पन्न करना ही विकलाग शिक्षा मे निर्देशन के अर्थ मे जाना जायेगा। विकलाग अपना अधिकतम सामजस्य सामाजिक वातावरण मे कर सके एव वह समाज के लिये अधिकतम उपयोगी होकर रहे, यही सामजस्य समाज भी विकलाग वर्ग के प्रति रुढियो से परे हटकर रखे, क्योकि निर्देशन अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। अपने स्पष्ट अर्थ मे निर्देशन एक ऐसी सहायता है जिस पर बालक का भविष्य निर्भर करता है। वह अपने दृष्टिकोण को विकसित करके समस्याओ या बाधाओ मे अपने विकलाग अगो एव स्वस्थ अगो की अधिकतम योग्यता ग्रहण करके लाभान्वित हो सकता है।

विकलाग शिक्षा मे निर्देशन का क्षेत्र

विकलाग शिक्षा मे निर्देशन का क्षेत्र उस सम्भव सीमा तक है जहाँ बालक सुविधापूर्वक सामान्य अवस्थाओ मे अपने को विकसित कर सकें। दूसरी ओर विकलाग शिक्षा मे निर्देशन का क्षेत्र सभी समस्याओ को अपने अध्ययन के अन्तर्गत लेता हुआ जीवन मे समायोजन हेतु प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से वातावरण निर्मित करता है।

आवश्यकता एव उपयोगिता की दृष्टि से वैज्ञानिक प्रगति के इस युग मे निर्देशन मे निरन्तरता का समावेश ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विकसित होते जीवन स्तर के लिये भी यह समीचीन होगा कि सभी अवस्थाओ मे निर्देशन प्राप्त होता रहे। निर्देशन को मात्र शिक्षण का अग न मानकर जीवन के अग के रूप मे स्वीकार करना चाहिये।

निर्देशन का महत्त्व

विकलाग बालक की अपनी स्वय की समस्या है। इस पर उसे जनजीवन मे अपना स्थान सुनिश्चित करना है जो निर्देशन के अभाव मे सर्वथा असम्भव नही कठिन है। जब तक बालक मे आत्म-निर्देशक का विकास नही हो जाता वह असन्तोष एव भग्नाशा मे अपने को कुसमायोजन की ओर बढा ले जायेगा। अत उपर्युक्त आधार पर निर्देशन का महत्त्व और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। ऐसा करते समय विकलाग बालक की चेतना का समादर अत्यावश्यक है—विकलाग चेतना के तीन प्रमुख अग–क्रियात्मक, ज्ञानात्मक एवं भावनात्मक अध्यापक के परिचय परिवेश मे अवश्य होने चाहिएँ। इस दृष्टि से निदेशन की सुनिश्चित दिशाओ का सक्षिप्त उल्लेख नीचे दिया जा रहा है —

१ **योग्यता का विकास**—अनुभव के आधार पर क्षमताओ को एव अभ्यास के द्वारा योग्यता को विकसित करना ।

२ **सामाजिक समंजन**—सामाजिक सामजस्य उत्पन्न करने के लिये आधारभूत समर्थताओ को प्रदान करना जिसमे विकलाग बालक अपने को समाज के साथ जुडा हुआ अनुभव करे । अपने लिये समाज स्वीकृति मिलने पर समाज को अपनी योग्यता का विश्वास दिलाना ।

३. **अपव्यय एव अवरोधन**—जैसे-जैसे समाज का दृष्टिकोण बढ रहा है, उसी गति से विकलाग स्वय अपने लिये नये प्रतिमान लेकर उपस्थित हो रहा है । निर्देशन इन्ही विकलागो के स्वस्थ अगो को सही दिशा प्रदान करके अपव्यय एव अवरोधन का प्रत्येक स्तर पर नियन्त्रण करेगा । इसके साथ ही अशक्त एव अक्षम अगो की क्षमता, उपयोग, एव गति को कृत्रिम अगो या उपकरणो की सहायता मे विकसित करना । '

४. **व्यावसायिक दिशा**—शिक्षा आयोग ने शिक्षा मे व्यावसायिकता के विकास पर वल दिया है एव सही व्यवसाय के चुनाव की ओर विकलागो को आकृष्ट किया है । व्यक्ति असन्तुलित मनोदशा मे विभिन्न व्यवसायो को अपना कर भी जीवन मे समजन स्थापित न कर सकने के कारण उत्तम उत्पादन नही दे पाते, और न ही अपने जीवन मे सन्तुष्टि का अनुभव कर पाते है । अत व्यावसायिकता को जीवन से जोडना जिससे विकलाग अपना विकास अपने व्यवसाय मे देखे और उसे निष्ठा से अपनाये ।

वौद्धिक विकलागता

वौद्धिक निर्योग्यताओ के आधार पर व्यवसाय मे गति नही आ पाती । कार्य का उत्पादन भी औसत रूप मे कम रहता है । अध्ययन के आधार पर भी वौद्धिक अक्षमता के कारण विकलांग वालक व्यवसाय के क्षेत्र मे ही नही, अपितु सामाजिक, सास्कृतिक, नैतिक एवं व्यावहारिक जीवन मे पिछडे रह जाते है । परीक्षण के आधार पर बुद्धिहीन मानसिक दृष्टि से विकृत परिवार एवं अभिजात वर्ग के वालको मे वशानुक्रम का प्रभाव देखने को मिलता है । मानसिक प्रक्रियाओ मे प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, कल्पना, तर्क एवं विचार की निरन्तरता एक-दूसरे पर निर्भर करती हुई स्पष्ट अभिव्यक्ति है । ए हक्सले पित्र्य सूत्र (क्रोमोसोम्स) को ही प्रमुख मानते है । अत इसमे एक सजग प्रयास आवश्यक है ।

मनोविकृति

मनोविकृति की दशा मे व्यक्ति को कार्य वन्द कर देना चाहिये । सामान्य कार्यो के प्रति असामान्य प्रतिक्रियाओ को नियन्त्रित करने का प्रयास निर्देशन द्वारा सम्भव है । मनोविकृतिजन्य व्यवहार असन्तुलित होता है जिससे सवेग के क्रियात्मक प्रत्यय पर विपरीत प्रभाव पडता है । यही प्रभाव शारीरिक क्रियाओ को अस्थिर कर देते है । यह किसी भी समायोजन के लिए तैयार नही होते । अत निदेशन मे स्पष्ट दिशा होनी चाहिये ।

शारीरिक विकलागता

शारीरिक विकलागता की अवस्था मे जो इन्द्रियाँ सन्तुलित या नियन्त्रित कार्य कर

रही हो, इन्हे अधिक सक्रिय बनाने की ओर ध्यान दिया जाना चाहिये। अन्य अपूर्ण इन्द्रियो को श्रम कार्य देने से बालक मे कुण्ठा और मनोविकृति ही उत्पन्न होगी, जिससे आत्म-विश्वास का अभाव बढेगा एव उस अग मे असमर्थता विकसित होती जायेगी।

उत्तम निर्देशन का यह दायित्व है कि वह विकलाग बालक को, जो पहले से ही अपने को बोझिल अनुभव कर रहा है, अपूर्ण अगो से ही समाज का स्वस्थ एव उपयोगी सदस्य बनाने की दिशा मे सक्रिय करे।

समाज मे उदारता का वातावरण निर्मित हो, इसके साथ ही विकलाग बालक मे निम्नलिखित अवस्थाओ की विकासोन्मुखी दिशाएँ प्रदान की जाएँ।

१ सन्तुलित व्यवहार
२ सामाजिक समजन
३ सचेष्ट मस्तिष्क एव क्रियाएँ
४ नियन्त्रण
५ आत्म-विश्वासी मनोवृत्ति
६ अवैध एव वैध कृत्यो मे अन्तर करना
७ नैतिक आचरण
८ रुचियो एव क्षमताओ का शोधन एव मार्गान्तरीकरण
९ कौशल का विकास
१० सूझ वृत्ति को विकसित करना
११ अव्यक्त मनोव्यवहार को निश्चित दिशा प्रदान करना।

निर्देशन, वातावरण निर्माण के रूप मे

शारीरिक, भौतिक, सामाजिक, सास्कृतिक एव मानसिक परिवेश को विकलाग बालक के समक्ष इस प्रकार उपस्थित किया जाये जिससे बालक उसे अपने से अलग नही समझे,-दूसरे अपनी असामान्यवस्था के कारण बालक मे कुण्ठा उत्पन्न न हो।

वातावरण का प्रभाव बालक के विकास पर अत्यन्त तीव्रगति से पडता है। यदि ग्रहणीय विषय वातावरण के रूप मे शिक्षण परिधि मे आये तो हितकर सिद्ध होगा। वातावरण बालक के किसी एक पहलू पर प्रभाव डालकर सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाला होना चाहिये। निर्देशन का यह भी क्षेत्र है कि वह बालक को असामान्यावस्था मे जीवन-यापन करने पर मजबूरी का अनुभव न करने दे।

स्नायुदौर्बल्य के प्रभाव को प्रसन्नता, मुक्तता (अनौपचारिक परिवेश) एव स्वच्छन्द वृत्ति के वृत्त मे समाप्त करे। बालक मे हीन भाव, ईर्ष्या, सन्देह, अवसाद से उत्पन्न चिन्तोन्माद या योपापस्मार जैसी विकृत एव विक्षिप्त अवस्थाओ का जन्म हो, ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न न होने दे। यौन विकृत मनोविकारी व्यक्तित्व स्नायुदौर्बल्य लक्षणो के अन्तर्गत आ जाते है। विकलाग बालको का अध्ययन निम्नलिखित विधियो द्वारा सम्भव है :—

अवलोकन विधि—विकलाग बालको का वर्गीकरण करके, सावधानीपूर्वक अवलोकन सिद्धान्तो के नियमान्तर्गत पूर्वाग्रहो एव पूर्व सम्प्रत्ययनो से परे हटकर, वास्तविकता के घेरे मे सूचना चयन करना हितकर होगा। इसके लिए तुलनात्मक अध्ययन भी सम्भव

है। वर्गीकरण के अनुसार यह विधि व्यापक एव पूर्ण है। इसमे बालक को विभिन्न अवस्थाओ मे परखा जाता है। विशेष ध्यातव्य इस विधि मे यह है कि विकलाग बालक को यह आभास भी न हो कि उसे किसी विशिष्ट उद्देश्य से देखा जा रहा है।

व्यक्ति इतिवृत्त विधि—बालक की विभिन्न मनोवृत्ति को जानने के लिए इस विधि का प्रयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। माता-पिता, अभिभावक, अध्यापक, मित्र, सम वय साथी, परिचित एव अन्य सम्बन्धित व्यक्तियो से पूछताछ करके अभिलेख तैयार कर लिया जाता है। निष्पक्षता इस विधि मे आवश्यक है क्योकि सही सूचना तथ्य न मिलने पर प्रभावित बालक की वृत्तियो का असत्य रूप ही प्रस्तुत होगा जिससे प्रयास तथ्य प्रभावहीन हो जाएँगे।

सम्मोहन विधि—मनश्चिकित्सक प्रभावी व्यक्ति को सम्मोहित करके उसकी गुप्त भावग्रन्थियो को प्रकट करवाता है, एव तत्पश्चात् उसी के आधार पर उपचारात्मक कार्य किया जाता है। इससे अप्रकट समस्याओ को जाना जा सकता है। यह कठिन विधि है। इस विधि के प्रयोक्ता के लिए एक सधे हुए अभ्यास की आवश्यकता है।

मूल्याकन विधि—इस विधि के द्वारा एक प्रश्नावली बालक को दे दी जाती है, जिसमे वह वर्णित तथ्यो के आधार पर उत्तर देता है। इसके बाद किसी विशिष्ट पक्ष या दृष्टि का मूल्याकन किया जाता है। यह एक वैज्ञानिक विधि है जो प्रभावित बालक को दिये जाने वाले निर्देशन को अधिक निश्चित बनाती है।

मनो-विश्लेषणात्मक विधि—मनोविश्लेषक सर्वप्रथम बालक का विश्वास ग्रहण करता है। बालक से जो भी सूचनाएँ प्राप्त की जाएँ वह अतिरजित (बढा-चढा कर) नही होनी चाहिएँ। आवश्यकतानुसार स्वप्न विश्लेषण एव स्वतन्त्र साहचर्य का भी सहारा लिया जा सकता है।

परीक्षण विधि—विभिन्न प्रकार के जाँच पत्रो के आधार पर, एव प्राप्य तथ्यो की सांख्यिकीय कसौटी के माध्यम से, व्यक्ति के कई पक्षो का सही पता लगाया जा सकता है। बुद्धि, सम्प्राप्ति, प्रवृत्ति, रुचि एव व्यक्तित्व के परीक्षण आदि इस विधि मे खरे उतरे हैं।

सांख्यिकीय विधि—यह विधि परीक्षणो मे प्रामाणिकता, विश्वस्तता एव सार्थकता को प्रकट करती है। यह सहायक विधि कही जा सकती है, जो गुरु सूत्रो के आधार पर इयत्तात्मक एव ईहात्मक अवस्थाओ को प्रकट करती हैं।

प्रक्षेपण विधि—बालक के व्यक्तित्व की असामान्यावस्थाओ को जानने के लिए आज यह निर्विवाद एव बहुप्रचलित विधि है।

१ **स्विस हरमन रोशार्क परीक्षण** यह स्याही के धब्बो का प्रयोज्य स्वरूप है। इसमे प्रभावी व्यक्ति की अनुक्रियाओ को जाना जाता है।

२ **मरे का सम्बद्ध विषय** प्रत्यक्षीकरण प्रणाली मे भी कार्डो पर विभिन्न परिस्थितियो मे मानवाकृतियाँ अकित हैं। कहानी के माध्यम से बाल उलझनो का ज्ञान होता है।

इतना होने पर भी मनुष्य अपनी मनोवृत्तियो मे कोई स्तरमान निर्धारित कर सके, यह असम्भव है।

निर्देशक का दायित्व

विकलाग शिक्षा निर्देशक बाल-मन की विभिन्न अवस्थाओ का अध्ययन करके विकलाग बालक की इच्छाओ एव क्षमताओ को सही दिशा प्रदान करता है, इससे बालक

की असामाजिक वृत्तियो का न्यूनीकरण, निराकरण या दमन होता है, जिसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है —

१ असामाजिक प्रवृत्तियो का अवरोधन एव दमन
२ आत्मसन्तोष या सयुक्तीकरण
३ आवेगो का निष्कासन या परावर्तन
४ कुण्ठाओ का मार्गान्तरीकरण
५ उत्कर्षण एव सघर्षो का न्यूनीकरण
६ स्थानान्तरण एव विस्थापन
७ आत्मीकरण या आत्मसात् करना ।

यदि निर्देशक उपर्युक्त अवस्थाओ को उत्पन्न करने मे सफल हो जाता है तो विकलाग बालको को अपने जीवन विकास क्रम मे अत्यधिक सहायता मिल सकती है । भारत के प्राचीन ऋषि मुनियो ने सूत्र परम्परा को विकसित किया, जिसमे निर्देशन के विभिन्न पक्षो पर वर्णन प्राप्त है । गीता स्वय मनोस्वास्थ्य के मूल सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाला निर्देशन ग्रन्थ है ।

शिक्षण सस्थाएँ विद्यालयीय परिवेश मे सहानुभूति, स्नेह एव अपनत्व का वातावरण बनाये रखे जिसमे निर्देशन को विकलाग उत्साह से स्वीकार करे । मार्ग-दर्शन के सन्दर्भ मे इन्दिरा गाँधी के विचार महत्त्वपूर्ण है " उचित मार्ग-दर्शन का अर्थ विधि-निषेधात्मक आदेश नही होता, अपितु घर,-बाहर के सर्जित वातावरण से बच्चे अवचेतन रूप मे ही अच्छी भावनाएँ प्राप्त कर सके—यही सच्चा मार्ग-दर्शन है ।" सम्मान्या इन्दिरा गाँधी विद्यालयीय नियन्त्रित निर्देशन मे भी आगे समाज के वातावरणीय निर्देशन को स्वाभाविक एव प्रभावशाली मानती है ।

सार सक्षेप (विकलांग शिक्षा मे निर्देशन)

निर्देशन बालक को प्रत्येक अवस्था मे सहयोग देता है । विकलाग के लिए निर्देशन अनिवार्य आवश्यकता है । वैज्ञानिक प्रगति के इस युग मे निर्देशन विज्ञान से परिवेष्टित हो चुका है ।

निर्देशन का महत्त्व १ योग्यता विकास २ अपव्यय एव अवरोधन ३. बौद्धिक प्रगति ४. व्यावसायिक कौशल ५ शारीरिक विकास, तथा ६ मनो-वैज्ञानिक समजन के माध्यम से देखा जा सकता है ।

मनो-विकृति की अवस्था मे कार्य को रोकना चाहिये एव परीक्षण और अध्ययन के माध्यम से कारणो का पता लगाकर निर्देशन व्यवस्था होनी चाहिये ।

निर्देशन

सामाजिक समजन
वैयक्तिक सन्तुलन
नैतिक आचरण
कौशल का विकास
सूझ
क्षमता एव शक्ति का समुचित उपयोग

निर्देशन वातावरण निर्माणक के रूप मे होना चाहिये। स्नायुदौर्बल्य एव यौन विकारो को यथा सम्भव नियन्त्रित किया जाना चाहिये। विशेषज्ञ विभिन्न पद्धतियो को माध्यम के रूप मे प्रयुक्त कर सकता है ।

अवलोकन विधि (व्यापक एव पूर्ण विधि है)
व्यक्ति इतिवृत्त विधि (विभिन्न वर्गो से बाल मनोवृति को जानना)
सम्मोहन विधि (मनश्चिकित्सक द्वारा)
मूल्याकन विधि (विशिष्ट पक्ष जानना)
परीक्षण विधि—सम्पूर्ण व्यक्तित्व परीक्षण सूत्र
साख्यिकीय विधि (गुरु सूत्र इसका आधार है ।)

प्रक्षेपण विधि—अनुक्रियाओ को जानना एव बाल समस्याओ से परिचित होना। "निर्देशक का दायित्व एक योग्य माता-पिता, अभिभावक एव अध्यापक से किसी भी दिशा मे कम नही होता। उसे यह भी उत्कण्ठा रहती है कि उसका निर्देशन किन रूपो मे परिवर्तित हो रहा है।" सुरेन्द्र का यह कथन निर्देशन के उपरान्त प्रभावित बालक द्वारा अनुवर्त्तन की ग्रहणीय स्थिति को स्वीकृति प्रदान करने से है। शिक्षण विधि की दृष्टि से आवश्यकतानुसार विभिन्न पद्धतियो का प्रयोग करना श्रेयस्कर होगा।

* * *
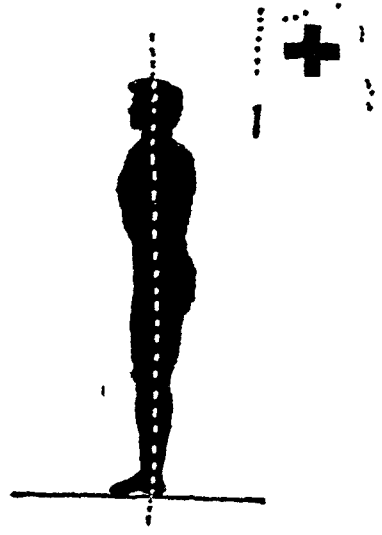
६. विकलांग स्वास्थ्य सेवा एवं शारीरिक शिक्षा

I अपवादी एवं विकलांग बालक और स्वास्थ्य शिक्षा

शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्

(इस सृष्टि मे स्वस्थ शरीर ही समस्त कर्त्तव्यो के करने का साधन है।)

स्वास्थ्य एक अनिवार्य स्थिति है। उसका सम्बन्ध केवल शरीर से ही नही, अपितु व्यक्ति की मानसिक, आध्यात्मिक, भावात्मक, मनो-सामाजिक, प्राकृतिक एव अन्य वातावरणीय अवस्थाओ से भी है। स्वतन्त्रता की रजत जयन्ती के उपरान्त भी हमारी शिक्षा का विस्तार उस सीमा तक नही हो पाया, जहाँ विकलाग अपने को समाज का एक सम्मानित सदस्य मान सके, आत्म-निर्भर हो सके, दया पर पलना त्याग सके, यद्यपि इस क्षेत्र मे प्रयास का बीजारोपण हो चुका है। एक ओर विकलाग व्यक्तिगण अपने शरीर से क्षुब्ध हैं, दूसरी ओर समाज से सरक्षण समाप्त सा हो चला है। यदि ऐसी स्थिति मे इनका ध्यान अपने शरीर के स्वास्थ्य की ओर उन्मुख नही किया गया तो नैराश्य एव हीनता के अतिरिक्त कोई भी उत्साही आकाक्षाएँ इन लोगो मे नही रहेगी।

असामाजिक एव अनधिकृत तत्व इनका शोषण करते हैं, अवैध कार्यों मे इनकी सक्रिय सेवाएँ ली जाती हैं। प्राय तस्करी का सामान लाने ले जाने के अच्छे स्रोत समझे जाते है, जहाँ किसी की भी दृष्टि सीधे पहुचनी सम्भव नही है।

अपवादी एव विकलाग बालक एवं स्वास्थ्य शिक्षा–एक चिन्तन

स्वास्थ्य की अपनी गतिशील अवस्था हे, यह व्यक्ति से अपना सम्बन्ध रखती है एव व्यक्ति से व्यक्ति को सचरित होती हुई समाज को प्रभावी बनाती है। "स्वास्थ्य-शिक्षा आगिक नियन्त्रण, एव अगो से कार्य लेने के विश्वास को जाग्रत करती है, जिससे विकलाग बालक के दृष्टिकोण मे एक विश्वास और आस्था का विकास होता है।" डा सरनाम सिह शर्मा का यह विचार स्वास्थ्य एव सक्रियता का मिश्रित प्रभावी पक्ष है।

विश्व की विशाल जनसख्या वाला भारतीय प्रजातन्त्र जिन समस्याओ मे उलझा हुआ है, उनमे अधिकाश समस्याएँ वर्षों से चली आ रही स्वभाव-जन्य दासता के परिणाम-स्वरूप ही हैं। एक दृढ एव स्वस्थ प्रजातन्त्र के लिए यह आवश्यक है कि वहाँ का प्रत्येक नागरिक, चाहे वह विकलाग ही क्यो न हो, अपने को प्रजातन्त्र के लिए उपयोगी हो। प्रायः विकलाग बालक अपनी आगिक सरचना से निरुत्साहित हो जाते है एव उदासीन मन लिए, मृत्यु की प्रतीक्षा मे निष्क्रिय जीवन व्यतीत कर देते है। ऐसा जीवन स्वय के लिए तो भारस्वरूप है ही, अपितु समाज के लिए भी बोझिल हो उठता है। नगर सभ्यता, उद्योगीकरण एव आवागमन के यान्त्रिक विकास ने दुर्घटनाओ को अत्यधिक विकसित किया है। बालक, बालिका, युवक, युवती, प्रौढ, प्रौढा, कौन कब दुर्घटनाग्रस्त हो विकलाग हो जाये यह नही कहा जा सकता। अत विकलाग बालक को सम-सामयिक परिस्थितियो से परिचित कराते हुए उनके मन मे भी देह की स्वस्थता, आगिक नियन्त्रण, स्वस्थ अगो की उपयोगिता का विकास, उनमे कार्यक्षमता की वृद्धि, शारीरिक व्यायाम एव स्वास्थ्य विषयक नियमो के परिपालन से सहज प्राप्त कर सकते है।

"शारीरिक शिक्षा, चाहे वह किसी की भी, किसी भी स्तर पर क्यो न हो, एक स्वभाव है, जिसकी निरन्तरता जन्म से मृत्यु तक सक्रिय रहनी चाहिये। यह व्यक्ति के

शरीर, मन और बुद्धि के समन्वय के सिद्धान्त का प्रयोगात्मक पक्ष है।" (आचार्य लेखराम शर्मा) इस विचारधारा को मध्य दृष्टि रख शारीरिक शिक्षा का विस्तार किया जाना लाभप्रद होगा।

मनो-सामाजिक विकृति प्राय शारीरिक एव मानसिक सन्तुलन को असन्तुलित करके बालक को पूर्णत अस्वस्थ बना देती है। दैनिक जीवन मे घटित होने वाली प्रत्येक घटना किसी न किसी रूप मे व्यक्ति को प्रभावित करती है। कभी-कभी यह प्रभाव इतने स्थायी हो जाते हैं कि शारीरिक निष्क्रियता के साथ-साथ मानसिक उद्वेग की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह निश्चित है कि कतिपय अवस्थाओ मे घटना की ग्राह्यतात्मकता मे दृष्टिकोण का भी अपना महत्त्व है।

स्वास्थ्य-शिक्षा दर्शन

"स्वास्थ्य दर्शन शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र मे उन मूल्यो, सिद्धान्तो एव उद्देश्यो को प्रकट करता है, जिनके अभाव मे शारीरिक शिक्षण सरकस के पशुओ के निश्चित प्रदर्शनो के अतिरिक्त कुछ नही रह जाता। यह यन्त्रवत् प्रदर्शन करते चले जाना है जिसमे मन और मस्तिष्क की क्रियाएँ गौण हो जाये। वस्तुत शारीरिक शिक्षा दीर्घ जीवन का व्यावहारिक पक्ष है, जो व्यक्ति को रोग रहित एव सक्रिय जीवन की ओर अग्रसर करता है।" (प० फकीरचन्द कौशिक)।

व्यावहारिक जीवन की दृष्टि से स्वास्थ्य दर्शन स्वस्थ समाज का सुमेरु कहा जा सकता है। "विकलाग बालकों के लिए स्वास्थ्य शिक्षा एवं शारीरिक व्यायाम वह उर्वरा भूमि है जिस पर उनके जीवन का उद्यान लहलहा सकता है।" 'निसर्ग अने आरोग्य' का वर्षो से सम्पादन करने वाली वयोवृद्धा सुशीला पण्डिता स्वय नियमित व्यायाम करती है। वे व्यायाम और स्वास्थ्य दो शब्द नही मानती। उनका कहना है-"व्यायाम ही स्वास्थ्य है।"

विश्व स्वास्थ्य सगठन स्वास्थ्य शिक्षा से अपने तात्पर्य को निम्नलिखित शब्दो मे प्रकट करता है —

"ए स्टेट आफ कम्पलीट फिजिकल, मेन्टल एन्ड सोशल वैल-विइग एन्ड नाट मियरली दी एवसेन्स आफ डिजीज ऑर डनफरमिटी।"

भारतीय दर्शन मे स्वास्थ्य पक्ष

दर्शन भारत की आत्मा है। जन-जीवन की सर्वांगीणता के निर्माणक तत्व गहन अध्ययन एव चिन्तन के परिणामस्वरूप प्रकट हुए है, जिनका सैद्धान्तिक पक्ष दर्शन, एव व्यावहारिक पक्ष स्वास्थ्य है।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

(जिसे अपने प्रतिकूल समझते हो, अन्य के लिए उसका आचरण मत करो)।

एकादश व्रत, एव यम-नियम, व्यक्ति के लिए आचार महिनाएँ है, जिनका आधार ही शारीरिक एव मानसिक स्वास्थ्य को सामाजिक समजन के साथ बनाये रखना है। धर्म सूत्रो मे जीवन के आध्यात्मिक एव भौतिक, दोनो ही पक्षो की विस्तृत चर्चा है। गौतम धर्म-सूत्र, बोधायन धर्म-सूत्र, आपस्तम्ब धर्म-सूत्र आदि मे गृहस्थ, साधु एव विद्यार्थी के आचरणो पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। गुरुकुलो मे वेदाध्ययन काल मे सयमित

जीवन, सात्विक आहार-विहार, निद्रा, आसन, प्राणायाम एव स्वास्थ्य के विषय मे विस्तार से वर्णन किया गया है।

स्मृति ग्रन्थो मे स्वास्थ्य का प्रत्येक स्तर पर जितना विशद विवेचन हुआ है, उतना अन्यत्र नही। स्मृति ग्रन्थ मूलत आचार सहिताएँ हैं। मनु, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति, दक्ष, गौतम, पराशर, एव अत्रि द्वारा निर्मित स्मृतियो ने शारीरिक स्वास्थ्य को समाज एव राष्ट्र के उत्थान एव रक्षा के लिए 'पुण्य कर्म' माना है।

सस्कारो का विकास भी विभिन्न अवस्थाओ मे शारीरिक, मानसिक एव सामाजिक नियन्त्रण की ही प्रक्रिया है। गर्भाधान मे अत्येष्टि कर्म तक सस्कारो की एक सवल परम्परा भारत ने सुखी समाज हेतु प्रदान की है। "अभिवादन एव नमस्कार तक की प्रक्रिया मे विचार एवं जीवन मूल्यो का जो सुनियोजन प्रदान किया गया है, वह सराहनीय है। अभिवादन के प्रमुख तीन प्रकारो मे (नित्य, नैमित्तिक एव काम्य मे) दोनो हाथ जोड कर तीन कदम के अन्तर से, 'प्रणाम' ऐसा वाणी से उच्चारण करना कितना उत्तम है। इससे अनजाने कितने ही रोग वाहको का सचरण समाप्त हो जाता है।" (प० कन्हैयालाल, दर्शन तीर्थ)।

स्वास्थ्य का अर्थ

'स्वस्थ' शब्द दो शब्दो के मेल से सम्पन्न है। 'स्व'+'स्थ' अर्थात् स्व मे जिसकी स्थिति है, वही स्वस्थ है। अगो की विकृति यहाँ अर्थहीन है, यदि मानसिक दृष्टि से व्यक्ति स्वस्थ है। नीरोग देह और विकृत मानसिक अवस्था, व्यक्ति का अस्वस्थ रूप ही है। गाँव एव नगरो का अस्वच्छ वातावरण, अखाद्य सामग्री, सुरक्षा का अभाव, गन्दगी, व्यक्ति की स्व मे स्थिति रहने नही देती। आवश्यकता है व्यक्ति के शारीरिक एव मानसिक दृष्टि से सन्तुलित रहने की।

अपवादी एव विकलाग वालकों हेतु उत्तम जीवन पद्धति ही उत्तम स्वास्थ्य-प्रक्रिया

नये मान दण्डो की प्रतिष्ठापना के साथ विकलाग एव अन्य अपवादी वालक समाज की दया का विषय नही, समाज द्वारा उनमे आगिक उपयोगिता को विकसित करके उनको आत्म-निर्भर वनाने का विषय है। रूढि और परम्पराओ के वृत्त, जिन पर विकलाग जीवित थे, टूट चुके हैं। उन्हे नियमित जीवन जीने की दिशा मे न्यूनतम शिक्षण तो प्रदान किया ही जाना चाहिये। विज्ञान ने आजीविका एव कार्यों के अनेको अवरुद्ध मार्गों को खोला है। अत व्यायाम शिक्षा एव शारीरिक स्वास्थ्य के साधारण एव सम्भव नियमो द्वारा अपवादी एव विकलाग वालको मे उत्तम जीवन पद्धति को विकसित किया जाना चाहिये।

विकलाग विद्यालय एव समाज स्वास्थ्य केन्द्र का यह दायित्व हो जाता है कि वह इस वर्ग मे शारीरिक व्यायाम एव स्वस्थ शरीर के प्रति आकर्षण उत्पन्न करे। प्राय औसत भारतीय अपने सम्पूर्ण जीवन मे अपने स्वास्थ्य के लिये सम्पूर्ण आयु मे एक दिन का भी समय नही दे पाता। महिला एव पुरुषो के स्थूल थल-थल या अति कृश शरीर घर, वाहर या वाजार मे देखे जा सकते हैं। सुगठित शरीर इस विशाल देश मे गिनती मे मिलेगे, व्यायामशालाओ का सीधा अभाव है जव पूर्णाङ्ग व्यक्तियो के लिये यह स्थिति है तो विकलागो के लिये इन सुविधाओ की विशिष्ट व्यवस्था दुर्लभ ही कही जायेगी। विकलागो

के लिये शारीरिक शिक्षा और स्वास्थ्य विषयक आचरण की क्रियाएँ उत्साही एव समर्पित व्यक्तियो द्वारा उत्तम जीवन पद्धति के रूप मे प्रदान की जाएँ, जिससे उनमे अपनी आगिक क्षमता के प्रति दृढ विश्वास हो एव वे उसका अपने लिये उपयोग कर सके।

शारीरिक शिक्षा का अभिप्राय

शारीरिक शिक्षा का अभिप्राय मास पेशियो को अधिकाधिक बुद्धि एव इच्छा के नियन्त्रण मे लाना है। ज्यो-ज्यो व्यायाम द्वारा शारीरिक पुष्टता बढेगी, शरीर की कार्य-क्षमता का विकास होगा, एव उसके ठीक परिणाम भी निकलेंगे। शारीरिक शिक्षा एव व्यायाम द्वारा शारीरिक पुष्टता भी बढेगी। चरक एव सुश्रुत ने सानुपातिक अग-प्रत्यगो की वृद्धि, दृढता, क्षमता एव उपयोग को दीर्घ एव स्वस्थ जीवन का लक्षण माना है।

यह विकार रहित दीर्घ जीवन शारीरिक व्यायाम पर अधिक निर्भर करता है। विकलाग अपने अपग भाग को छोड कर, शेष को पुष्ट कर सकते है। किसी भी अवस्था के व्यक्ति को यह रोग दीर्घ जीवन शारीरिक व्यायाम द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। शारीरिक व्यायाम पेशियो व सन्धि स्थलो को पुष्ट, विकार-रहित एव गतिशील बनाता है, इससे रक्त एव अन्य द्रव्यो की शरीर मे सचार की क्षमता बढती है।

सचार एव व्यायाम

रक्त एवं अन्य द्रव्यो का शरीर मे प्राकृतिक रूप से सचरण होता रहता है। इस सचार व्यवस्था मे बाधा या अवरोध होने से विकार एव रोग विकसित होते हैं। व्यायाम से रक्त एव अन्य द्रव्यो की शरीर मे सचरण क्षमता बढती है, इससे कोशो की गति मे वृद्धि होती है। पेशीय कोश शक्ति पर हृदय की गति और दबाव निर्भर करता है। धमनियाँ हृदय से शुद्ध रक्त का सचरण करती है एव शिराएँ कोशो से अस्वच्छ रक्त को वापिस लाती हैं। व्यायाम के माध्यम से यह क्रिया और भी सरल एव स्वाभाविक हो जाती है। व्यायाम शरीर की स्थिति के अनुसार ही विभिन्न माँस पेशियो को सक्रिय रख शरीर मे सचार व्यवस्था को गतिशील बनाता है। कोशो के साथ लसिका का सम्बन्ध रक्त से होता है एव यह कोशो की सक्रियता से उत्पन्न मल को एकत्र करके प्रवाहित करती रहती है। लसिका-सचरण का कार्य रक्त-सचरण क्रिया की समाप्ति के उपरान्त प्रारम्भ होता है।

शारीरिक शिक्षा

"शारीरिक शिक्षा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मानव।" (शिक्षा सन्त, स्वामी केशवानन्द)। यह समीचीन होगा कि प्रसगवश शिक्षा सन्त, स्वामी केशवानन्द का परिचय केवल शारीरिक शिक्षा के परिवेश मे दे दिया जाये। उत्तर राजस्थान के विशाल शिक्षा केन्द्र ग्रामोत्थान विद्यापीठ, सगरिया, (जिला, श्रीगगानगर) के इस सचालक ने ९० भयकर ग्रीष्म देखे। शरीर पर उनका कितना नियन्त्रण था निम्नलिखित पक्तियो मे देखा जा सकता है। ८५ वर्ष की अवस्था मे जब वे ससद सदस्य थे २५ किलो किताबो का गट्ठर खवे पर रखे दोपहरी मे कनाट सर्कस, दिल्ली का रास्ता पैदल पार करते देखे गये।

१ इच्छा नींद सोये—गुर्दे व यक्ष्मा जैसे चरम पर पहुँचे असाध्य रोग से ग्रसित स्वामी जी ने जब, जहाँ, जैसे भी और जितने समय के लिये चाहा, नीद ली तथा जब चाहा वे उठे और काम पर चल दिये।

२. **इच्छा भोजन पचाया**—जब, जहाँ, जैसा भी खट्टा, तला, सूखा, बासी, ठडा, गुवार की फली एव मोठ, बाजरा मिला, पचा लिया। ···· ··और इच्छा-मृत्यु को प्राप्त हुए। चलते-फलते देह त्याग किया।

षड्ऋतुओ का परिवर्तन, चाँद, सूरज, नदी, वन, पर्वत, रेगिस्तान एव प्राकृतिक स्थितियाँ को शरीर पर मुक्त रूप से ग्रहण किया—केवल एक अधोवस्त्र के सहारे जीवन बिता दिया और यह सब नित्य शारीरिक श्रम, भ्रमण एव व्यस्तता एव सयम के ही परिणामस्वरूप हुआ।

भगवान बुद्ध के चिकित्सक जीवन (महात्मा बुद्ध के निजी चिकित्सक का नाम—जीवन था।) ने बौद्ध भिक्षुओ को नियमित व्यायाम का परामर्श दिया। प्राचीन भारतीय व्यायाम-विदो ने जिन रूपो मे क्षमता प्राप्त करने के लिये व्यायाम को स्वीकार किया, वे हैं —

— शारीरिक पुष्टता एव प्रतिरोधक क्षमता
— स्फूर्ति विकास एवं सक्रियात्मकता
— प्राणायाम (आन्तरिक अगो की पुष्टता एव एकाग्रता)
— विकार शुद्धि (रक्त एव अन्य विकृतियो का निवारण)
— उभय पक्षीय शारीरिक व्यायाम (बाह्य एव अन्तरअगीय व्यायाम दूसरे मन एव बुद्धि को विकसित एव एकाग्र करने विषयक आसन, प्राणायाम, ध्यान, समाधि आदि।)

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् से शारीरिक शिक्षा के विकास पर सामूहिक रूप से बल दिया जा रहा है। शारीरिक शिक्षा की अधिकाश प्राचीन पद्धतियो के स्थान पर विभिन्न सामूहिक खेलकूद, नृत्य, सोद्देश्य श्रम कार्यो का अधिक विकास हुआ है। चिकित्सात्मक व्यायाम भी शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र मे विकसित हुये, जो इस प्रकार है —

— शुद्ध आगिक स्थिति की प्राप्ति के लिये व्यायाम
— चिकित्सात्मक व्यायाम, विकार या रोग विशेष को ठीक करने हेतु
— चेता पेशीय निरोधात्मक क्षमता के विकास विषयक व्यायाम
— विद्यालयो मे अपवादी बालको हेतु, शारीरिक क्रियाओ के औचित्य को स्वीकार करके, निदानात्मक व्यायाम।

II विकलांग विद्यालय एवं स्वास्थ्य सेवा

स्वास्थ्य सेवा व्यवस्था किसी भी विद्यालय के लिये अनिवार्य उपयोगिता है। विकलाग विद्यालय मे जहाँ असाधारण बालक शिक्षण हेतु उपस्थित है, स्वास्थ्य सेवा इकाई का महत्त्व और भी अधिक है। आगिक अपूर्णता, रोग, मनोद्वेग आदि ऐसी स्थितियाँ है जिन्हे नियन्त्रित करने हेतु तत्काल उपचार उपलब्ध हो, यह उसी अवस्था मे सम्भव है जबकि स्वास्थ्य सेवा इकाई विद्यालय मे ही हो।

विकलांग विद्यालयीय स्वास्थ्य सेवा के उद्देश्य

— स्वस्थ वातावरण का विकास करना
— उपचार-साध्य विकृतियो का निवारण, बीमारी पर नियन्त्रण, स्वास्थ्य निर्देशन आदि
— शिक्षण क्षमता को विकसित करना
— शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रखना
— असाध्य रोगो से प्रभावित बालको को उपचार सुविधाएँ प्रदान करना ।

स्वास्थ्य परीक्षण

"स्वास्थ्य परीक्षण द्वारा बालक को व्यक्तिगत निश्चित निर्देशन प्रदान करने एव विकलाग बालक को शैक्षिक वातावरण मे ढालने विषयक पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है । इस दृष्टि से यह स्पष्ट है कि स्वस्थ वातावरण, स्वास्थ्य परीक्षण एव विद्यालयीय वातावरण मे शुद्ध जल, वायु एव प्रकाश व्यवस्था को समुन्नत बनाना लक्षित है जिसके द्वारा मानसिक एव मनोसामाजिक स्थितियो को सुगमता से जानकर स्वस्थ व्यवहार को विकसित करना होता है । अकेला स्वास्थ्य परीक्षण, वातावरणीय स्वच्छता के अभाव मे, अर्थहीन है।

स्वास्थ्य परीक्षण कब और कैसे

विकलागो हेतु स्वास्थ्य परीक्षण को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है —

१. प्रारम्भिक स्वास्थ्य परीक्षण
२ नियमित स्वास्थ्य परीक्षण
३ निश्चित अवधि स्वास्थ्य परीक्षण
४. आपात स्वास्थ्य परीक्षण ।

१ प्रारम्भिक स्वास्थ्य परीक्षण—एक प्रकार से यह परीक्षण शेष परीक्षणो की आधारभूमि रहेगी । विद्यालय मे प्रवेश के समय स्वास्थ्य परीक्षण, भावी शिक्षण को सफल बनाने की दृष्टि से, अत्यन्त उपयोगी है । भावी शिक्षण की इसे सशक्त आधार भूमि कहा जा सकता है ।

इस परीक्षण से विकलागावस्था, विकृति के कारण, उपचार प्रक्रियाओ, औषधि, स्वभाव, कार्यक्षमता, वातावरणीय प्रभावो, रुचि, अवधान और अभ्यास के साथ-साथ विकलाग बालक की प्रकृति का ज्ञान अध्यापक को हो जाता है । अत वैयक्तिक विभिन्नता का ध्यान रखकर उन सभी समस्याओ से बचा जा सकता है जो अनिश्चित श्रम और शक्ति के बाद जानी जाती है ।

२. नियमित स्वास्थ्य परीक्षण — नियमित स्वास्थ्य परीक्षण द्वारा स्वास्थ्य को स्थिर रखने, बीमारियो से रक्षा, थकान, आलस्य, अरुचि, और ध्यान मे बाधा पर नियत्रण, के लिये उचित व्यवस्था करने मे सहायता मिलती है । नियमित स्वास्थ्य परीक्षण विकलागो के स्वास्थ्य को गिरने से बचाने एव शिक्षण मे आवश्यक प्रभावी परिवर्तन लाने हेतु अध्यापक का दिशा निर्देश करने मे सहायक है । नियमित स्वास्थ्य परीक्षण भावी समस्याओ के प्रति सावधानी है ।

३ **निश्चित अवधि स्वास्थ्य परीक्षण**—इस विधि से विकलाग बालको के स्वास्थ्य की समय-समय पर जानकारी मिल जाती है। यह स्वास्थ्य परीक्षण अर्द्ध-वार्षिक, या वार्षिक होना चाहिये जिससे एक निश्चित समय मे होने वाले स्वास्थ्य विषयक परिवर्तन से अध्यापक परिचित हो सके, एव तदनुसार विशेषज्ञ द्वारा निर्देशन प्राप्त करके बालक को उपचार या प्रशिक्षण के अन्तर्गत रख सके। यह स्वास्थ्य परीक्षण विशेषज्ञो की देखरेख मे, या उनके सहयोग से, सम्पन्न किया जाना चाहिये।

४. **आपात स्वास्थ्य परीक्षण**—विशेष विकार, अचानक दुर्घटना, सक्रामक रोग, विषाक्त भोजन आदि की स्थिति मे आपात स्वास्थ्य परीक्षण आवश्यक है। यह स्वास्थ्य परीक्षण औचित्य की दृष्टि से व्यक्तिगत, या सामूहिक दोनो ही प्रकार का हो सकता है। विशेषज्ञो द्वारा ही यह परीक्षण व्यापक रूप से (शारीरिक, मानसिक एव मनोसामाजिक) होना चाहिये। इसमे रक्त वर्ग, थूक, मलमूत्र तक की जाँच होनी चाहिये, जिससे आहार एव श्रम के प्रकारो पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सके।

सामान्य स्वास्थ्य परीक्षण मे ऊँचाई, भार, छाती, नेत्र, कर्ण, दन्त एव पेशीय शक्तियो सम्बन्धी स्थिति आती है। विभिन्न विकलागावस्थाओ मे, प्रस्तुत परीक्षण मे अन्तर्भेद सम्भव है।

उपचार एव अनुवर्तन

विकलाग विद्यालय, विकलागो के स्वास्थ्य जाँच के परिणामो से, अभिभावक एवं चिकित्सक को अवश्य परिचित कराये, जिससे उपचार सुविधा प्राप्त हो सके। मनोसामाजिक विकृति वाले बालको को बाल निर्देशन उपचार केन्द्रो पर भेजने के सुझाव दे। विद्यालय स्वास्थ्य निरीक्षक (महिला-पुरुष) अपने विषय मे निपुण होने के साथ विकलागो की प्रकृति को भी समझने वाले हो। धैर्य, तत्परता सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार और कार्य-कुशलता इनके प्रमुख गुण है।

स्वास्थ्य परीक्षणोपरान्त यह प्रयास हो कि दत्त निर्देशन के अनुसार अभिभावक, परिचारिका एव अध्यापक तदनुसार कार्य को एव प्रभावी बालक को चलाएँ और इसका ध्यान रखें कि मनमाने ढग से कोई कार्य न किया जाये। "स्वास्थ्य परीक्षण के उपरान्त भी यदि विकलाग उन सुविधाओ से वचित रह जाता है, जिनके लिये स्वास्थ्य परीक्षण समिति ने सुझाव दिये है, तो यह परीक्षण अरण्यरोदन के अतिरिक्त कुछ नही है।" सुरेन्द्र के इस कथन की दृष्टि मे स्वास्थ्य परीक्षण के निष्कर्षों को प्रभावी रूप से क्रियान्वित किया जाना चाहिये जिससे विकृतियाँ या विचलन नियन्त्रित किये जा सके।

विद्यालयीय स्वास्थ्य समिति

विद्यालयीय स्वास्थ्य समिति का गठन इस दिशा मे अच्छे परिणाम दे सकता है। इसमे प्रशासन अधिकारी, चिकित्सा अधिकारी, शारीरिक चिकित्सा विशेषज्ञ, पुस्तकालयाध्यक्ष, समाजशास्त्री एव विकलाग बालक सम्मिलित होने चाहिये। यह समिति विकलाग बालको की पारिवारिक स्थितियो एव उन पर पडने वाले वातावरणीय प्रभावो तथा क्षेत्रीय स्वास्थ्य समस्याओ एव समाजसेवी सस्थाओ के सहयोग-स्रोतो का अध्ययन करके व्यावहारिक निष्कर्षों पर पहुँच सकती है। समिति स्वास्थ्य सयोजक विद्यालय का प्रतिनिधित्व करने के अतिरिक्त प्रभावी विकलागो के स्वास्थ्य के लिये व्यवस्था एव साधन भी जुटाये। वह

स्वास्थ्य परीक्षण कार्य को अत्यन्त गम्भीरता से क्रियान्वित कराये। इसके लिये स्वतन्त्र रूप से परिचायक या परिचारिका की नियुक्ति भी की जा सकती है। शारीरिक या मानसिक दृष्टि से स्वस्थ विकलांगो की कार्यक्षमता बढाने के लिये शरीर शिक्षा विशेषज्ञ के तत्वावधान मे विभिन्न प्रयोग एव अभ्यास दिये जाने चाहिएँ।

व्यक्तिगत स्वच्छता एवं स्वास्थ्य

"स्वच्छता का महत्त्व शारीरिक स्वास्थ्य से किसी भी अवस्था मे कम नही है। हाँ, यदि चाहे तो स्वच्छता को शारीरिक स्वास्थ्य की सवाहक शक्ति कह सकते है।" आयुर्वेदाचार्य प० लेखराम शर्मा का स्वच्छता के विषय मे यह कथन शारीरिक स्वच्छता तक ही सीमित नही है। अपितु इसमे वातावरणीय स्वच्छता की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है। विषाक्त या रोगाणुओ से युक्त वातावरण विकलागो को और अधिक अशक्त, एव उनकी कार्यक्षमता का ह्रास करने वाला होगा। अत स्वच्छता के ये दोनो पक्ष यहाँ विचारणीय है —

१. व्यक्तिगत स्वच्छता,

२ वातावरणीय स्वच्छता।

व्यक्तिगत स्वच्छता—विकलाग बालक अन्य सभी स्वस्थ बालको की भाँति अपने अगो को स्वच्छ रखें। विद्यालय सेवक या सेविका विकलाग बालको की शारीरिक स्वच्छता मे सहायता करे, तो उत्तम होगा। आगिक स्वच्छता के विषय मे सामान्य निर्देश इस प्रकार है :—

सिर के बालो की स्वच्छता—इससे प्रगाढ निद्रा, एकाग्रता, खुजली जैसे विकारो से रक्षा, एव प्रसन्नता प्राप्त होती है। प्रतिदिन सिर के बालो को दही, साबुन, शैम्पू या मुलतानी मिट्टी से धोना चाहिये। स्नान के पश्चात् बालो मे अगुलियाँ डालकर बालो को खेंचना बालो का अच्छा व्यायाम है।

त्वचा की स्वच्छता—त्वचा की स्वच्छता न होने से स्वेद ग्रन्थियो से निस्सृत स्वेद एव तैलीय पदार्थ, जिनसे त्वचा के छिद्र अवरुद्ध हो जाते है, जिन पर गर्द, धूल एव जीवाणुओ के चिपकने से रोगो की सम्भावना हो जाती है। त्वचा की अस्वच्छता के कारण वृक्क को विजातीय द्रव्य के निकालने के लिये अतिरिक्त श्रम करना पडेगा। त्वचा स्वच्छ रहने से मन प्रसन्न रहता है, एव शरीर मे स्फूर्ति रहती है। तेल-मालिश और धूप-स्नान भी त्वचा की स्वच्छता के लिये आवश्यक हैं।

दाँतो की स्वच्छता—दाँत आहार का चर्वण करने और इस प्रकार उसके उचित रूप मे अमाशय तक पहुँचने मे विशेष योग देते है। पर्याप्त चर्वण के अभाव मे आहार को पचाने का कार्य आमाशय को करना होगा। दाँतो की स्वच्छता हमको आमाशयिक व्रण, रक्ताल्पता, वायु विकार एव लसिका ग्रन्थियो के विकृत होने से बचाती है।

प्रात एव सोते समय दाँत अवश्य स्वच्छ किये जाएँ। इसके लिये दाँतुन (कीकर, नीम, टूथ पेस्ट) एवं मजन आदि का प्रयोग किया जाना चाहिये। दाँतो की आवश्यकतानुसार विशेषज्ञ की राय से मजन लिये जा सकते है। दाँतुन चबाना अच्छा व्यायाम है।

नेत्र एवं कर्ण की स्वच्छता—चक्षुहीन एव अन्य विकलाग बालक भी शीतल जल से प्रातः नेत्र धोएँ। तेज चमक एव कम प्रकाश से नेत्रो की रक्षा करे। नेत्र मे पीड़ा हो

तो अध्ययन न करे। त्रिफला के जल से नेत्र धोना उत्तम है।

कान मे तिनका या माचिस की सलाई घुमाना हानिकारक है। नाक, गला, और दाँतो की स्वच्छता से भी कर्ण विकार नही होते। शुद्ध सरसो का तेल आँख मे लगाना और कान मे डालना भी लाभदायक है।

मल-मूत्र विसर्जन—यह व्यक्तिगत स्वच्छता का प्रमुख पक्ष है। मल का वँधा हुआ न निकलना, अत्यधिक पतला या वार-वार आना, मल द्वार पर मल लगना यह सव विकृतियाँ है। मूत्र का वार-वार आना, दर्द या कष्ट के साथ बूँद-बूँद निकलना, मूत्र-त्याग के पश्चात् थकावट अनुभव करना मूत्र विषयक विकार की सूचना देते है।

मल-मूत्र विसर्जन का नियमित स्वभाव अनेको रोगो से रक्षा करता है। मल त्याग के लिये सूर्योदय से पूर्व अच्छा समय है। शौच जाने से पूर्व दाँत स्वच्छ करके तावे के पात्र मे रखा जल पीना अत्यन्त लाभप्रद है। नीवू का रस पानी मे डालकर शौच से पूर्व पीना मलावरोध को दूर करता है। (तावे के पात्र मे नीवू का रस नही डालना चाहिये।)

वस्त्र—भारत जैसे देश के लिये हल्के रग सर्वोत्तम हैं। शीत ऋतु मे गहरे रग पहने जा सकते है। वस्त्र चाहे कैसा भी क्यो न हो अत्यन्त स्वच्छ होना चाहिये। शरीर पर वस्त्र का दवाव न पड़े। अत्यधिक तग कपडे स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।

पोषक आहार—पोपक आहार विकलाग अवस्था के वालक के लिये और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। पर्याप्त मात्रा मे प्रोटीन कार्वोज, वसा, लवण तथा जल की शरीर को आवश्यकता होती है।

— प्रोटीन शरीर की वृद्धि करने मे, न्यासर्गों की उत्पत्ति मे एव शरीर मे तन्तुओ की टूट-फूट की पूर्ति करता है। दूध मे यह पर्याप्त मात्रा मे होता है।

— कार्वोज शरीर मे ऊष्मा वनाये रखता है। फलो मे यह अधिक होता है।

— लवण पाचक रसो की वृद्धि करने, शरीर मे क्षार को सम स्थिति मे रखने एव शरीर की वृद्धि करने के लिये उपयोगी है। इसके अभाव मे अस्थि विकृति, दन्त विकार, शरीर की वृद्धि मे अवरोध, भोजन के पचने मे वाधा एव माँस-पेशियो मे क्रियाहीनता उत्पन्न होने की स्थिति हो जाती है।

स्वास्थ्य सयोजक को जीवति (विटामिन्स) का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिये। इसमे आवश्यकतानुसार सामान्य परिवर्तन करके विकलागो को उनके उपयुक्त आहार प्रदान किया जा सकता है।

III विकलांगों के लिये शारीरिक शिक्षा का सर्वतोमुखी कार्यक्रम

"चिकित्सा की अपेक्षा अच्छा है, हम विकलागो के उन अगो को व्यायाम द्वारा पुष्ट एव गतिशील वनाये जिनकी शक्ति या क्षमता विकृत हो गई है या फिर शिथिल पड गई है।"

—देवव्रत वशिष्ठ

प्रवेश क्रमाक' ' ·········   प्रवेश तिथि······· ····

विकलांग स्वास्थ्य परीक्षण प्रपत्र

१ विकलाग वालक का नाम······ ··· ·· ·   पिता का नाम · ··· ····· · ··· ·· · ·· ··· ·····

२ जन्म तिथि···· ········· ·· ······ ·· ·   शव्दो मे' ····· · · · · · · · ·· वय···· ·····

३ सामान्य स्वास्थ्य · · ···· ····· ·   प्रारम्भिक विकलागावस्था'' ·· ··· · ····· ····

शारीरिक स्वास्थ्य	मानसिक स्वास्थ्य	मनोसामाजिक स्वास्थ्य
सामान्य स्थिति	बुद्धि	व्यवहार
शारीरिक		
ऊँचाई		
भार	ग्रहणीय शक्ति	परिवार
वक्ष		
नेत्र		
दन्त	अवधान	मुख्य अवस्था
कर्ण		
नासिका एवं ग्रीवा		
शारीरिक क्षमता	शारीरिक क्षमता	शारीरिक क्षमता
शारीरिक शक्ति	शारीरिक शक्ति	शारीरिक शक्ति
पूर्व परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पूर्व परीक्षण
अन्तर	अन्तर	अन्तर
सुझाव	सुझाव	सुझाव
अनुवर्तन	अनुवर्तन	अनुवर्तन
विशेष उपचार	विशेष उपचार	विशेष उपचार
हस्ताक्षर	हस्ताक्षर	हस्ताक्षर

विकलाग अपनी शारीरिक अवस्था मे केवल प्रभावी अगो को छोडकर अपने शेष स्वरूप मे साधारण वालको से भिन्न नही होते। अपनी शारीरिक स्वस्थता, गठन और शरीर की पुष्टता के प्रति इनमे भी एक महत्त्वाकाक्षा होती है। शारीरिक शिक्षाविद्, चिकित्सक एव व्यायामविद् अवरोध रहित आगिक गति को सर्वाधिक महत्त्व देते है। कार्य की प्रकृति अधिकाशत शारीरिक एव आगिक गतियो को नियन्त्रित करती है। यथा—कृषक एव श्रमिक को सर्वाधिक शारीरिक श्रम करना पडता है, उसके विपरीत व्यापारी, लिपिक-वर्ग, वकील, अध्यापक वर्ग आदि को अधिक बौद्धिक श्रम। प्रथम वर्ग मे बौद्धिक एव द्वितीय वर्ग मे शारीरिक श्रम की दृष्टि से असन्तुलन है। विकलाग व्यक्ति मे दुर्घटना, बीमारी, पोषक तत्त्वो के अभाव तथा गर्भावस्था मे विकृतियो के फलस्वरूप असतुलन, स्थायी रूप धारण कर लेता है। शारीरिक शिक्षा अपने व्यवहार मे स्वस्थ एव गतिशील जीवन है एव विशिष्ट प्रयोग मे इसके अतिरिक्त उपचारात्मक क्रिया भी है।

शारीरिक शिक्षा का अभिप्राय

शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था वलवर्द्धिनी देहव्यायामसज्ञा। (चरक)

जीने के लिये जिस प्रकार अन्न सर्वोपरि है, उसी प्रकार स्वास्थ्य हेतु व्यायाम। शारीरिक अगो को जितना अभ्यास दिया जायेगा, वे सशक्त और गतिशील होगे। निष्क्रिय अवयव गतिहीन, क्षीण एव विकृत हो जाते है। इन्ही गतिहीन, क्षीण एव विकृत अगो मे पुनर्जीवन प्रदान करने हेतु शारीरिक शिक्षा उपचारात्मक शक्ति रखती है।

भारतीय मनीषियो ने प्रारम्भ से ही शारीरिक क्षमताओ को आसन, आहार-विहार और प्राणायाम के माध्यम से मन के नियन्त्रण मे गतिशील होना माना है। स्पार्तन लोगो ने शरीर को बलिष्ट और सुडौल बनाने मे अपनी सम्पूर्ण शक्ति और बुद्धि का उपयोग किया। यह निर्विवाद सत्य है कि शारीरिक शिक्षा के माध्यम से अपवादी एव विकलाग बालक भी शक्ति का अर्जन कर सकते है। विकलागो हेतु शारीरिक शिक्षा का अभिप्राय जहाँ एक ओर शक्ति एव गति का अर्जन है, वहाँ दूसरी ओर विकारो की रोक-थाम एवं विकृत अगो को अधिकाधिक उपयोग मे लाने से भी है। सुरेन्द्र का कथन है कि "व्यायाम के माध्यम मे सन्धिस्थल, पेशियाँ, अग विशेष मे अर्जित शक्ति व गति एव उन अगो के विकलाग की इच्छा या बुद्धि के अनुसार सक्रिय रहने पर ही शारीरिक शिक्षा का अभिप्राय शुद्ध और व्यापक जाना जा सकता है।"

प्रस्तुत विचार का अभिप्राय आगिक सचालन के नियन्त्रण और उपयोगिता की परिसीमा को स्पष्ट करते हुये महत्त्व दर्शाना है। विकलाग, शारीरिक शिक्षा के माध्यम से, शारीरिक पैशिक क्रियाओ मे, अस्थि-सन्धि-स्थल एव सवहन प्रक्रियाओ मे, तथा आगिक उपयोगिता का स्वाभाविक रूप मे सचालन करने मे, सक्षम हो सकते हैं। इसी प्रकार व्यायाम स्नायुदौर्वल्य को दूर करके चेतन क्षमता प्रदान करता है। विकलाग की प्रकृति, और विकलागावस्था के अनुसार अभ्यास क्रियाओ मे अन्तर एव नियोजन आवश्यक है।

विकलाग शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य

विकलाग किसी न किसी अवस्था मे सामान्य व्यक्ति से न्यून ही है। यह अवस्था मानसिक, शारीरिक एव मनोसामाजिक आदि कुछ भी हो सकती है। प फकीरचन्द

कौशिक का कथन है कि, "विकलाग को विकलाग या विकार युक्त बालक मानकर शारीरिक शिक्षा न देने का अर्थ होगा उसे प्राकृतिक उपचार एव आगिक शक्ति के प्रयोग से वचित करने के साथ-साथ आत्म-हन्ता बना देना।" शारीरिक शिक्षा के द्वारा विकलाग मे जहाँ आगिक प्रयोग विकसित होगा वहाँ उसमे असाधारण रूप से आत्मविश्वास, उत्साह एव स्वावलम्बी वृत्तियो का स्वरूप स्वत प्रस्फुटित होने लगेगा। इसी मनोवृत्ति के परिणामस्वरूप विकलाग सामान्य व्यक्ति के सदृश जीवन जीने की दिशा मे अग्रसर होगा।

शारीरिक शिक्षा के अभाव मे सामान्य बालक भी परावलम्बी जीवन जीने लग जाते है। उनमे भी नैराश्य की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, फिर विकलाग के समक्ष जीवन पद्धति मे परिवर्तन का प्रश्न है। वर्षों से विकलाग अपने को प्रभु, प्रकृति और पुरुष के सहारे ही नही दया पर पलने वाला मानकर जीवन जी रहा था। वर्तमान उसके समक्ष आत्मविश्वास, आगिक शक्ति या क्षमता के उपयोग के साथ सामाजिक जीवन जीने की दिशा मे स्वागत द्वार खोले बैठा है। केवल औषधि-उपचार निदान नही है। वह एक ठहराव है। इस ठहराव का लाभ उठाकर प्राकृतिक ढग से प्रभावी अग को नियमित करना चाहिये। यह अनवरत अभ्यास और व्यायाम द्वारा ही सम्भव है। प्रस्तुत विचार धारा के अन्तर्गत विकलागो हेतु शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित किये जा सकते है —

विकलागो हेतु शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य

— सवहन, (रक्त एव अन्य द्रव) प्रक्रिया को स्वस्थ और बाधा रहित रखना, जिससे हृदय, धमनियो, शिराओ, कोशिकाओ, लसिकाओ आदि का सवहन कार्य मे प्रसारण अभिशोषण एव विसर्जन स्वाभाविक रूप से बना रहे।

— पैशिक एव आगिक क्षमता एव शक्ति के विकास के साथ-साथ उन्हे मन या बुद्धि के नियन्त्रण मे लाना।

— विकलाग बालको मे सीखने की प्रक्रिया को थकान रहित एव द्रुत से द्रुततर करते हुये, प्रभावी अगो मे स्वाभाविक लोच एव गति उत्पन्न करना।

— स्नायविक एव अन्य विकारो के निराकरणार्थ उपचारात्मक व्यायाम प्रस्तुत करना।

— बाह्य प्रकृति का शरीर की अन्त प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित करके मानसिक एव शारीरिक अवस्था को नीरोग एव स्वस्थ रखना।

— सामाजिक समजन की दृष्टि से समूह-व्यायाम प्रस्तुत करके उत्तरदायित्व एव सामाजिक चेतना की भावना का विकास करना।

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्यो को प्रो लालचन्द शर्मा दो भागो मे वर्गीकृत करते है—

१ सामान्य अवस्था के विकलागो हेतु, और
२ विशिष्ट विकलागावस्था हेतु।

१ सामान्य अवस्था मे वे विकलाग हैं जिन्हे केवल अभ्यास की आवश्यकता है। यह अभ्यास प्रक्रिया क्रमश बढाई जा सकती है। इसमे समूह-अभ्यास भी शारीरिक शिक्षाविद् की देखरेख मे दिये जा सकते है।

२ विशिष्ट विकलागावस्था मे वे विकलाग आते है जिन्हे उपचारात्मक दृष्टि से शारीरिक शिक्षा की आवश्यकता है। एक ही प्रकार के विशिष्ट विकलागो की सख्या सामान्य विकलागो की सख्या की दस प्रतिशत से अधिक नही हो सकती। अत इन्हे व्यक्तिगत रूप से निर्देशित उपचारात्मक अभ्यास बताये जाएँ।

विशिष्ट विकलागो का शारीरिक परीक्षण भी अत्यन्त आवश्यक है। प्राय औषध उपचार, एव शारीरिक प्रशिक्षण साथ-साथ चलने समीचीन है। नियमित शारीरिक परीक्षण के माध्यम से यह भी जानते रहना चाहिये कि किस अग को किस प्रकार के कितने अभ्यास की आवश्यकता है। विशिष्ट विकलाग की प्रकृति का ज्ञान भी शारीरिक शिक्षाविद् को रहना चाहिये।

व्यायाम का स्वरूप इतना सहज और स्वाभाविक होना चाहिये जिससे विकलाग वालक किसी भी प्रकार का वोझ अनुभव न करे। अभ्यास की प्रक्रिया भी जटिल नही होनी चाहिये।

शारीरिक शिक्षाविद् विशिष्ट विकलाग वालक के शारीरिक शिक्षण का नियमित अभिलेख तैयार करता रहे। यह अभिलेख प्रगति या क्षति की गति के प्रभाव को दर्शाने वाला हो। इसमे अवधि अवश्य अकित की जाये। इसी अभिलेख के आधार पर भावी अभ्यास की योजना एव कार्यक्रम निश्चित किये जाने चाहिये।

मनोसामाजिक विकृति के वालको को शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत समूह-अभ्यास प्रदान किये जाएं जिसमे इनमे उत्तरदायित्व, कार्यवोध, समय की पावदी एव कर्तव्य-परायणता का ध्यान हो, क्योकि इन वालको की समस्या ही सामाजिक समजन की समस्या है।

मानसिक मन्दता की स्थिति मे सरसो का तेल मर्दन एव शीर्पासन अत्यन्त लाभकारी है। शीर्पासन की अभ्यास क्रिया सिर मे पीडा या मस्तिष्क रोग के वालक को न दें।

विभिन्न शारीरिक विकलांगावस्था एवं शारीरिक शिक्षा

आगिक विकलागता एव शारीरिक शिक्षा

शारीरिक शिक्षाविद् के लिये यह आवश्यक है कि वह विकलागावस्था सम्वन्धी अंग, स्थिति एव शक्ति की प्रारम्भ मे जांच कर लें। यथा लकवा रोग से प्रभावित अग, दुर्घटना मे कटे या या प्रभावित हाथ-पैर, हाथ-पैर की हड्डियो मे पीडा या कम्पन आदि की अवस्था मे साधारण रूप से शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत कृपि या वागवानी का नियमित कार्य, भ्रमण (एक किलोमीटर तक) किसी वस्तु को धकेलना, खेचना, दवाना जैसी क्रियाएँ सम्मिलित की जाएँ।

सामान्य या आशिक आगिक अपूर्णता की दृष्टि से सूर्य नमस्कार सर्वोत्तम है। गति व्यायाम, ध्वनि व्यायाम एव वौद्धिक व्यायाम एक साथ प्रदान किये जा सकते हैं। आगिक विकलागो को शारीरिक शिक्षा प्रदान करते समय निर्देशित एव नियन्त्रित वातावरण रहना चाहिये।

उपचारात्मक व्यायाम भी विशेषज्ञो के निर्देशन मे प्रदान किये जा सकते हैं। साधारण संवहन, पेशियो और सन्धियो को स्वाभाविक गति देने के लिये, अगो मे भी शारीरिक क्रियाएँ दी जा सकती है, यह देखकर कि शरीर का कौनसा अग कितना श्रम या

अभ्यास चाहता है । लकवे की स्थिति मे आधारात्मक गति दी जा सकती है; जैसे लकडी पकडना, उठना, बैठना, लेटना, सामान्य अवरोध लावना, स्नान, मालिश आदि ।

ज्ञानेन्द्रिय विकलागता एव शारीरिक शिक्षा

ज्ञानेन्द्रिय विकलागता के अन्तर्गत प्रमुख तीन अवस्थाएँ आती हैं —

१. बधिरता
२ चक्षु-अन्धता
३ वाक्-विकार ।

उपर्युक्त तीनो ही अवस्थाओ मे शरीर की आगिक स्थिति सामान्य बालको जैसी ही है । केवल चक्षु-अन्धता की दृष्टि मे प्रभावी बालक सकेतो को देख नही सकता, अपितु सुनकर समझ अवश्य सकता है । शेष दोनो ही दृष्टि-सम्पन्न है । अत इन तीनो ही प्रकार के विकलागो को वह समस्त आसन, प्राणायाम, कसरत एव व्यक्तिगत अभ्यास दिये जा सकते हैं जो प्राय सामान्य बालक को दिये जाते हैं ।

चक्षु-अन्ध सामान्यत समूह खेल मे सम्मिलित नही हो सकते । किन्तु जयपुर चक्षु अन्ध विद्यालय के एक नेत्रहीन प्राध्यापक ने बतलाया कि चक्षु-अन्धता के क्षेत्र मे शिक्षण इतना विकसित हो चुका है कि चक्षुहीन क्रिकेट तक खेलने लगे हैं । प्रस्तुत उदाहरण विशिष्ट अपवाद हो सकता है, परन्तु सामान्यत ऐसा होता नही । तैरना प्राय तीनो अवस्थाओ मे सम्भव है एव यह सर्वोत्तम व्यायाम है इसमे एक साथ सम्पूर्ण शरीर को अभ्यास मिल जाता है । चक्षु-अन्ध को तरणताल मे अभ्यास देते समय दूरी का ज्ञान अवश्य करा देना चाहिये जिससे निश्चित अन्तर पर जाकर वह रुक जाए तथा किसी को उसके पास निरन्तर सावधान रहना चाहिये, जिससे किसी प्रकार की दुर्घटना न हो ।

आंगिक पुष्टता एवं बौद्धिक विकास की दृष्टि से आसन, प्राणायाम, भ्रमण, सूर्य-नमस्कार, दण्ड-बैठक, मल्लखम्भ, कुश्ती एव कतिपय पश्चिमी अभ्यास लिये जा सकते हैं । इन तीनो ही अवस्था के बालक प्राय शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होते है एव शारीरिक शिक्षण के अवसर पर आगिक अभ्यास मे इन्हे किसी भी प्रकार की बाधा अनुभव नही होती । बौद्धिक विकास की दृष्टि से समूह एव सभा या खेलो का प्रयोग लाभकारी होगा । हकलाना, तुतलाना या अस्पष्ट वाक् विकास की स्थिति मे वाद्य यन्त्र का अभ्यास उपचारात्मक रूप मे परिणाम दे सकता है ।

विशेष ध्यानव्य इस दिशा मे यह है कि शारीरिक शिक्षाविद् को प्रभावित बालक की आर्थिक एव सामाजिक स्थिति जान लेनी चाहिये । यदि साधारण आर्थिक स्थिति व श्रमिक वर्ग के बालक हैं, तो उन्हे शारीरिक शिक्षा व उद्योग शिक्षा के सयुक्त स्वरूप को भी अभ्यास मे सम्मिलित कर लेना चाहिये । कृषि बागवानी, खाती लुहार या श्रमिक का कार्य, ऐसे हैं जिनमे पर्याप्त शारीरिक श्रम मिलता रहता है । अत इस प्रकार के बालको को साधारण व्यायाम के अभ्यास ही किये जाएँ । आगिक स्वस्थता के लिए बालको को सुरक्षात्मक व्यायाम अभ्यास भी दिये जाएँ तो उत्तम होगा । जैसे, लाठी, तलवार, जुडो, मुक्केबाजी, धनुषबाण, बन्दूक आदि के अभ्यास । वाक् विकार की स्थिति मे वाद्य सगीत एव नृत्य प्रभावकारी परिणाम देते देखे गये हैं ।

शारीरिक व्यायाम करते समय बालक की इच्छा, मनोवृत्ति एव उत्साह को पूर्ण रूपेण ध्यान मे रखना चाहिये ।

"शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य करते समय यह महत्त्वपूर्ण है कि जिसे ग्राप ग्रभ्यास वताते है, वह ग्रापको कितना सहयोग प्रदान कर रहा है। यही प्रत्येक स्तर पर सफलता या ग्रनफलता की धुरी है।" चन्द्रपति के इस कथन मे व्यावहारिक एव मनोवैज्ञानिक वल है।

मानसिक स्वास्थ्य ग्रौर व्यायाम

मिर्गी, प्रमस्तिष्कीय सस्तभ या ग्रन्य मानसिक रोगो की स्थिति को भलीभाँति जाँच लेने पर ही व्यायाम के स्वरुप को निर्धारित करना चाहिये। मानसिक विकार युक्त वालको को व्यायाम शारीरिक शिक्षक की सीधी देख-रेख मे करवाना श्रेयस्कर है। प्राणायाम, ग्रासन, भ्रमण एव ग्रत्यधिक सरल व्यायाम के माध्यम से मानसिक विकारग्रस्तता से युक्त व्यक्ति को केवल व्यायाम ही नही, उपचारात्मक व्यायाम भी वताये जा सकते हैं।

स्नायविक तनाव भी व्यायाम द्वारा शान्त किये जा सकते है। स्नायविक विकार की ग्रवस्था मे पेशिक व्यायाम ग्रधिक सफल होते हैं। चिन्ता, दुख, एव क्रोध के शमन हेतु शारीरिक सक्रियता लाभप्रद है। ग्राचार्य नेमराम शर्मा" स्नायविक एव पेशिक सन्तुलन रखने वाले व्यायामो को ही पूर्ण व्यायाम कहते है।" नींद स्नायविक तनाव को शान्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, परन्तु व्यायाम स्नायविक विकृति का शमन एव मार्गान्तरीकरण करते हैं। नागणी देवी की धारणा मे मानसिक उद्वेग का कारण पेशिक निष्क्रियता ही है। ग्रत मानसिक विकृति युक्त वालको का वर्गीकरण करके, साधारण ग्रौर विशिष्ट, दो श्रेणियो मे विभक्त कर लेना चाहिये।

साधारण मानसिक विकृति एव शारीरिक शिक्षा

साधारण मानसिक विकृति की ग्रवस्था मे सामान्य व्यायाम ही कराये जाये एव ध्यान रखा जाये कि कोई भी शारीरिक ग्रभ्यास प्रतियोगितात्मक नही हो। जहाँ प्रतिस्पर्धा विकसित होती है वहाँ स्नायविक तनाव शीघ्रता से फैलते है, जिससे मानसिक विकृति वढने का भय रहता है। मानसिक निश्चिन्तता की स्थिति मे लाभ द्विगुणित होता है। समूह-व्यायाम ग्रौर खेलो का ग्रभ्यास भी हितकर है। जब तक शरीर शिक्षाविद् मानसिक स्वास्थ्य विषयक जाँच के परिणाम ध्यान मे न रक्खें मानसिक विकृति की ग्रवस्था वाले वालक को द्वन्द्व (शस्त्र चलाना या कुश्ती लडना) जैसे ग्रभ्यास नही देने चाहिये।

विशिष्ट मानसिक विकृति

प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ, मिर्गी रोग, एव ग्रन्य मानसिक विकारो से ग्रत्यधिक प्रभावित वालक को निर्देशित शारीरिक शिक्षा ही देनी चाहिये। घूमना इस रोग के लिए श्रेष्ठ है। सुरक्षात्मक ग्रावश्यकता को ग्रनुभव करते हुये प्राथमिक चिकित्सा मजूसा भी साथ रहनी चाहिये। तैरना, शस्त्र सचालन, तेज दौडना या श्रम साध्य शारीरिक ग्रभ्यास नही दिये जाएँ। उद्यान मे टहलना, हलके हाथ से मालिश, सूर्य स्नान, साधारण ग्रासन ग्रादि पर्याप्त है। प्रभावित वालक की रुचि, ग्रवस्था, स्वास्थ्य एव व्यायाम की ग्रवधि का विधिवत् ग्रभिलेख भावी निर्देशन के लिए तैयार किया जाना चाहिये। इसी के ग्राधार पर शारीरिक ग्रभ्यास की क्रिया को परिवर्तित करना उचित रहता है।

उपचारात्मक अभ्यास भी प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ, सिर मे पीडा आदि की स्थिति मे दिये जा सकते है। प्रात उषाकाल मे जब सूर्य की लालिमा उभर रही हो एव सूर्य लाल विम्ब के रूप मे हो, उस समय सूर्य के प्रकाश को विवस्त्र होकर ग्रहण करना अत्यन्त लाभ-प्रद है। इस समय रवि-रश्मियाँ नील-लोहितातीत किरणे प्रसारित करती हैं। अनेको दु साध्य रोगी अस्पतालो मे कृत्रिम नील-लोहितातीत किरणो के द्वारा स्वास्थ्य अर्जन कर रहे है। प्राकृतिक किरणो के लाभ की मात्रा का इससे अनुमान लगाया जा सकता है।

मन्द बुद्धि बालक स्थल शारीरिक श्रम के कार्य सहज ही कर सकते है, जैसे कृषि बागवानी, भार उठाना, खुदाई, दौडना, कूदना आदि। बीमार को छोडकर अन्य सभी प्रकार की शारीरिक अवस्था वाले बालको को सूर्य नमस्कार अत्यन्त लाभप्रद है। साथ शतरज जैसे खेल भी उन्हे दिये जाएँ जिससे ध्यान, एकाग्रता और निर्णय क्षमता का उनमे विकास हो। सगीत एव नृत्य जैसे अभ्यास भी रुचि और क्षमता के अनुसार किये जा सकते हैं। नृत्यपूर्ण सन्तुलित व्यायाम हैं।

शारीरिक शिक्षा स्वभाव निर्माण की ओर अग्रसर हो। आवश्यकतानुसार औषधोप-चार भी चलते रहना चाहिये।

मनोरजक अभ्यास

मानसिक विकृति के बालको को मनोरंजक अभ्यास देने का प्रचलन अब बढता जा रहा है। हसना, और मुक्त होकर हसना, मानसिक तनाव को कम करता है। जापान मे कतिपय ऐसे खिलौनो का विकास किया है जो प्रत्येक स्तर के व्यक्ति का मनोरजन करते है। "हसी का गोला" ऐसा ही खिलौना है जो चाबी लगने के पश्चात् हसता रहेगा। सप्ताह मे एक बार शारीरिक शिक्षा के अतिरिक्त हसने का अभ्यास अवश्य दिया जाना चाहिये।

मनोसामाजिक विकृति एवं व्यायाम

मनोसामाजिक विकृति की अवस्था मे द्वेष, घृणा, क्रोध या एकाकीपन का स्वभाव बन जाता है। समाज भावना के प्रति एक विकार ग्रन्थि बन जाती है, जिसका सीधा प्रभाव बालक के व्यवहार पर पडता है। इससे प्रभावित बालक के व्यवहार मे रूक्षता या निरर्थक सघर्ष की भावना जाग्रत हो जाती है। कभी-कभी यह सघर्ष प्रतिद्वन्द्वात्मक स्थिति से भी आगे बढकर हिंसा के रूप मे हो जाता है। प्राय बलात्कार, कतल, चोरी, डाका, छुरे बाजी, सामाजिक सम्पत्ति का विनाश, मारपीट एव अन्य अपराध इसी विकृति के परिणामस्वरूप है। सम्भवतः बालापराध के पीछे समाज स्वीकृति या सामाजिक उदासीनता प्रमुख हो, परन्तु विषमता, अभाव एव विकास के पर्याप्त साधन न मिलना भी मनोसामाजिक विकृति के कारण हैं।

उपचारात्मक एव शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से, इस मनोवैज्ञानिक विकृति के बालको को समूह अभ्यास दिये जाएँ। इसमे लोक नृत्य,-नृत्य, खेल, (देशी, विदेशी) तथा सहयोग भावना एव उत्तरदायित्व को विकसित करने वाले अभ्यासो को प्राथमिकता दी जाये। इससे व्यक्तिश, एव समूह अभ्यास द्वारा, बालको मे आत्म-विश्वास जाग्रत होगा। श्रमदान जैसे कार्य भी नियमित रूप मे करवाये जा सकते है। अभ्यास द्वन्द्वात्मक कम हो, तो अधिक ठीक होगा। आसन, प्राणायाम, तैरना, सूर्य नमस्कार, उत्तम है। अवसरानुकूल

सास्कृतिक पर्वो का आयोजन, श्रम शिविर, भ्रमण (प्राकृतिक स्थलो एव सामाजिक स्थलो मे) सामाजिक समजन की दिशा मे प्रभावकारी परिणाम प्रदान कर सकते हैं।

IV शारीरिक शिक्षा हेतु अभ्यास

"शारीरिक शिक्षा स्वस्थ जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है, परन्तु विकलागो के लिए यह अनिवार्य आवश्यकता है।" सुरेन्द्र का यह कथन विकलागो मे एक नवीन दिशावोध को जाग्रत कर रहा है। विभिन्न विकलागावस्थाओ के लिए उपयुक्त व्यायाम का उल्लेख स्वस्थ विकलागो मे नवोल्लास भरेगा, यह निश्चित है। विकलागो हेतु शारीरिक शिक्षण को प्रभावी वनाने के लिए यह आवश्यक हे कि उसमे चिकित्सक, अभिभावक, अध्यापक, शारीरिक शिक्षाविद् एव विशेषज्ञ का सम्मिलित योगदान हो, जिससे एक साथ, निरोधक, नियन्त्रक, उपचारात्मक एव आंगिक सचालन क्षमता का विकास हो सके। अत नीचे कुछ व्यायामो का, विकलागो हेतु अभ्यास की दृष्टि से वर्णन किया जा रहा है। शारीरिक शिक्षाविद् छ सूत्री व्यवस्था करके विकलागावस्थानुसार इनका सहज उपयोग कर सकते हैं।

छः सूत्री व्यायामाभ्यास

१. शक्ति एवं क्षमतावर्धक व्यायाम
२. रोग प्रतिरोधक एव रोग निवारक अभ्यास
३ स्फूर्ति एव उत्साहवर्धक व्यायाम
४. वौद्धिक अभ्यास
५ सामाजिक समन्वयपरक अभ्यास
६ सुरक्षात्मक अभ्यास।

सूर्य नमस्कार

शारीरिक एव मानसिक विकास की दृष्टि से यह सर्वश्रेष्ठ व्यायाम है। उपावेला मे, जव सूर्य की लालिमा नभ मे उभर रही हो, सूर्याभिमुख होकर यह व्यायाम प्रारम्भ कर देना चाहिये। जव सूर्य का लाल विम्व रक्ताभ त्यागने लगे, अभ्यास समाप्त कर दें। लगभग २० मिनट इस अभ्यास, क्रिया मे लगाये जाएँ। लगोट या चड्डी के अतिरिक्त शरीर पर अन्य वस्त्र न हो। इस समय सूर्य रश्मियो मे नील लोहितातीत किरणे होती हैं, जिनसे अस्थि, हृदय, आमाशय, नेत्र, मस्तिष्क, त्वचा आदि सम्वन्धी विकारो मे आशातीत लाभ होता है। अस्पतालो मे कृत्रिम नील लोहितातीत किरणो से दु साध्य रोगो की चिकित्सा के सफल परिणाम सामने हैं। मन की प्रसन्नता मे भी यह व्यायाम योग प्रदान करता है।

इसकी दस अवस्थाएँ हैं जिनकी पुन पुन आवृत्ति की जाये। सूर्य नमस्कार की आवृत्ति ५ से २५ वार तक विकलागो हेतु उचित है। ऋषि मुनियो ने सूर्य नमस्कार को स्वास्थ्य, शक्ति एव दीर्घायु के लिए प्राकृतिक अभ्यास वताया है।

(अभ्यास हेतु सूर्य नमस्कार की स्थितियाँ)
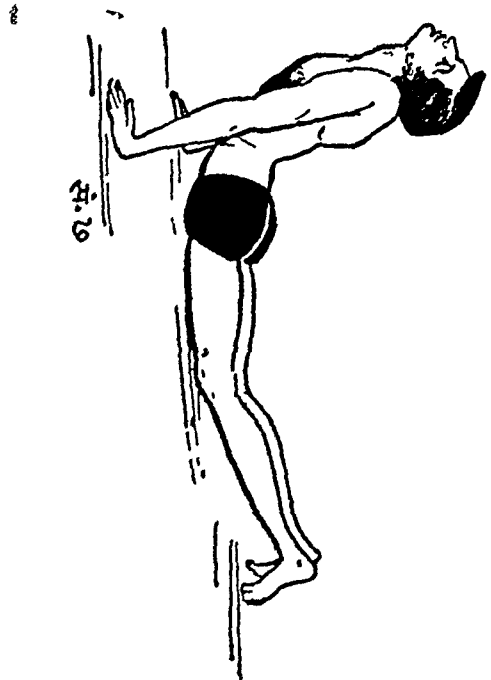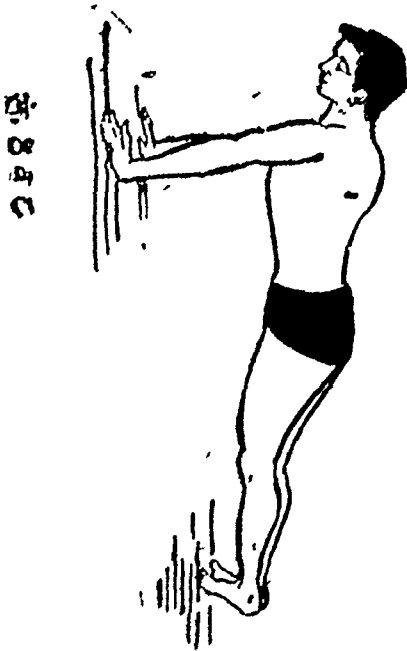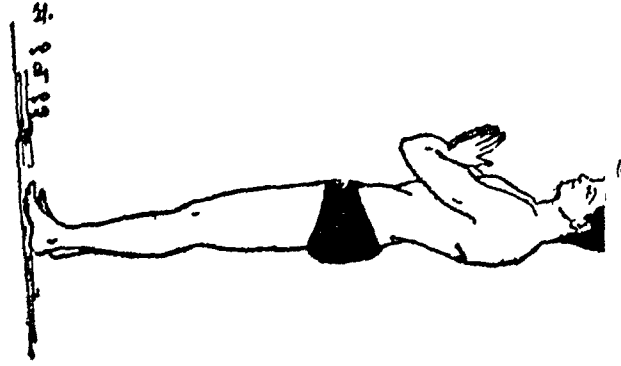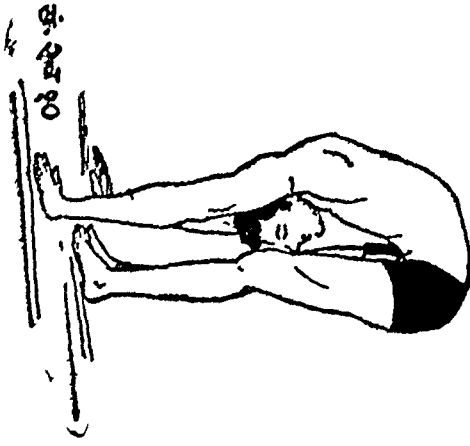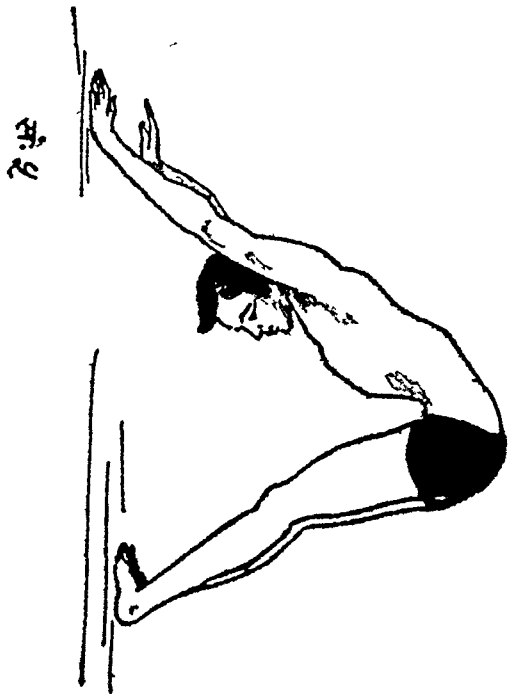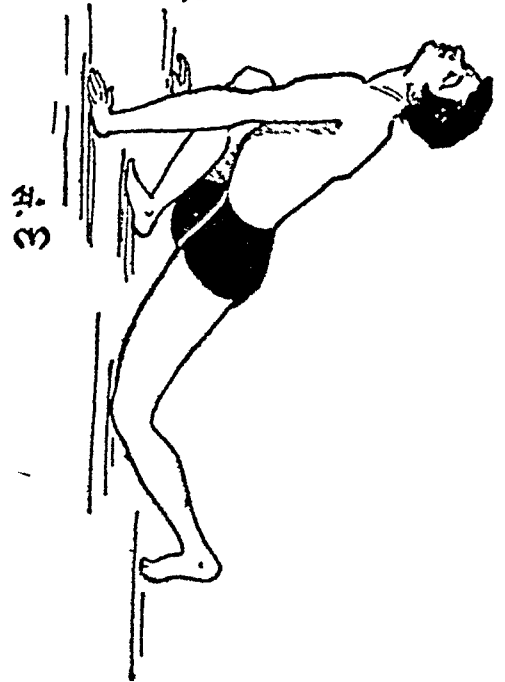
हाथ-पैरो की विकलागता इतनी प्रभावी न हो जिससे कि विधिवत् अभ्यास मे भी गति न हो सके। केवल इसी स्थिति मे इसे छोडा जा सकता है, परन्तु उपावेला मे प्राकृतिक नील लोहितातीत रश्मियो को नगे शरीर द्वारा सेवन किया जाये। सूर्य नमस्कार उत्तम रोग निरोधक एव आरोग्यप्रदाता व्यायाम है।

योगासन

अपवादी या अन्य विकलाग बालको के अतिरिक्त, प्रतिभा-सम्पन्न बालक भी जो विक्षिप्त नही हैं, योग का अभ्यास कर सकते है या उन्हे योगाभ्यास दिया जा सकता है। योगविदो का कहना है कि योग साधन किसी भी वय, अवस्था या शारीरिक विकृति के व्यक्ति (महिला अथवा पुरुष) द्वारा किया जा सकता है। शिक्षा सन्त स्वामी केशवानन्द के शब्दो मे "योग जड क्रिया नही है। शरीर, मन और प्राण को समजित रूप से सक्रिय रखने की प्रक्रिया ही योग है।" प्राणायाम योग मे प्रमुख है। इससे प्राणवायु द्वारा अन्त. शरीर की शुद्धि होती है।

योग के आठ अग है—
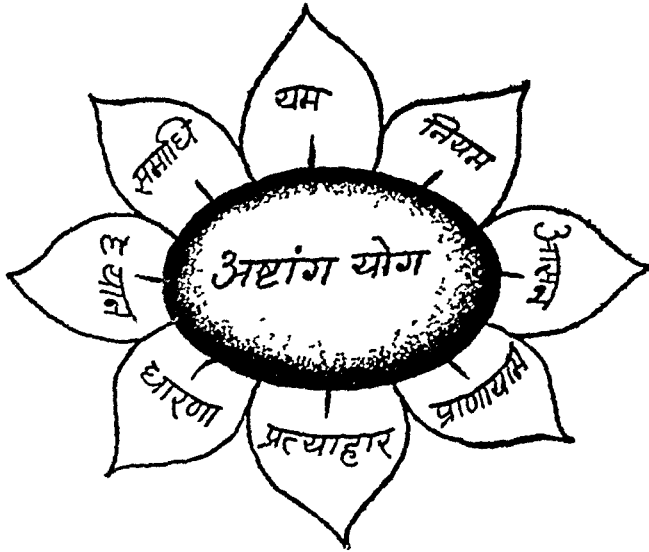
यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, आर्जव (सरल वृत्ति) मिताहार, एव शौच।

नियम—तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, प्रभुभक्ति, श्रवण, ह्री (दोष को स्वीकारना) मति (श्रद्धा), जप, हुत (हवन)

आसन—शारीरिक क्रियाएँ (शरीर का मन और बुद्धि के नियन्त्रण मे लाना) है। यह मल विसर्जन और रुधिराभिसरण द्वारा आरोग्यप्रदाता है।

प्राणायाम—प्राणवायु के माध्यम से फेफडे शक्तिशाली होते हैं एव सम्पूर्ण नाडी-चक्र मे चेतना विकसित होती है।

ध्यान, धारणा—मन को एकाग्र करने हेतु आवश्यक है। ध्यान मे तद्रूप स्थिति है।

समाधि—मन, प्राण और शरीर की एकाग्रता का अन्तिम चरण है।

योग द्वारा किसी भी अवस्था के व्यक्ति को लाभ होगा। मन, प्राण और शरीर को नियन्त्रण मे करने का यह प्रमुख साधन है। इसके प्रयोग से विकलाग अपनी वर्तमानावस्था से मुक्त होता है। दु खद स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब विकलाग का मन भी उस अवस्था से पराजय स्वीकार करले। योग व्यक्ति की चिन्तनधारा के प्रवाह को ही मोड देता है।

सुरक्षात्मक व्यायाम—लाठी, तलवार, बन्दूक, जुड़ो, मुक्केबाजी, मल्लविद्या आदि अभ्यास शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ और पूर्ण व्यक्ति को दिये जा सकते है। मूक, बधिर मन्द बुद्धि आदि बालको हेतु भी यह अभ्यास दिये जा सकते है।

आसन—शारीरिक नियन्त्रण, आरोग्य प्रदाता, रोग निरोधक एव उत्साहवर्धन करने वाले होते हैं। कुछ विशिष्ट आसनो का वर्णन अभ्यास हेतु नीचे दिया जा रहा है —

शीर्षासन—शीर्षासन आसनो मे शीर्षस्थ आसन है। प्रारम्भ मे दीवार का सहारा लेकर शीर्षासन क्रिया जाता है। रक्त सचार, कोष्ठबद्धता, नेत्र विकार, अस्थि रोग, हृदय रोग, मेरुदण्ड, यकृत, प्लीहा, मिर्गी, सिर शूल, त्वचा विकृति, स्नायु विकृति मे प्रभावकारी परिणाम देता है।

विधि—सिर के नीचे कोमल गद्दी रख कर प्रारम्भ मे दीवार के सहारे सिर के बल पर उलटे खडा रहा जाये। दोनो हाथो की अगुलियाँ मिलाकर सिर के पिछले भाग को चित्र मे दर्शाये अनुसार सहारा दे। प्रारम्भ मे एक मिनट एव अधिकतम अवधि स्वास्थ्य के अनुसार घटाई या बढाई जा सकती है। शीर्षासन के पश्चात् तीन मिनट सीधे खडे रहे। (विधि चित्र–१)

पद्मासन—बैठने की सर्वोत्तम विधि हैं। इससे आमाशयिक विकार, अस्थि मेरुदड व स्नायु के दोपो मे आशातीत होता है। (विधि–चित्र–२)
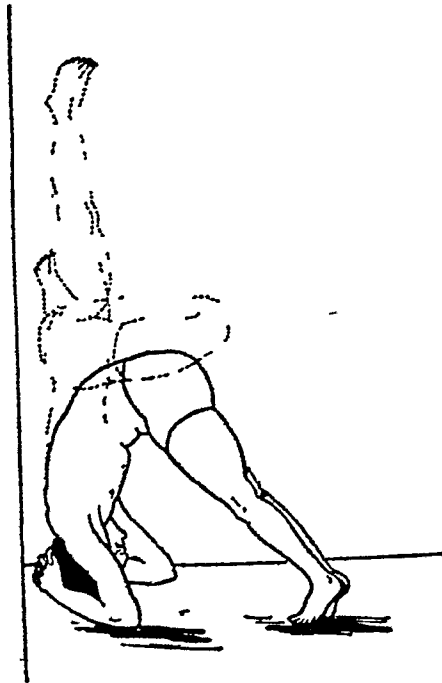
(१) शीर्षासन (२) पद्मासन
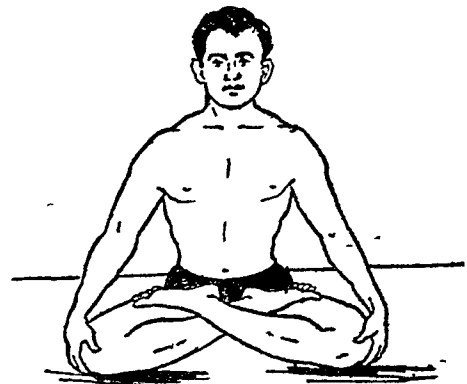
मयूरासन—भुजाओ की शक्ति के लिए उत्तम है। उदरविकृति, रीढ एव स्नायु विकारो मे लाभदायक है। (विधि–चित्र–३)

चक्रासन—अस्थि, पेशी, यकृत, प्लीहा एव स्नायु की विकृतियो को दूर करने के लिए यह आसन उत्तम है। भूमि पर सीधे लेटकर हाथो को भूमि पर रखना। सीधे लेट-कर ही अपने शरीर को चित्र सख्या ४ मे वर्णित विधि के अनुसार उठाना। इसे दो से दस तक आवृत्तियाँ दी जाएँ।
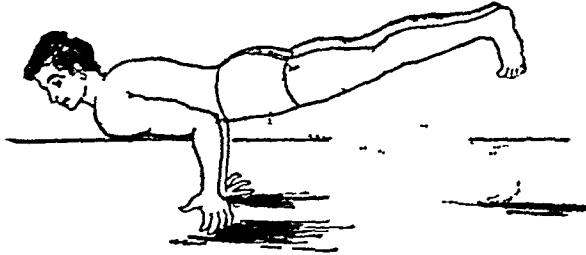
मयरासन (३)
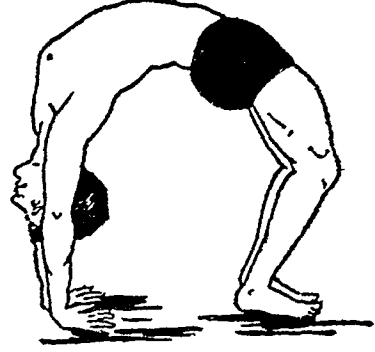
चक्रासन (४)

सर्वांगासन—ऊर्ध्व सर्वांगासन, सर्वाङ्गासन की ही मध्य स्थिति है। इसे हलासन भी कहते है। यकृत, प्लीहा, आते, कमर, ग्रीवा, स्कन्ध, घुटने आदि के लिए विशेष लाभकारी है। सर्वांगासन नाम से ही स्पष्ट है कि यह सम्पूर्ण अगो के लिए हितकारी है।
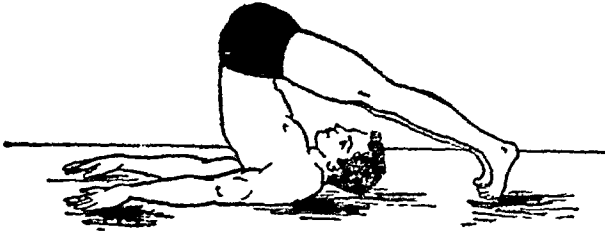
सर्वाङ्गासन

(५)

ऊर्ध्व सर्वांगासन—चित्र पाँच मे दर्शाई विधि अनुसार। इस आसन से शीर्षासन के सदृश ही लाभ होते हैं। ग्रीवा, अस्थियाँ, हृदय आदि के लिए अत्यधिक स्वास्थ्य प्रदाता है।

पाद हस्तासन—सीधे खडे होकर चित्र ६ मे दर्शाई स्थिति के अनुसार क्रमश पाँच मिनट तक अभ्यास करने से स्नायु विकृति, अस्थि विकार, उदर विकृतियो आदि मे लाभ-प्रद है। सुषुम्ना, यकृत, प्लीहा एव आतो के लिए भी लाभप्रद है। यदि इसी विधि को

भूमि पर वैठकर किया जाये तो वह पश्चिमोत्तानासन कहलाती है। इसके प्रभावकारी लाभ हैं।
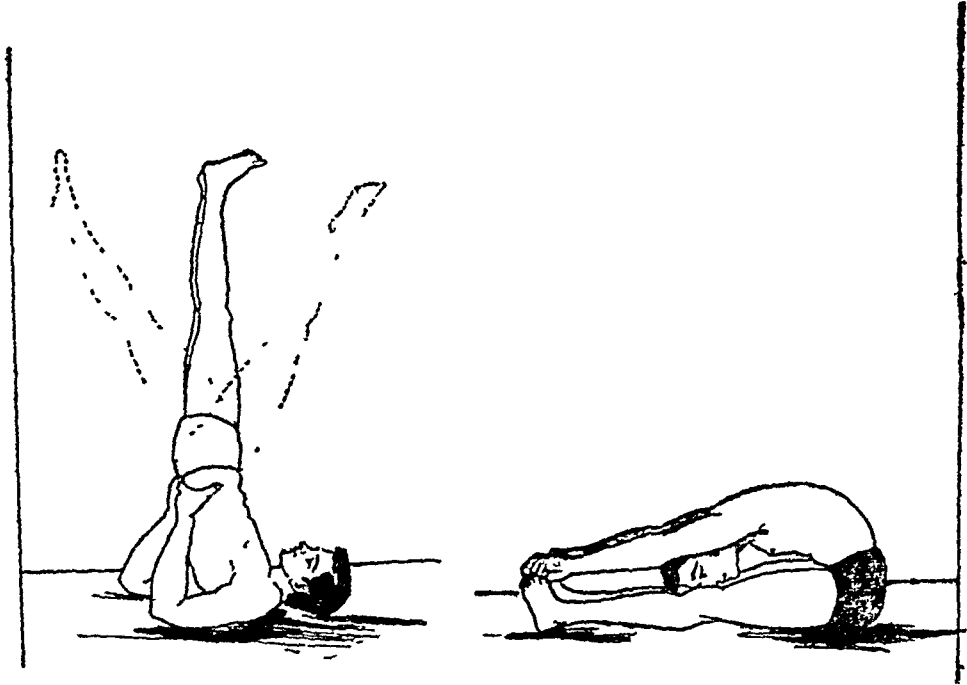
ऊर्ध्व सर्वाङ्गासन
(६)

पाद हस्तासन
(७)

विभिन्न विकारो मे शारीरिक अभ्यास

प्रमस्तिष्कीय विकृतियाँ—उषा वेला मे भ्रमण, जव सूर्य से नील लोहितातीत रश्मियाँ प्रसारित हो रही हो। मालिश (सरसो के तेल से सिर पर हलके हाथ से), टव स्नान, एव दीर्घ श्वासिक क्रियाएँ उत्तम है। साधारण विकृति की अवस्था मे मुक्त हस्त वृक्षासन हाथो के वल पर उलटा रहना लाभप्रद है।

नेत्र विकार—हरी दूर्वा पर नगे पैर भ्रमण, तैरना, सूर्य नमस्कार, शीर्पासन उत्तम हैं।

वाहिन्य दोष—पैशिक कठोरता एव वाधा युक्त रक्त सचार, सन्धि दोप आदि की स्थिति मे मालिश (सरसो के एव तिल के तेल की) एव गर्म जल से स्नान श्रेष्ठ है।

हृदय एव फेफड़ो के दोष—हलके व्यायाम का अभ्यास, भ्रमण, तैरना, श्वासो-च्छावास क्रियाएँ, हसना, मनोरजन आदि हितकर हैं।

अस्थि एव पैशिक दोष—सर्वांगासन एव ऊर्ध्व सर्वांगासन समस्त अस्थि सम्वन्धी एव पैशिक दोषो के अतिरिक्त खाँसी, कण्ठ दोप, जीर्ण ज्वर, जुकाम आदि मे प्रभावकारी लाभ देने वाले है।

दन्त, नासिका एव दृष्टि दोष—शीर्षासन, सर्वांगासन, ऊर्ध्व सर्वांगासन के अतिरिक्त भ्रमण, तैरना, कीकर या नीम की दातुन चबाना हितकर है।

मानसिक या बौद्धिक दोष—शीर्षासन एव ऊर्ध्व सर्वांगासन विशेष रूप से एव अन्य सभी प्रकार के व्यायामाभ्यास जो स्वच्छ वायु मे किये जाएँ, लाभप्रद है। शीर्षासन सिर दर्द मे भी लभकारी है। सुविधा हो तो तैरना उत्तम है।

विकलागो हेतु सामान्य शारीरिक अभ्यास एव मनोसामाजिक स्थिति

सामाजिक समजन एव सहयोग भावना—

१ **नृत्य**—लोक नृत्य, आधुनिक नृत्य, समूह नृत्य, सगीत सहित। द्वय सदस्य एव व्यक्तिश

२ **खेलकूद**—समूह, द्वय सदस्य एव व्यक्तिश (एकल)

समूह—कबड्डी, खो-खो, ढूँढो और पाओ, फुटबाल, वालीबाल, हाकी, बास्केटबाल आदि

द्वय सदस्य—कुकुट द्वन्द, आठा दौड, मुष्ठि युद्ध, कुश्ती बैड मिण्टन, टेबल-टेनिस,

एकल—तैरना, कूदना, दौडना, रस्सी पर चढना-उतरना, मल खम्भ, दण्ड बैठक, आसन, प्राणायाम, नेति, धौती, नाव खेना, वर्फ पर फिसलना, जिमनाष्टिक, भारोत्तोलन, पजादाब आदि क्रियाएँ प्रमुख है।

विशिष्ट ध्यातव्य

विशिष्ट विकलागावस्था मे चिकित्सा को प्राथमिकता दी जाये एव विकलाग की रुचि, शक्ति और अवस्था के विपरीत कोई भी अभ्यास न दिया जाये।

शारीरिक अभ्यास से पूर्व शौचादि नियमित कार्यों से निवृत्त होना आवश्यक है।

बीमारी की अवस्था मे शारीरिक अभ्यास न दिये जाएँ।

हृदय, फेफडे, पेशियाँ, भावना, मस्तिष्क और शरीर जिस अभ्यास को स्वीकृति दे वही करवाया जाये।

शारीरिक अभ्यास से पूर्व शरीर को साधारण गति देकर अभ्यास के लिए तैयार करें।

उपचारात्मक अभ्यास शरीर शिक्षाविद् की देख-रेख मे ही प्रदान किये जाएँ।

अभ्यास की नियमितता को खण्डित न होने दिया जाये ।

छात्राएँ मासिक धर्म की स्थिति मे अभ्यास न करे। निरोधात्मक एव शक्तिवर्धक व्यायाम के अभ्यास साथ-साथ चलने चाहिये।

विशिष्ट अभ्यास नाडी पेशीय शक्ति के अधीन आवृत्ति, अवधि और दवाव को ध्यान मे रखकर कराये जाएँ।

मनोसामाजिक विकृति

मनोव्यवहारात्मक स्तर पर आरोग्य का न रहना, या सन्तुलन न होना, इस श्रेणी मे आते है। वालक का उद्भव समाज मे है, विकास समाज मे एव निर्वाण भी समाज मे है, अतः समाज से वाहर वालक को सोचना सम्भवत थोथी मानसिक कल्पना से वढकर

कुछ नही है। यह विचारधारा मनो-सामाजिक विकृति के बालको हेतु समाज-सापेक्ष उपचार या व्यवस्था को ही दर्शाती है। मनोसामाजिक विकृति युक्त बालक अपनी रुचियो, एषणाओ एव उत्तेजक धारणाओ को सामाजिक व्यवहार के साथ सन्तुलित नही कर पाता। सामाजिक अनुकूलन मे बाधक तत्त्व मूल आवश्यकताओ की अधिकता, प्रवृत्ति एव आवेगो का अनियन्त्रण, स्नायविक तनाव तथा द्वन्द्व वृत्ति हैं। यही तत्त्व बालक के व्यवहार पर छा जाते है एवं वह सामाजिक व्यवहार मे सन्तुलन खो बैठता है। इच्छाएँ इतनी बलवती हो जाती है कि सामान्य सामाजिक मूल्यो के प्रति भी बालक अवहेलना और असन्तोष प्रकट करने लगता है। इसमे द्वेष, पलायन, हिंसा, बलात्कार, नैराश्य, या अपराध भावना विकसित होने लगती है।

मनोसामाजिक विकृतियो को दूर करने हेतु अभ्यास

समूह खेल या व्यायाम इस वृत्ति के बालको के लिए लाभकारी है। जिनसे वह अपने वर्ग मे सामाजिक स्वीकरण अनुभव कर सके। समूह अभ्यासो मे आज्ञापालन और ऐक्य भाव प्रमुख है। मनोसामाजिक विकृति ग्रन्थियो को नष्ट करने, स्नायविक तानाव को दूर करने, एव नैराश्य भावना को समाप्त करने के लिए ध्यान को खेलो मे विशिष्ट बिन्दु पर केन्द्रित किया जाये। उदाहरणार्थ —

फुटबाल, हाकी, बालीबाल, बास्केट बाल, खो-खो, कबड्डी, भ्रमण, तैरना, समूहनृत्य, सगीत, अन्त. कक्ष खेल, अभिनय आदि। खेल भावना, जिसमे जय और पराजय को प्रसन्नता से स्वीकार किया जाता है, सामाजिक मूल्यो के पुर्न-प्रतिष्ठापन का ही रूप है। इसी प्रकार अन्य सवेगो का प्रतिष्ठापन भी सम्भव है।

मनोसामाजिक विकृतियो का शोधन, मार्गान्तरीकरण एव शमन

मूल प्रेरणाओ का शोधन, एव शमन योगासन एव प्राणायाम द्वारा भी आसानी या सहज भाव मे सम्भव है। खेल इनका मार्गान्तरीकरण करने मे सक्षम है। फ्रायड द्वारा वर्णित काम भावना (बलात्कार प्रवृत्ति या यौन दोष) का मार्गान्तरीकरण सगीत एव समूह नृत्यो द्वारा सुविधापूर्वक हो सकता है। विनिवर्तित व्यवहार के बालक अपने को ही सभी असफल कार्यो के लिए उत्तरदायी अनुभव करते है, एव जो प्रतिद्वन्द्वात्मक दृष्टि रखते है वे हिंसक प्रवृत्तियो की प्रधानता अपनाये हुए होते है। समूह अभ्यास या खेल, प्रतिद्वन्द्वात्मक स्थिति के माध्यम से, प्रभावी बालको की शक्ति का पूर्ण सहयोग एक व्यवस्थित विधि द्वारा कर लेते है। बालक एक स्वस्थ स्वीकारोक्ति को समाज द्वारा ग्रहण करता है एव अपने को सर्वत्र प्रशसित पाता है। शनै-शनै उसमे सन्तोषवृत्ति विकसित होती है। समूह अभ्यास बालक मे आत्म-प्रतिष्ठा उत्पन्न करते है। सफलताओ का श्रेय, मानसिक दृष्टि मे, बालक को स्वस्थ बनाता है। स्नायविक तनाव को शमन करने मे खेल एव नृत्य व मनोरजन अभ्यास, स्वास्थ्य की दृष्टि से भी, प्रभावशाली परिणाम देते है।

मनोसामाजिक विकृतियो को ध्यान मे रखकर ही शारीरिक शिक्षा की रूपरेखा अभ्यास हेतु प्रदान की जाये।

प्रमुख मनोसामाजिक मनोविकृतियाँ

(१) अनुशासनहीनता (२) प्रलापीपन (३) कामुकता (समलिंगी, विषमलिंगी,

हस्तमैथुन) (४) तोड-फोडवृत्ति (५) चालाकी (६) पलायन वृत्ति (७) हिंसक वृत्ति (८) अपराध प्रवृत्ति (९) व्यग्रता (१०) उदासीनता (११) झगड़ालूपन (१२) अधिकार भाव

प्रमुख खेल व शारीरिक अभ्यास

प्राय सभी समूह खेल, (देशी, विदेशी) नृत्य (लोक नृत्य, वालरूमडान्स, आधुनिक नृत्य) स्केटिंग, वर्फ पर फिसलना, जिमनाष्टिक, भारोत्तोलन, तैरना, नौका बहन, आदि द्वारा वालभावना को प्रभावित करने वाली वृत्तियो को स्वस्थ निर्देश प्राप्त होगा। नेतृत्व एव अनुकरण की वृत्ति के विकास से पलायन एव अनुशासन-हीनता समाप्त होगी। सामाजिक समायोजन की भावना का विकास होगा। वालक को जैसे-जैसे सामाजिक स्वीकृति मिलती जायेगी, उसे अपने पर विश्वास होता जायेगा।

समस्त शारीरिक अभ्यास चेता पेशीय कौशल है। प्रारम्भ में यह शरीर को साधते हैं। विशेष मुद्राएँ विशिष्ट गतियो को नियन्त्रित करती है। समूह अभ्यासो मे लय एव ताल वद्ध सूझ उत्पन्न होती हैं। वालक शरीर को अर्थपूर्ण गति देने लगते है। लोक-नृत्य सस्कृति, इतिहास, सभ्यता या विकास की अभिव्यक्ति है। विभिन्न आसनो, मुद्राओ एव मानसिक अवस्थाओ से सामजस्य उत्पन्न होता है।

प्रभाव—कौशल का विकास, अभिवृत्ति, अभिरुचि, मनोभावो का नियोजन, स्वय एव अन्य के प्रति, दायित्व एव कर्त्तव्य वोध, सहयोग, भूत सवेगो का शोधन, चेता-पेशीय सन्तुलन, शक्ति का स्वस्थ उपयोग, विकार एव रोग रहित शरीर, समभाव आदि।

सामाजिक मूल्यो का विकास

— सम्मानजनक जीवन जीना एव समाज की मान्यताओ को सम्मान देना।

— कलात्मक जीवन की ओर अग्रसर होना, रहन-सहन, खान-पान, व्यवहार एव विचारो मे कलात्मकता एव सुकोमलता।

— प्रतिवोध, अभिव्यक्ति, सचार, मुद्रा, आदि के माध्यम से स्व की भावना (व्यक्तित्व) को उभारना।

— रोग रहित एव शक्ति युक्त जीवन।

— कार्य एव शरीर मे सन्तुलित सम्बन्ध। श्रम, वुद्धि शक्ति एव क्षमता मे सन्तुलन।

— जैसी भी स्थिति है उसी मे प्रसन्नता, उत्साह एव उमगपूर्वक जीवन जीना।

— अशक्त, असमर्थ, अपग अगो पर नियन्त्रण, एव उनसे कार्य लेने के स्वभाव को विकसित करना।

— विभिन्न आयुवर्ग के अनुसार समजन।

— रुचि एव कौशल का इतना परिमार्जित हो जाना कि वर्तमान ससार के साथ मेल वना रहे।

— अवकाश का पूर्ण उपयोग।

प्रस्तुत लक्ष्यो की सम्भावना उसी समय है जवकि वालक सामाजिक दृष्टि से स्वस्थ हो। "समाज वालक के व्यवहार को, एव समाज का व्यवहार वालक की प्रत्येक स्तर पर क्रिया एव प्रतिक्रिया को नियन्त्रित या विकसित करता है। कुसमायोजित विकलागो मे

व्यवहार समन्वय क्षमता उनकी शारीरिक एवं प्रतिबोधन शक्ति को जाग्रत करके ही सम्भव है। "यह कथन है ओम प्रकाश गौड़ का जो विकलांगो मे सामाजिक मूल्यो का विकास तुलनात्मक सन्दर्भ मे रखने के पक्ष मे नही है।" 'वह ऐसा है' और 'तुम ऐसे हो' इस प्रकार का अन्तर निर्देश अध्यापक या अभिभावक न दें। इससे अप्रत्याशित हीनता विकसित होती है।

भावात्मक समजन एव शारीरिक अभ्यास

भावात्मक विकृति की अवस्था बालक मे स्वभाव दोष की कतिपय विशिष्ट अवस्थाएँ उत्पन्न कर देती है। सुरेन्द्र का कथन है कि ' उद्वेगो का अतिउद्दीपन एव सर्वथा मन्द होना बाल व्यवहार को इतना जटिल और उलझन भरा बना देता है कि प्रभावी बालक का व्यक्तित्व वैयक्तिक एव सामाजिक, दोनो ही दृष्टि से असामान्य एव अवसाद-पूर्ण हो जाता है।"

प्रस्तुत कथन के ही सन्दर्भ मे प्रमुख भावना विकृतियाँ इस प्रकार है —

अवसाद
अपूर्णता एव हीन भावना
क्षुब्ध या सतापक भावना
अति रूपता
दयनीय अवस्था
चिन्ता
भय (असुरक्षा एव मृत्यु भावना)
पलायन वृत्ति
आक्रोश भावना
लज्जा भाव।

शारीरिक अभ्यास की दृष्टि मे सूर्य नमस्कार, आसन, प्राणायाम, तैरना, खेल-कूद, नृत्य एवं गीतो पर आधारित अभ्यास विशेषकर हितकर हैं। शेष अभ्यास भी लाभप्रद होंगे।

गीतो पर आधारित अभ्यास भावना-ग्रन्थियो को मार्गान्तरित करके बालक उत्साहित करेंगे। बाल व्यक्तित्व को उत्तरदायित्व व सहयोग का बोध अधिकाधिक देना चाहिये। समय-समय पर व्याख्यान माला एव सवाद वार्ताओ का आयोजन श्रेयस्कर है। सामान्य और विशिष्ट, दोनो ही प्रकार के अभ्यास योग्यता दर्शाने वाले हो।

अभिभावको एव माता-पिता का समुचित सहयोग व नियन्त्रण के साथ उन सम्भावनाओ पर भी ध्यान दिया जाये जिनमे भावना ग्रन्थियो का शोधन एव शमन हो सके। कतिपय स्थितियो मे मिश्रित अभ्यास भी दिये जा सकते है।

बौद्धिक विकलांगता और शारीरिक अभ्यास

प्राय. प्रत्येक प्रकार की बौद्धिक विकलांगता हेतु शीर्षासन, सर्वांगासन, ऊर्ध्व सर्वांगासन, सूर्य नमस्कार, तैरना, भ्रमण, आदि उत्तम है। मस्तिष्क के रोगो की स्थिति मे चिकित्सक एव शरीरविद् को परामर्शानुसार ही शारीरिक शिक्षा के अभ्यास दिये जाने

विकलांग परिचय-पत्र

नाम विकलाग ·· · ···· · ····· ··· ······ ················ सुपुत्र/सुपुत्री········

आयु · · ···· · ···· ··· ·· ·· · · पता········ ······ ······ ·

विकलाग प्रकार········ · ······· ·····तिथि···················

रूप	सामान्य विवरण	विशेष
विकलागता का कारण		
विकलागता का समय		
प्रभावित स्थान		
शरीर की निरोधक क्षमता		
आगिक सचालन मे वाधा		
सामान्य स्वास्थ्य		
व्यावसायिकता पर प्रभाव		
प्रभावित अगो की कार्य शक्ति		
वुद्धि लब्धि		
भावात्मक अवस्था		
मनो-सामाजिक स्थिति		

अभ्यास क्रियाएँ	शरीर-शिक्षा-विद् के सुझाव	चिकित्सक
· ···· ····· · · ······ · ····अवधि······ ···· ·	······· ·········· ·················	··················· ··· ·

उपकरणों की सहायता से

कौशल क्षमता················· ·······················

सुझाव···

हस्ताक्षर

चाहिये। ऐसे व्यायाम, जिनसे मस्तिष्क को धक्का लगे या आघात पहुँचे, नही करवाये जाएँ।

मन्द बुद्धि बालकों को बौद्धिक खेल, स्मृति खेल, पहचानो, स्मरण करो, संख्या व अन्य प्रकार के अन्त. कक्ष, बाह्य खेल व शारीरिक अभ्यास भी दिये जा सकते हैं। गीत के साथ अभ्यास लाभदायक हैं। उपचार एव अभ्यास, दोनो भी साथ-साथ चल सकते हैं। स्वच्छ वातावरण एव शरीर की स्वच्छता प्रमुख है। भारी या श्रमसाध्य व्यायाम के स्थान पर कौशल-परक अभ्यास श्रेष्ठ हैं। अभ्यास का समय उषा वेला मे जिस समय सूर्य मे नील लोहितातीत किरणें प्रसारित हो रही हो, उत्तम है। कृत्रिम नीललोहितातीत किरणों द्वारा असाध्य रोगो की सफल चिकित्सा सम्भव है। हास्य एव मनोरजक अभ्यास का भी अपना महत्त्व है।

सामाजिक विकृति एव व्यायाम

असामाजिक क्रियाओ मे सलग्न बालको को सहयोग भावना एवं उत्तरदायित्व विकसित करने वाले खेल अभ्यास दिये जाएँ। प्रतिस्पर्धा के अहम् प्रकट करने वाले अभ्यास के स्थान पर जो व्यक्ति भाव को विकसित करते है, सहयोग पर आधारित अभ्यास अपना विशेष औचित्य रखते है। अभ्यास कार्यो के वर्गीकरण एव नियोजन का उल्लेख पूर्व प्रसगो में आ चुका है।

V विशिष्ट सुझाव

"व्यक्ति चाहे स्वस्थ हो या विकलाग, उसमे एक निश्चित सीमा तक ही क्षमता होती है। यह विभिन्नता ही है जिससे प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग पहचाना जाता है। आयुर्वेदाचार्य लेख राम शर्मा का यह विचार विकलागो मे विभिन्नता के पक्ष को सर्वोपरि मानता है। प्रत्येक विकलाग किसी न किसी रूप मे दूसरे विकलाग से भिन्न है। भिन्नता के रूप एव कारणो की जाँच के लिए, एव शारीरिक शिक्षण अभ्यास की निश्चित रूप-रेखा हेतु, एक आलेख-पत्र निर्मित किया जाना चाहिये —(देखें पृष्ठ २५२)

शारीरिक अभ्यास-क्रियाओ का शोधन

शरीर-शिक्षाविद्, विकलाग की अवस्था एव चिकित्सक के परामर्शानुसार, शारीरिक अभ्यास क्रियाओ मे पर्याप्त शोधन करें, जिससे प्रभावित बालक पर अभ्यास का दबाव न पड़े। विधिवत् जाँच के उपरान्त अभ्यास हेतु विकलागो का वर्गीकरण कर दिया जावे। एतदर्थ एक आलेख पत्र "निसर्ग अने आरोग्य" की वयो वृद्ध सम्पादिका कु सुशीला पण्डिता ने निर्मित किया है।

विकलांग एवं शारीरिक अभ्यास

विकलाग वर्गीकरण—साधारण १	अभ्यास योग्य २	साधारण ३	
विकलाग सख्या	१	२	३
विकलाग प्रकार	शारीरिक ।	मानसिक ।	भावात्मक

शारीरिक विकलागता........................

मानसिक विकलागता........................

भावात्मक विकलागता ....

अवधि..................................	आवृत्ति .. ..
अभ्यास..................................	विश्राम .. ..
आसन	सन्तुलन .. . .
क्षमता एव शक्ति .. .	भार उठाना, भाला, गोला, तस्तरी फेंकना आदि..........................
खेल (छोटे मैदान)	अन्तर, ऊँचाई, दूरी (कम)
नियमो मे छूट.	खेल प्रकार.... ....

विशेष—प्रसन्न एव मृदु व्यवहार ।

अभ्यास हेतु स्वच्छ एव दूर्वायुक्त मैदान ।

वर्गीकरण विशेष जाँच के उपरान्त ही किया जावे ।

प्रभावित बालको से साप्ताहिक विचार-विमर्श ।

ऐसे अभ्यास न दिये जाएँ जो अगो पर दवाव डालें ।

शारीरिक अभ्यास क्रिया और निद्रा

सयम, भोजन एव निद्रा स्वास्थ्य के आधार माने जाते है । स्वास्थ्य की दृष्टि से नीद का महत्त्व प्रत्येक स्तर पर स्वीकार किया गया है । विशेष तौर पर भावात्मक एव मानसिक विकलागावस्था मे नीद की व्यवस्था उपचार के रूप मे की जाती है । शारीरिक एव मनोसामाजिक विकृति मे भी नीद हितकर है । महर्षि चरक के अनुसार—

यदा तु मनसिकलाते कर्मात्मानः क्लामान्वित ।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानव ॥

(मन एव शरीर के शिथिल या निष्क्रिय हो जाने पर, जव इन्द्रियाँ कर्म विमुख हो जाती है, तव नीद ही उनमे पुन चेतना उत्पन्न करती है ।)

महर्षि चरक का यह कथन है कि 'सुख, कष्ट, पुष्टता, कमजोरी, शक्ति एव शक्ति-हीनता निद्रा के प्रभाव मे हैं ।' जो निम्नलिखित कथन से स्पष्ट है —

"निद्रायतं सुख दुख पुष्टि कार्श्य बलाबलम् ।"

नीद की उपयोगिता

थकान, शक्ति ह्रास, बीमारी, उन्माद रोग, भारीपन, पेशिक एव स्नायविक तनाव आदि की स्थिति मे प्रगाढ निद्रा अत्यन्त लाभप्रद है । उचित निद्रा स्वास्थ्यवर्धक है । ठीक

निद्रा न आने से मस्तिष्क रोग सक्रिय हो उठते है। शारीरिक एव मानसिक विकास मे नीद का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

निद्रा की मात्रा एवं समय

शिशु अवस्था मे वालक १६ से २० घण्टे, पूर्व वालावस्था मे १२ से १६ घण्टे, वालावस्था मे १० से १२ घण्टे, किशोर के लिये ८ से १० घण्टे नीद ठीक है। वृद्ध मध्याह्न मे केवल दो घण्टे सोयें अन्य नही। वीमारी या घाव की अवस्था मे नीद उपचार हेतु अधिक ली जावे। नीद का कम आना वीमारी है। शरीर शिक्षाविद्, अभ्यास क्रिया से पूर्व प्रभावित वालक की नीद के विषय मे, जानकारी अवश्य ले ले।

सन्तुलन

मानसिक, भावात्मक, एव मनोसामाजिक आदि अवस्थाओ मे शारीरिक सन्तुलन की भूमिका प्रमुख है। शारीरिक सन्तुलन को व्यावहारिक सन्तुलन का वाहक कहा जाता है। अत यह नितान्त आवश्यक है कि उन अभ्यास क्रियाओ का भी उल्लेख किया जाये जो विभिन्न शारीरिक स्थितियो के लिये उपयोगी हैं। यदि विकलाग अपने आसन को साध लेते हैं तो इस समस्या का निराकरण महज है। अत निम्नलिखित प्रारूप विभिन्न विकलागावस्थाओ मे शारीरिक अभ्यास द्वारा सन्तुलन प्रदान करने हेतु विशेष रूप से निर्मित किया गया है।

विभिन्न विकलांगावस्थाएं एवं सन्तुलन अभ्यास

स्थिति	विकलागावस्थाएँ	अभ्यास क्रियाएँ
आसन शारीरिक— खड़े होना, बैठना, चलन, उठना, सोना। मानसिक— लिखना, पढना। भावात्मक— सुनना, वोलना। मनोसामाजिक— वार्तालाप, व्यवहार	* शारीरिक * मानसिक * भावात्मक * मनोसामाजिक	समस्त अभ्यास क्रियाएँ— सूर्य नमस्कार, योगासन, प्राणायाम नृत्य देशी-विदेशी खेल व्यक्ति-अभ्यास समूह-अभ्यास
(सामान्य रूप से समस्त स्वस्थ अगो द्वारा)।	सामान्य विकलागावस्था मे सन्तुलन शारीरिक विकृति के अतिरिक्त अन्य विकलागावस्थाएँ, पेशिक, स्नायविक, अस्थि-कठोरता आदि रक्त मचार एव आतरिक अगो की सक्रियता हेतु।	समस्त अभ्यास क्रियाएँ सूर्य नमस्कार, योगासन, प्राणायाम, नृत्य देशी-विदेशी खेल, व्यक्तिश अभ्यास, समूह अभ्यास

स्थिति	विकलांगावस्थाएँ	अभ्यास क्रियाएँ
पैरो की स्थिति—		
उठना	पैर सामान्य हो	समूह अभ्यास
बैठना	एक पैर या कमजोरी	
खडे होना	पैरो की अवस्था मे	
चलना	उपकरणो के प्रयोग सहित	**समस्त अभ्यास क्रियाएँ**
दौडना	पैशिक तनाव	सूर्य नमस्कार, योगासन
कूदना		नृत्य
		फुटवाल, हाकी, टेनिस
हाथो की स्थिति—		बैड मिण्टन, वास्केट वाल
पकडना	हाथ सामान्य हो	क्रिकेट, वालीवाल
उठना	एक हाथ या कमजोर हाथ	खो-खो, कवड्डी
धकेलना	उपकरणो के प्रयोग सहित	प्रयाण, अभ्यास, ध्वनि
खेंचना		सकेतन क्रिया
फेंकना		नृत्य (देशी, विदेशी)
मारना		लोक नृत्य, शास्त्रीय नृत्य
दवाना		डम्वल, लेजियम, आंगिक
		अभ्यास
ग्रीवा की स्थिति—		
घुमाना (दायें, वायें		**व्यक्तिश**
ऊपर, नीचे)	ग्रीवा का भारी होना	दण्ड, वैठक, मल्ल-खम्भ,
	गति अभाव, पैशिक तनाव	मोगरी झूला (पैर एव हाथ)
		तैरना, भारोत्तोलन, गोला
		फेकना, तश्तरी फैक, सन्धान,
		रस्सी कूद, सभी प्रकार की
		दौड, गल-गण्डी खाना (सिर
		और हाथ के वल) रस्से पर
कमर की स्थिति		चढना, नाव खेना
झुकना, (आगे, पीछे,	मेरु दण्ड मे लोच हेतु	
दायें, वायें) मुडना	उदर विकार, वडा पेट	
	पैशिक तनाव	सन्ध्याकालीन विविध
		मनोरजन कार्यक्रम
		(रुचि अनुसार)

सन्तुलन समस्त शारीरिक अभ्यासो को नियन्त्रित कर उन्हे अग्रगति प्रदान करता है। जिसके परिणामस्वरूप विकलाग अपने मे नव चेतना का विकास अनुभव करता है। शारीरिक क्रियाओ के माध्यम से विकलाग अपने मे निम्नलिखित तत्त्वो को विकसित होते हुये पाता है।

शक्ति के लिये रस्सी पर चढ़ना

शारीरिक अभ्यास क्रियाओ द्वारा विकलागो मे अपेक्षित परिवर्तन

१ सन्तुलन, २ नियन्त्रण एव शक्ति, ३ शक्ति एव उत्साह, ४ गति, ५ स्वास्थ्य, ६ ध्यान, ७ सक्रियता, ८ सवान, ६ निरोध एव सुरक्षा, १० मनोरजन एव भावना, ११ सामाजिक समंजन, १२ नीद एव सुख, १३. आत्मविश्वास, १४ उत्तर-दायित्व भावना।

शारीरिक शिक्षा के माध्यम से विकलागो मे विश्वास के साथ कौशल की अभिवृद्धि होगी एव वे स्वस्थ जीवन की ओर अग्रसर होंगे। विकलाग के समक्ष प्रमुख समस्या सन्तुलन की है। सीधे शब्दो मे असन्तुलित अवस्था ही विकलागावस्था है, चाहे यह असन्तुलन जीवन के किसी भी पक्ष मे क्यो न हो। विधिवत् शारीरिक अभ्यास क्रियाओ के अतिरिक्त सन्तुलन उत्पन्न करने का और कोई चारा नही है। वस्तुतः शारीरिक अभ्यास क्रियाएँ ही विकलाग को आशावान एव आस्थावान बनाती हैं और उसके दृष्टिकोण मे परिवर्तन लाती है। विकलाग व्यक्ति स्वावलम्बन एव आत्मनिर्भरता के साथ स्वस्थ जीवन की ओर अभिमुख हो, इस पर भी ध्यान रखता है।

"सृष्टि की आद्य परम्परा से अब तक राष्ट्रो का यही प्रवल आधार रहा है कि वहाँ का प्रत्येक नागरिक स्वस्थ एव सामाजिक जीवन जिये।" —(सिन्धु से)

सार संक्षेप

"चिकित्सा की अपेक्षा अच्छा है, हम विकलागो के उन अगो को व्यायाम द्वारा पुष्ट एव गतिशील बनाएँ जिनकी शक्ति या क्षमता विकृत हो गई है, या फिर शिथिल पड गई है।" (देवव्रत वशिष्ठ)

शारीरिक क्षमताओ को आसन, आहार, विहार एव प्राणायाम के माध्यम से मन के नियन्त्रण मे लाना। इच्छा या बुद्धि के अनुसार शारीरिक गतियो का सचालन शारीरिक शिक्षा का अभिप्राय है—स्नायु दौर्बल्य को दूर करना।

विकलाग शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य

सवाहन, प्रक्रिया, पैशिक एव आगिक क्षमता का विकास। सीखने को द्रुततर बनना। सामाजिक समजन का विकास। विशिष्ट विकलागावस्था मे चिकित्सक एव शरीर शिक्षाविद् के परामर्श के अनुसार अभ्यास देना।

मनोसामाजिक विकृति के बालक को दायित्व एव कार्यबोध का ज्ञान देना।
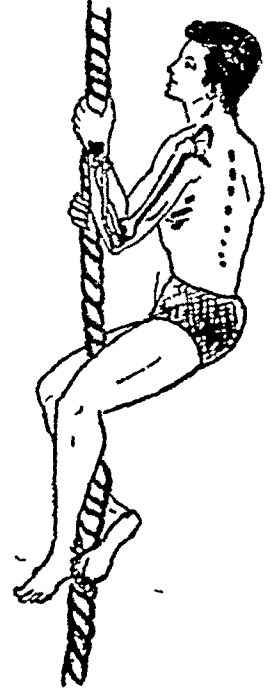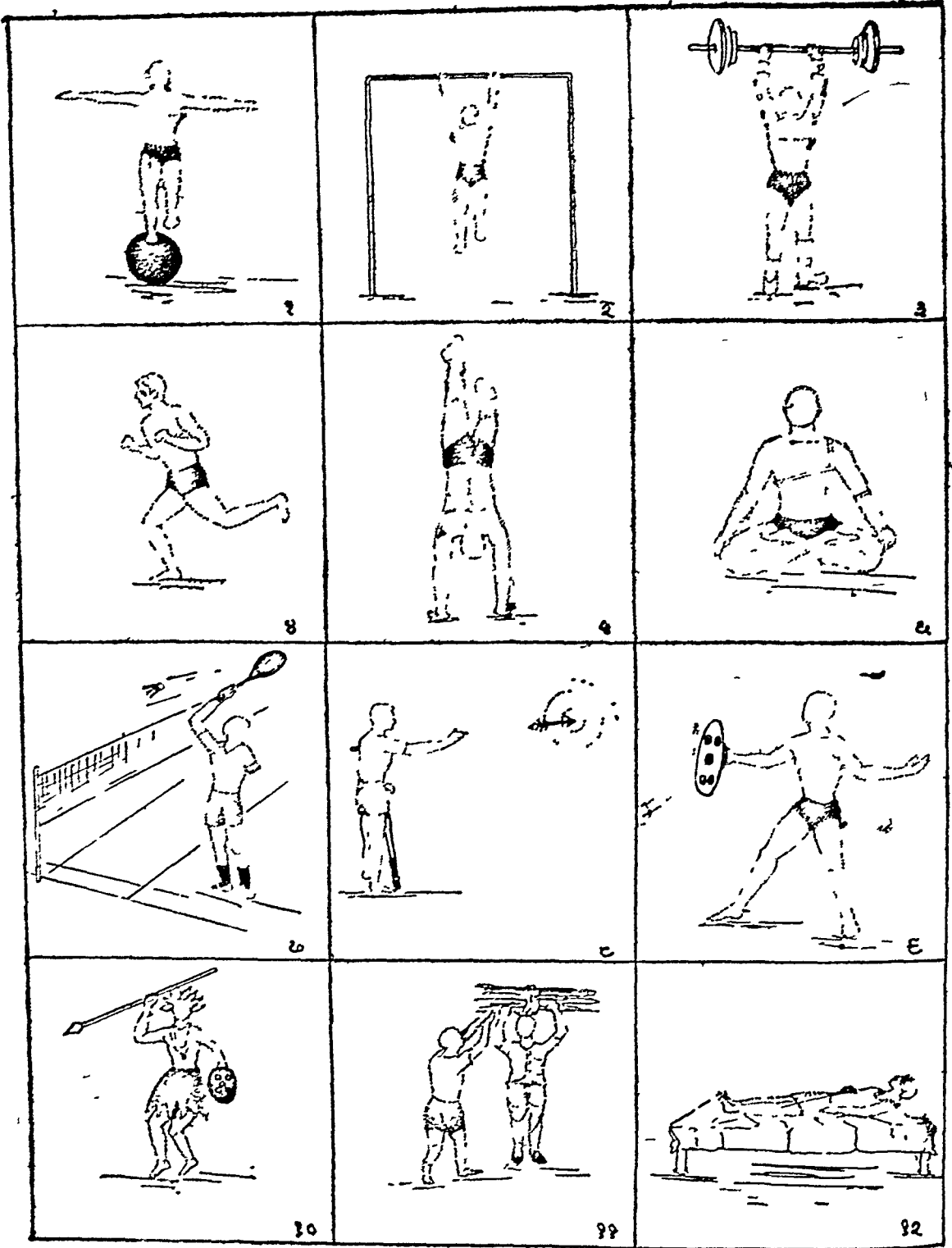
विकलांगों हेतु शारीरिक सन्तुलन अभ्यास क्रियाए

आंगिक विकलांगता एवं शारीरिक शिक्षा

शारीरिक विकलागता

वधिरता, चक्षु-अन्धता, वाक् विकार, अस्थि-विकृति के लिये आगिक पुष्टता एवं बौद्धिक विकास की दृष्टि से आसन, प्राणायाम, भ्रमण, सूर्य नमस्कार, दण्ड-बैठक, जिमनाष्टिक्स, मलखम्भ एव पाश्चात्य देशो मे प्रचलित अभ्यास लाभप्रद है। सुरक्षात्मक व्यायाम भी आवश्यक है। चन्द्रपति के शब्दो मे विशेष यह है कि विकलाग का आपको सहयोग प्राप्त हो।

मानसिक विकृति

मिर्गी, प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ, या अन्य मानसिक विकारो मे स्नायविक तनाव का शमन करने वाले स्वाभाविक अभ्यासो को दिया जावे। विशिष्ट मानसिक विकृति की अवस्था मे मस्तिष्क विशेषज्ञ का परामर्श अवश्य लिया जावे। मन्द बुद्धि बालको हेतु बौद्धिक व्यायाम उपयुक्त है। हँसना भी स्नायविक तनाव समाप्त करने वाला उत्तम व्यायाम है।

शारीरिक शिक्षा हेतु अभ्यास

सुरेन्द्र ने शारीरिक शिक्षा को विकलागो हेतु अनिवार्य आवश्यकता दर्शाया है। प्रमुख अभ्यासो हेतु शारीरिक शिक्षा के व्यायामो का वर्गीकरण इस प्रकार किया जाये जिससे प्रभावित अग सक्रिय हो एव उनको नियन्त्रण किया जा सके। अत इस सन्दर्भ मे निम्नलिखित विन्दु ध्यातव्य हैं —

— शक्ति व क्षमतावर्धक
— रोग प्रतिरोधक व निवारक
— स्फूर्ति एव उत्साहवर्धक
— बौद्धिक
— सामाजिक समजनपरक
— सुरक्षात्मक।

विभिन्न विकलाग बालको के लिये योगासन श्रेष्ठ है। योग के आठो अग पूर्ण जीवन को प्रभावित करते हैं। आसनो मे शीर्षासन, मयूरासन, चक्रासन, सर्वाङ्गासन, ऊर्ध्व सर्वाङ्गासन, पद्मासन, पाद हस्तासन प्रभावकारी हैं। विभिन्न विकृतियो मे शारीरिक अभ्यास की अवधि मे आवृत्ति, दोष या विकार के अनुसार होगी।

विशेष ध्यान देने योग्य

चिकित्सा सुविधा–बीमारी मे शारीरिक अभ्यास न दिया जावे। जिस अभ्यास को शरीर ग्रहण न करें उसे छोड दिया जाये।

मनोसामाजिक विकृति—मनोव्यवहारात्मक स्तर पर सन्तुलन, सामाजिक मूल्यो के प्रति स्वीकारोक्ति एव सम्मान, समाज एव व्यक्ति के लिए आवश्यक हैं। द्वेष, पलायन, बलात्कार, नैराश्य, अपराध भावना, सामाजिक जीवन को दूषित कर देती है। प्राय समूह खेल इस दिशा मे प्रभावकारी परिणाम देने वाले होते है। योगासनो द्वारा भी इन

प्रवृत्तियो का मार्गान्तरीकरण एव शोधन होना चाहिये ।

सामाजिक मूल्यो के विकास के साथ दायित्व एव कर्तव्य वोध का भी विकलाग को ज्ञान होना चाहिये ।

भावात्मक विकृतियाँ—अवसाद, हीनभाव, सताप, अति द्रुपता, दयनीय भावना, चिन्ता, भय, पलायन वृत्ति, आक्रोश एव लज्जाभाव इन विकृतियो मे विशेष है । गीतो पर आधारित अभ्यास इन्हे शोधने मे सहायक हैं ।

विशिष्ट सुझाव—प्रत्येक विकलाग ही नही प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति भी एक दूसरे से भिन्न होता है । विधिवत् जाँच के उपरान्त शरीर शिक्षाविद् विकलागो का वर्गीकरण करके उन्हे अभ्यास क्रियाएँ वताएँ । निद्रा का अपना विशिष्ट महत्त्व है । अनिद्रा वीमारी मानी जाती है । महीर्षं चरक ने निद्रा को सुखदायी वताया है ।

सन्तुलन—शारीरिक सन्तुलन की भूमिका विकलाग के लिये जीवन के प्रत्येक पक्ष पर अनिवार्य है । विकलाग अपने शारीरिक अगो एव आसन को साध ले तो यह समस्या समाप्त हो मकती है । शारीरिक अभ्याम क्रियाओ द्वारा विकलागो मे अपेक्षित व्यावहारिक पारवर्तन लाये जा सकते हैं । विविवत् शारीरिक अभ्यास-क्रियाओ द्वारा सन्तुलन उत्पन्न हो सकता है । यह अभ्याम क्रियाएँ विकलाग वालक की इच्छा और आवश्यकतानुसार शरीर को नियन्त्रण प्रदान करती हैं । आगिक सन्तुलन के अभाव मे विकलागता और भी कष्ट-कर हो जाती है । सन्तुलन का महत्त्व प्रत्येक अवस्था मे अनिवार्य है । सामाजिक, शारी-रिक या मानसिक किसी भी प्रकार की स्थिति क्यो न हो अध्यापक का यह दायित्व है कि वह विकलाग के प्रभावित क्षेत्र को निदेशन एव अभ्यास द्वारा सन्तुलन प्रदान कराये ।

VI शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार द्वारा विकलाग छात्रवृति

उद्देश्य

छात्रवृत्तियो के माध्यम से विकलागो को इस योग्य वनाना कि वे तकनीकी एव व्यावसायिक प्रशिक्षण ग्रहण करके समाज के उपयोगी सदस्य के रूप मे स्वावलम्वी जीवन जिएँ ।

क्षेत्र

विकलागो मे प्राय तीन अवस्थाएँ है । (१)-चक्षुहीन-(२) वधिर (३)-अस्थि विकलागताग्रस्त ।

परिभाषा

चक्षुहीन—जो पूर्णत दृष्टिहीन हो या सामान्य स्थूल पहचान भी न कर सके ।
वधिर —जिसे अति सामान्य व्यवहार मे ध्वनि पहचान न होना ।
अस्थि विकृतिग्रस्त—जिसे आगिक दोप हो एव जो वक्र देह हो जिससे साधारण कार्यों मे भी वाधा रहे ।

अवस्था

१६ वर्ष से ३० वर्ष की अवधि या आयु वाला जो चक्षुहीन, वधिर एव वक्र

अस्थि देह हो तथा व्यावसायिक एवं तकनीकी प्रशिक्षण, माध्यमिक कक्षा के उपरान्त, ग्रहण कर रहा हो ।

ध्यातव्य—

भारत का नागरिक हो

उसे अन्य कोई किसी भी प्रकार की छात्रवृत्ति न मिलती हो

प्रशिक्षण संस्थान राज्य या केन्द्र द्वारा मान्यता प्राप्त हो ।

आवेदन पत्र

निर्धारित आवेदन पत्र निश्चित अवधि मे शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, को संस्था के अधिकृत अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित करवा कर प्रेषित किया जाये ।

संलग्न

१ विशेषज्ञ एवं अधिकृत चिकित्सा अधिकारी का प्रमाण-पत्र

२ जन्म तिथि की पुष्टि मे माध्यमिक कक्षा का प्रमाण-पत्र

३ अभिभावक या पिता की आय का प्रमाण-पत्र ।

(छात्रवृत्ति प्राय पूर्ण शिक्षण सत्र के लिए होती है । तीन माह तक अनवरत अनुपस्थित रहने या सन्तोषप्रद प्रगति न करने की स्थिति मे छात्रवृत्ति निरस्त की जा सकती है । कार्य का नियमित विवरण शिक्षा मन्त्रालय को पहुचता रहना चाहिये । संस्था परिवर्तन के सम्बन्ध मे सन्तोषप्रद जानकारी दी जावे । विशिष्ट अवस्थाओ मे शिक्षा मन्त्रालय अपनी ऐच्छिक शक्तियो का उपयोग शिक्षा योग्यता आदि मे छूट के रूप मे कर सकता है ।

अभिभावक या माता-पिता की आर्थिक आय १००० रु० मासिक से अधिक हो तो छात्रवृत्ति नही दी जायेगी । प्राय निम्नलिखित दर से छात्रवृत्ति का वितरण होता है —

अभिभावक एवं माता-पिता की आय	राशि—दर
१ रु० से ५०० रुपये तक	पूर्ण दर से
५०१ से ७५० रुपये तक	२/३ दर से
७५१ से १००० रुपये तक	१/२ दर से

घोषणा पत्र—

१ वर्णित समस्त तथ्यो की साक्षी मे

२. राजपत्रित अधिकारी, संसद सदस्य, विधान सभा सदस्य या प्रथम श्रेणी दण्ड नायक द्वारा प्रमाणित ।

आवेदन-पत्र
(विकलांग छात्रवृत्ति)

(आवेदन पत्र सचिव, देहली, भारत को प्रेषित किये जाएँ ।)

१ विकलांग (स्त्री-पुरुष) चक्षुहीन/बधिर/अस्थि विकृति ·· · ····

२ नाम · ··· ३ पिता का नाम श्री ·

४ जन्म तिथि ·· · · शब्दों में · (५) उम्र

६. निवासी ···

७. पूर्ण पता (स्थायी)···
···

८ पत्र-व्यवहार का पता ···
···

९ अभिभावक एवं पिता की मासिक आय (प्रमाण पत्र सहित) · · ·

१०. यदि अन्य आर्थिक सहायता प्राप्त है तो लिखें—

* संस्था ···
* छात्रवृत्ति राशि ···
* आर्थिक सहायता का प्रयोजन ·································
* अन्य···

११. संक्षिप्त विवरण —

संस्था का नाम	अवधि प्रत्येक संस्थान में	विषय	परीक्षा उत्तीर्ण वर्ष	श्रेणी	विशेष

१२ वर्तमान अध्ययन जिसे प्रार्थी चाहता है ।

अध्ययन विषय	अवधि	प्रशिक्षण समारम्भ तिथि	प्रवेश प्राथमिकता सहित तीन संस्थाओं के नाम
			१ २ ३

व्यय —मासिक · ·· · वार्षिक ·· · · ·· ·· · ·

छात्रावास देय···

अन्य···

मैं प्रमाणित करता हू कि मैंने शिक्षा मन्त्रालय द्वारा नियोजित विकलागो हेतु छात्रवृत्ति के नियम, उपनियम पढ लिये हैं। मैं तदनुमार कार्य करने का उत्तरदायित्व स्वीकार करता हू एव प्रगति त्रैमासिक विवरण प्रस्तुत करता रहूगा। उपर्युक्त तथ्य एव विवरण मेरी निष्ठा और ज्ञान के अनुसार सही हैं।

स्थान

दिनाक हस्ताक्षर प्रार्थी

सलग्न*—

१. माध्यमिक विद्यालय का प्रमाण-पत्र
२ विशेषज्ञ चिकित्सा अधिकारी का प्रमाण-पत्र
३ आय प्रमाण-पत्र
४. अक पत्र
५ पूर्व सस्था का प्रमाण-पत्र।

विकलांग शिक्षा और अनुवर्ती कार्यक्रम

अभिप्राय

श्मशान मे उठे वैराग्य की भाँति किसी भी कार्य को आरम्भ कर देना जितना सहज और सरल है उसका अनुवर्तन उतना ही कष्ट-साध्य और दवाव डालने वाला होता है। महात्मा गाँधी ने कहा था—"असली काम तो स्वतन्त्रता मिलने के वाद शुरू होगा।" विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे अनुवर्तन की स्थिति दोहरा दुष्कर है। प्रथम, छात्र स्वय मे स्वस्थ नही है। द्वितीय, अध्यापक उत्साही होने के साथ-साथ मनो-शरीर-विज्ञ भी हो एव अपने विषय का पारगत भी। उसे विभिन्न अभिकरणो का निश्चित प्रयोग भी आता हो।

अनुवर्ती कार्यक्रम से अभिप्राय है—विकलागो पर व्यय की गई राष्ट्रीय शक्ति धन, शक्ति एव बुद्धि का समुचित उपयोग स्वस्थ एव आत्म-निर्भर नागरिक के रूप मे प्रतिफलित होने से है।

अनुवर्ती कार्यक्रम का दायित्व आधार

अनुवर्ती कार्यक्रम विकलाग शिक्षा के क्षेत्र मे स्वतन्त्र गठन नही है। यह एक सयुक्त उत्तरदायित्व है जिसका निर्वहन निम्नलिखित वर्ग द्वारा किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

१ अभिभावक एव माता-पिता
२ चिकित्सक एवं विशेषज्ञ चिकित्सक
३ अध्यापक, विशेषज्ञ अध्यापक एव परिभ्रामी अध्यापक
४ विद्यालय परिचारिका एव सेवक
५ वातावरण (समाज दायित्व) धर्म-गुरु, समाज सुधारक, एव विभिन्न स्वय सेवी मण्डल
६ प्रशासन-पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक, उपकरण, उपस्कर, सहायक अभिकरण एव भवन
७ राज्य।

* (शिक्षा मन्त्रालय द्वारा प्रसारित प्रारूप के आधार पर आभार सहित)।

अनुवर्ती कार्यक्रम की रूप-रेखा

विकलांगो का विधिवत् वर्गीकरण करके उनके कार्य एव विश्राम की रूप-रेखा निश्चित कर देनी चाहिये। जिस क्षेत्र मे विकलांग रहता या अध्ययन करता है उसी क्षेत्र का यह दायित्व वहन करने वाले कार्य-कर्त्ताओ को वर्ष मे तीन बार पर्यवेक्षण के द्वारा ज्ञान, कौशल स्वभाव एव स्वास्थ्य का अभिलेख, भावी निदेशन के लिए, निर्मित करना विकलांगो के हित मे है। इससे अनुवर्ती कार्यक्रम को सुविधा एव दिशा प्राप्त होगी। अत यह आवश्यक है कि जिला स्तर पर विकलांगो हेतु अनुवर्ती कार्यक्रम केन्द्र के अन्तर्गत योजना-व्यवस्था रहे।

अनुवर्ती कार्यक्रम की योजना

विकलांग विद्यालय इस दिशा मे सामान्य विद्यालयो को भी जागरूक करें एव उनके यहाँ त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक एव वार्षिक गोष्ठियो का आयोजन करके विकलांगो से निम्नलिखित स्तर पर सम्पर्क साधन कर सकते हैं —

१. विकलांग, जिन्हें विद्यालय शिक्षा समाप्त किये एक वर्ष या एक वर्ष से कम की अवधि हुई है, इनके लिए त्रैमासिक सम्पर्क अनुवर्ती योजना।

२ विकलांग, जिन्हें विद्यालय शिक्षा कार्य पूर्ण किये एक वर्ष से अधिक या तीन वर्ष से कम की अवधि हुई है, के लिए अर्द्ध वार्षिक सम्पर्क अनुवर्ती योजना।

३ विकलांग, जो तीन वर्ष पूर्व विद्यालय त्याग चुके है, के लिए वार्षिक सम्पर्क अनुवर्ती योजना। यह विकलांग स्वेच्छा से अपने अधीन जिले के उन विकलांगो को पूर्वाभ्यास योजना भी दे सकते है जिन्होंने अभी-अभी विद्यालय शिक्षण पूर्ण किया है।

प्रस्तुत तीनो ही अवस्थाओ से सम्बन्धित विकलांग द्वारा उत्पादन, उपयोग, वितरण, व्यय, आय एवं सम्भाव्य विकास योजनाओ पर विचार विमर्श करके एक विवरण पत्र तैयार करलें जिसमे समस्त आवश्यक जानकारी के साथ विशेष टिप्पणी एव भावी सुझाव व्यावहारिक दृष्टि से दिये जावें। व्यावसायिक या तकनीकी कार्यो के अतिरिक्त विकलांग की अभिवृत्ति विशेष को ध्यान मे रखकर सम्पर्क अनुवर्ती योजनाओ का क्षेत्र निर्धारित किया जाये।

सुविधा की दृष्टि से सम्पर्क अनुवर्ती योजना का कार्य क्षेत्र विभाजन .—

सम्पर्क अनुवर्ती योजना

व्यावसायिक (सम्पर्क अनुवर्ती योजना)	सामाजिक-सांस्कृतिक (सम्पर्क अनुवर्ती योजना)
–आय व्यय	–स्वास्थ्य, मनोरंजन एव चिकित्सा
–उत्पादन वितरण	–विशिष्ट आयोजन एवं प्रदर्शनियाँ
–शैक्षिक, व्यावसायिक एव तकनीकी	–विचार विमर्श गोष्ठियाँ
–अवकाश का सदुपयोग	–मैत्री यात्राएँ
–विकलांग सहकार योजना	–अन्य

विकलाग अनुवर्ती योजना केन्द्र के कार्य

जिला स्तर पर स्थापित सम्पर्क अनुवर्ती योजना केन्द्र विकलागो को व्यवसाय हेतु ऋण, यन्त्र या उपकरण, उद्योगशाला हेतु स्थान, व अन्य सुविधा दिलाने मे सहायता के साथ कार्य की गति, उत्पादन, वितरण एव जाच भी सम्पन्न करेगे। यह केन्द्र सामान्य या विशिष्ट विद्यालयो मे अध्ययन रत विकलाग छात्रो को व्यावसायिक, तकनीकी, स्वास्थ्य सम्बन्धी एव अन्य आवश्यक निदेशन विशेषज्ञो की टिप्पणी ग्रहण करके प्रभावित छात्र को देगा एव उसके क्रियान्वयन का अवलोकन करेगा।

निर्देशन के पक्ष

१. विकलाग को अधिकाधिक सफल व्यावसायिक समजन की ओर अग्रसर करना।

२ विकलाग को सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक एव मानवीय व्यवहार मे ढालना।

३. विकलाग को अपनी क्षमतानुसार सीखने, आगे बढने एव नवीनतम वैज्ञानिक उपकरणो के प्रयोग से परिचित होने मे सहायता देना।

४ अनुवर्ती कार्यक्रम के आयोजनो मे समाज को भी आमन्त्रित किया जाना चाहिये। प्रो सावा गेनोव्स्की (अध्यक्ष, इन्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ फिलास्फिक्ल सोसायटीज बल्गारिया) माता-पिता एव शिक्षको को भी प्रशिक्षित करने की आवश्यकता के साथ चाहते है कि विद्यालयो का स्वरूप पालिटेक्निकल प्रकृति का होना चाहिये। परिवर्तित परिस्थितियो मे यह समीचीन है कि समाज का भी तदनुरूप सस्कार हो।

राज्य स्तर पर 'विकलाग शिक्षा विभाग' हो जो विकलागो हेतु चल रही शिक्षण व्यवस्था, व्यावसायिक योजनाएँ एव अन्य विकास कार्यक्रमो की देख-भाल एव सचालन व्यवस्था करे। अपव्यय एव अवरोधन की समस्या विकलागो मे साधारण बालक से अधिक हो सकती है क्योकि वे स्वय गतिशील नही हैं।

सम्पर्क अनुवर्ती योजना

अपनी व्यवस्था मे पूर्व सचालित कार्यों को ही नही अपितु भावी योजनाओ को भी निर्धारित कर सकती है जिससे अन्य विकलाग भी लाभान्वित हो सके। व्यवसाय के क्षेत्र जिस द्रुत गति से विकसित हो रहे है, यह केन्द्र उनका आकलन विभिन्न विकलागावस्थानुसार उनकी सम्भावनाओ का अध्ययन करके कर सकते है। यह आकलन शैक्षिक, वैज्ञानिक, तकनीकी कलात्मक, कृषि एव बागवानी सम्बन्धी व्यापारिक, सेवा सम्बन्धी, एव विविध शीर्षको के अन्तर्गत किया जा सकता है। इस निमित्त एक प्रश्नावली निर्मित की जाकर उसमे सामान्य कार्य सूची (Job Chart) उसकी प्रक्रिया सहित सम्बन्धित विद्यालय बालक के पास प्रेषित की जाये। यदि अन्यथा सम्भावना हो तो केन्द्र पायलट स्टडी लेकर निश्चित निष्कर्ष तक पहुँचे, यह बात इस क्षेत्र मे विशेष महत्त्वपूर्ण है। अत मूल्याकन की दृष्टि से अनुवर्ती कार्यक्रम का विशेष महत्त्व है।

व्यक्तिगत विकलाग व्यवसाय

कार्यरत विकलाग मे कार्य के प्रति अग्रसरता, परिश्रम, कौशल, आत्म विश्वास, कार्य क्षमता, रुचि, भावात्मक सन्तुलन एव उत्तरदायित्व वहन की कितनी शक्ति है, जानना, जो किसी भी व्यवसाय की सफलता का रहस्य है। अत विविध पक्षो को समाहित करती हुई एक प्रश्नावली निर्मित कर लेनी चाहिये। इससे अनुवर्ती कार्यक्रम की सफलता-असफलता का पता लग सकता है। यह निष्कर्ष अग्रिम योजना मे निदेशन का कार्य करेगा।

सहकार योजना

सहकार कार्य योजना का क्षेत्र पूर्ण विश्व मे द्रुत गति से प्रत्येक स्तर पर विकसित हो रहा है। विस्तृत कार्य, व्यावसायिक वृद्धि अधिक विकलागो के श्रम एव उनकी बुद्धि का सही प्रकार से नियोजन किया जा सकता है एव बडे कार्य को किया जा सकता है। विकलाग-समूह कार्यरत होने से उनमे कुण्ठा, भग्नाशा, उदासीनता जैसी स्थिति नही रहती किसी भी कार्य मे रत विकलाग, थोडी भी बाधा या असफलता आने पर आत्म-दण्ड, एव आशिक सफलता पर दिवा स्वप्नी या अन्तर्द्वन्द्वी बन जाते हैं। ऐसी आचरणगत समस्याएँ सहकार योजना कार्यक्रमो मे नही आती।

"अनुवर्ती कार्यक्रम एक व्यवस्था है जो विकलाग पर किये गये श्रम, शक्ति और धन के व्यय के औचित्य का लेखा जोखा रखकर सही सरक्षण प्रदान करती है।" श्रीमती तारा चौधरी, उप-निरीक्षक, शिक्षा का यह विचार प्रत्येक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है।

अनुवर्ती कार्यक्रम के स्पृहणीय बिन्दु

— चिकित्सा, स्वास्थ्य, सुरक्षा की दृष्टि से व्यवसाय को सुदृढ एव निर्गत (आउट पुट) को प्रभावशाली बनाने की दृष्टि से।
— विशिष्ट एव तकनीकी परामर्श के आयोजन की दृष्टि से।
— जीवन से जोडने एव आचरणगत प्रक्रिया की दृष्टि से।
— समाज स्वीकृति एव स्व-प्रतिष्ठा की दृष्टि से।
— स्वावलम्बन की दृष्टि से।
— विकलाग बालक की निष्ठा मे सघर्ष न होने देने की दृष्टि से।

आवश्यकता पडने पर अभावग्रस्त, अपग, विकृत, गूगे-बहरे, मानसिक रूप से विकृत बच्चो हेतु समाज सेवियो, चिकित्सको, मनोवैज्ञानिको, एवं अध्यापको द्वारा विशेष कार्यक्रमो का आयोजन करके व्यवस्थित व्यक्तिगत एव सामूहिक समस्याओ का तात्कालिक एव स्थायी निदान प्रस्तुत कर सकते है। जीवनीय भावात्मक अन्तरो को गोष्ठियो या चर्चाओ द्वारा पाट कर विकलागो के प्रौढ जीवन का व्यावसायिक समायोजन सम्पर्क अनुवर्ती कार्यक्रमो पर ही आश्रित है।

सार संक्षेप

अनुवर्ती कार्यक्रम विकलाग शिक्षा योजना का वह सगठनात्मक एव प्रशासनिक पक्ष है जिस पर विकलाग शिक्षा अपना निश्चयात्मक परिणाम प्रस्तुत कर सकती है। सम्पर्क-अनुवर्ती कार्यक्रम द्वारा विकलाग पर किये गये श्रम, शक्ति और धन के व्यय का समग्र लेखा-जोखा प्राप्त हो सकता है, जिसके आधार पर भावी व्यवस्था को परिवर्तित सन्दर्भों मे एक आकार दिया जा सकता है।

* * *

पारिभाषिक शब्दावली

(अ)

अंश Decibel

(अ)

अनुपस्थायी Absentee

अभिसारी Convergent Production

अपसारी Divergent

अनुपस्थान, अभिस्थापन Orientation

अनन्वय Atoxia

अवर्गीकृत Ungraded

अर्जित Acquired

अभियुक्ति Remarks

अभिवृत्ति Attitude

अभियोग्यता Aptitude

अभिन्न Integral

अवेक्षा Care

अभिरक्षा Custody

अपवादी Exceptional

अपस्मार Epilepsy

अभिज्ञान Identification

अनिरोध Dis-inhibition

अतिहृष्यता Allergic

अन्त्र वृद्धि Hernial cases

अवधान Attention

अहं मान्यता Conceit

अपचार Delinquency

अहम् Ego

अभिरुचि Interest

अन्तर्मुखी Introvert

अन्तिम मूल्य Ultimate Value

अन्त प्रेरणा Urge

(आ)

आंशिक Partially

आवृत्ति Repetition

आंगिक योग्यता Motor ability

आनुक्रमिक Sequential

आवासीय Residential

आसक्ति Attachment

आत्म-निर्देश Auto-suggestion

आंगिक-संरचना Organic-structure

आवर्तन प्रवृत्ति Routine tendency

आत्म-रक्षा Self preservation

आत्म प्रदर्शन, स्वाग्रह Self assertion

(ई)

ईर्ष्या Jealousy

(उ)

उच्चाकांक्षा Aspiration

उच्छ्वसन Exhalation

उद्दीपन Stimulation

उपस्कर Furniture

उपलब्धि लब्धि Achievement quotient

उचाट Distraction

उद्भवन Incubation

(ए)

एकाग्रता Concentration

एकीकृत Integrative

(ओ)

ओज Vigour

ओठ से पढ़ना Lip reading

(औ)

औपचारिक पद्धति Formal method

(क)

कोष Cell

कर्ण पटल Tympanic membrane

कुपोषण Malnutrition

कृत्रिम Artificial

कामुकता Lust

कन्द Condyle

(ख)

खसरा Measles

खण्ड Segment

(ग)

ग्रहणीयता Adoptation

गति वृद्धि Accelleration

ग्रहीनागता Spasticety

गतिक Dynamic

गहन Intensive

ग्रीवा Cervical

(घ)

घोष Vocalization
घ्राणत Olfactorily
घृणा Disdain

(च)

चेचक Small pox
चयापचय Metabolism
चेतन मन Conscious mind

(ज)

जड बुद्धिता Idiocy
जीर्ण Chronic
जीवाणु Bacteria
जैविक Organic
जीवनीय Vital
जनन Genetics

(त)

तत्व Factor
तन्द्रा Stupor
तन्त्रिका Nerve
तरल Fluid
तादात्म्यता Identification
तन्तुतीव्र रक्ताल्पता, रक्तक्षीणता Pernicious anaemia
तनाव Tension

(द)

दक्षता Competence
दिवा स्वप्न Day dream
दृष्टि-परिधि Visual-span
दैहिक Somatic
देयक निक्षेपित Bill deposits

(ध)

ध्यान भग Distraction
धनात्मक Positive

(न)

निरोध Inhibition
नकारात्मक Negative
निदानात्मक Diagnostic
नैराश्य Frustration
नैत्यक Routine
नैर्बल्य Infirmity
निद्रा रोग Narcolepsy
निर्योग्यता Disability
निहित अन्त शक्ति Inherent ability
निर्देशन Guidance
निर्विषक, निस्सङ्क्रामक Disinfectant

(प)

प्रतिरोध Resistance
पर्यवेक्षण Supervision
प्रसाधन Toilet
प्रवीक्षण Probation
प्रमस्तिष्कीय Cerebral
प्रमस्तिष्कीय सस्तम्भ Cerebral palsy
पल्याण Saddle
परिक्षयण Impairament
पुरोगम Programme
प्रतिभावान Gifted
पृथक्कृत Segregated
परिभ्रामी Itinerant, Peripatetic,
परम्परित Traditional
प्रतिबोध Perception
परिपूर्णता Accomplishment
प्रेरणा Motivation
प्रयतन Conation
प्रयुक्ति Application
प्रतिपन्नता Accuracy
प्रतिमान Norm
प्रवृत्ति Tendency
परामर्श दाता Counsellor

(ब)

बहिर्मुखी Extrovert
बाध्य Compelled
बधिर Deaf
बाल निर्देशन गृह Child guidance clinic
बहु विमा Multi-Dimensional
बुद्धि लब्धि Intelligence Quotient

(भ)

भीरुता Timidity
भेषज महाविज्ञ Doctor of Medicine
भावनात्मक Emotional
भूख Appetite
भग्नाशा Frustration

(म)

मन्द बुद्धिता Feeble-mindedness

मानदण्ड Criterion
मोह Delusion
मूढ़ Imbecile
मौलिकता Originality
मन्द बुद्धि Retarded

(य)

यान्त्रिक Mechanical
यक्ष्मा Tuberculosis
यौगिक Compound
यौन शिक्षा Sex education
युयुत्सा Combat

(र)

रक्त स्राव Haemorrhage
रति रोग Veneral disease
रक्त चाप Blood pressure

(ल)

लार Saliva

(व)

वाचन आयु Reading age
वर्तनी आयु Writing age
वाद्य Instrument
वक्र Deformed
व्यापक Comprehensive
विश्रान्ति काल Rest-pause
विकृत Distorted
वैकल्पिक Alternative
वैधता Validity
वैयक्तिक विभिन्नता Individual difference
विषम लिंगी Hetro-sexual
विचलन Deviation

(श)

शिक्षण पठार Plateau of learning
शील गुण Trait
श्वसन Respiration
शिखर Apex
शारीरिक विकलांग Physically Handicapped
शाब्दिक योग्यता Verbal ability
शोधन Purification

(स)

संक्रामक Infectious
संस्तम्भ Paralysis
समन्वय Harmonisation
संभ्रम Confusion
संवेगात्मक स्थिरता Emotional stability
संक्रमण Transmission
सौन्दर्यबोधात्मक Aesthetic
संश्लेषणात्मक Synthetic
स्थानापन्न Substitute
सामाजिक समायोजन Social adjustment
स्वत क्रिया Self activity
सृजनात्मक Creative
संसर्ग Contagion
स्नायविक दबाव Nervous tension
स्मृति विकृति Amnesia
सामाजिक स्वीकृति Social approval
स्वर यन्त्र Larynx
संवेदी Sensory
सापेक्ष Relative
संवाही Conductive
समर्पित Dedicated
सम्बोधी Conceptual
सम्मति Consent
स्पष्ट Explicit

(ह)

हीनता Deficiency
हीन ग्रन्थि Inferiority complex
हृद्यता Sensitivity
हृद् रोग Cardiac-disease

(क्ष)

क्षमता Aptitude
क्षय Consumption
क्षति Lesion
क्षेत्र Zone

* * *

BIBLIOGRAPHY

1 Baker, Harry J.,* *Introduction to Exceptional Children*,* Newyork, The Macmillan Co.

2 Bender, Lauretta,* *Psychology of Children with Organic Brain Disorders*,* Springfield Ill Charles C Thomas, 1956,

3 Burt, Cyril,* *The Backward Child* ,* Newyork Appleton Century Co 1937

4 Caplan L ,* *Mental Health and Human Relations in Education* ,* Harper, Newyork

5 Elizabeth B Hurlock,* *Child Growth and Development* ,* McGraw Hills Book Co , London

6 Frampton, Merle E ed,* *Education of the Blind*,* Newyork, World Book Co. 1940.

7 Goodenough, Florence L ,* *Exceptional Children*,* Newyork, Appleton Century Crofts, Inc 1956

8 Heck, A O.,* *The Education of Exceptional Children, Its Challenge to Teachers, Parents and Laymen*,* Newyork, McGraw Hill Book Co

9. Ingram, Christine P ,* *Education of the Slow Learning Child*,* Newyork, The Ronald Press Co , 1960

10 Ira, J Gordon,* *Human Development*,* D B Taraporevele Sons and Co Private Ltd , Bombay

11 Jessie Helen, Haag , Ed D ,* *School Health Programm*,* Oxford & I B H Publishing Co , Calcutta

12 John A Nesbitt, Paul D. Brown, James F Murphy,* *Recreation and Leisure Service for the Disadvantaged*,* Lea and Febiger, Philadelphia

13 John N. Drowatzky,* *Physical Education for the Mentally Retarded*,* Lea & Febiger 1971, Philadelphia

14 Kirk S A and G O. Johnson,* *Educating the Retarded Child*,* Newyork, Houghton Mifflin Co

15 Kirk S A Chairman,* *The Education of Exceptional Children*,* University of Chicago Press

16. Loewy, Herta,* *The Retarded Child A Guide for Parents and Teachers*,* Newyork, Philosophical Library

17 Merry, Ralph Vickers,* *Problems in the Education of Visually Handicapped Children*,* Cambridge, MASS Harward University Press

18	Mildred Stevens*	*The Education needs of Severely Subnormal Children** Latimer Trend and Co, Ltd Plymouth
19	Myclebust, Helmer R*	*Audiotory Disorders in Children** Newyork, Grune and Stration, 1954
20.	Norris G. Haring and E Lakin Phillips*	*Educating Emotionally Disturbed Children** McGraw Hill Book Co, Inc Newyork.
21.	Raymond Bottom*	*The Education of Disadvantaged Children* Parker Publishing Co. Inc Newyork
22.	Ruth H Wheeler*	*Physical Education of the Handicapped** Agnes M Hooley Library of Congress Catalog 1969 LEA & FEBIGER Philadelphia
23.	Samuel A Krik*	*Educating Exceptional Children** Oxford and IBH Publishing Co Calcutta
24	Tayler, Wallace W., & Issabelle W Tayler*	*Special Education of Physically Handicapped Children in Western Europe** Newyork International Society for the Rehabilitation of the Disabled, 1960

हिन्दी ग्रन्थानुक्रमणिका

ए पिन्सेन्ट (अनु. सन्तोष नन्दा) — 'अध्ययन विधि के सिद्धान्त', हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, चण्डीगढ–१९७३ ।

बी कुप्पुस्वामी (अनु डॉ श्यामसिह 'शशि', अफलसमिह वर्मा, धर्मपाल) — 'समाज मनोविज्ञान', हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, चण्डीगढ ।

ब्र ना कौशिक — 'शिक्षा सन्त, स्वामी केशवानन्द', शकर आयुर्वेद भवन, सगरिया (राज)

डी. बी. क्लेन, (अनु डॉ सी एल कुन्द्रू) — 'मानसिक आरोग्य विज्ञान', हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, चण्डीगढ–१९७४ ।

फकीर चन्द कौशिक — 'स्वास्थ्य रक्षा', लोहड बाजार, भिवानी (हरियाणा)।

गणपत राम शर्मा — 'शैक्षिक एव व्यावसायिक निर्देशन', महेन्द्रा कैपिटल पब्लिकेशन, चण्डीगढ।

हेनरी क्ले लिन्ग्रेन (अनु डॉ हरिकृष्ण देवसरे) — 'कलाध्ययन मे शिक्षा मनोविज्ञान', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल–१९७३ ।

हरिदास वैद्य (आयुर्वेद पचानन) — 'स्वास्थ्य शिक्षा', हरिदास एण्ड कम्पनी, मथुरा (पटना) ।

जगदीश नारायण पुरोहित — 'शिक्षण के लिये आयोजन', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर–१९७२ ।

जे एम स्टीफन्स, डॉ श्यामस्वरूप जलोटा — 'शिक्षा मनोविज्ञान', हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, चण्डीगड–१९७२ ।

के सी मलैया, डॉ. विद्यावती — 'शिक्षा, प्रशासन एव पर्यवेक्षण', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल–१९७१ ।

डॉ एल के ओड	'शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर–१९७३ ।
लेखराम आयुर्वेदाचार्य	'उदर्धवाग व्याधि विज्ञान', ग्रामोत्थान विद्यापीठ प्रकाशन, मगरिया (राज)।
नारमन एल मन	'मनोविज्ञान', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१९७२ ।
पी वी काणे (भारत रत्न) (अनु अर्जुन चौबे कश्यप)	'धर्म शास्त्र का इतिहास' (प्रथम भाग), हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश (लखनऊ) ।
डॉ रतनलाल शर्मा	'भारतीय शिक्षा की समस्याएँ', अशोक प्रकाशन, कोटा ।
डॉ राधाकृष्णन्	'भारतीय दर्शन' (प्रथम भाग), राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली–६, १९६६ ।
स्वामी केशवानन्द	'मरुभूमि सेवा कार्य योजना', ग्रामोत्थान विद्यापीठ, मगरिया (राज) ।
सीताराम जायसवाल	'शिक्षा विज्ञान कोष', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१९६७ ।
सरयू प्रसाद चौबे	'भारतीय शिक्षा का इतिहास', रामनारायण लाल, इलाहाबाद ।
शेरसिंह नूर	'सेवा, श्रम और शिक्षा का एक अध्याय स्वामी केशवानन्द, ग्रामोत्थान विद्यापीठ, मगरिया (राज) ।
डॉ शिव कुमार शर्मा	'अनुरजनात्मक क्रियाएँ, शारीरिक शिक्षा, एव स्वास्थ्य', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर–१९७३ ।
टी परसीनन (अनु चरणदास शास्त्री, जुगल किशोर)	'शिक्षा उसकी सामग्री और प्रमुख सिद्धान्त', कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र ।

डॉ लक्ष्मी कान्त — 'आरोग्य विज्ञान तथा जन-स्वास्थ्य' किताब महल प्रा लि, इलाहाबाद।

सीताराम चतुर्वेदी — 'शिक्षा दर्शन', हिन्दी समिति सूचना विभाग, लखनऊ (उ प्र)।

पत्र पत्रिकाएँ

धर्मयुग (साप्ताहिक) २५ सितम्बर ७४ एव २८ मार्च ७६ — टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन, दिल्ली, बम्बई।

दिनमान विकलांग समस्या अंक — टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन, दिल्ली, बम्बई।

नया शिक्षक (त्रैमासिक) — (१) शारीरिक शिक्षा अंक, (२) समकालीन भारत मे शैक्षिक विचार अंक, निदेशक, प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा, बीकानेर (राज)।

निसर्ग अने आरोग्य (मासिक) — स सुशीला पण्डिता, पोरबन्दर (गुजरात)।

राजस्थान बोर्ड शिक्षण पत्रिका — खण्ड–१, अंक–३, १९७५।

शिविरा (मासिक) (मार्च ७६ एव अप्रैल ७६ अंक) — शिक्षा विभाग प्रकाशन, राजस्थान, बीकानेर।

साप्ताहिक हिन्दुस्तान (२८ मार्च ७६ एव ४ अप्रैल ७६ अंक) — हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन, नई दिल्ली।

□ □ □

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	२	भागन्प्रथमजा	मागन्प्रथमजा
४	२१ शीर्षक	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
६	नीचे से २	ईशावाम्यमिद ॐ सर्व	ईशावास्यमिद ँ सर्व
६	अन्तिम	गव.	गृध
७	नीचे से १५	कर्मभिन	कर्मभिर्न
८	११	अथवा	अथर्वा
८	२३	ग्रामितामपञ्चर्त	ग्रसितामममञ्चत
८	२४	अतिभिरश्विना गतम्	याभि ' गतम्
८	२५	(ऋग् १।१२।२।८)	(ऋक् १।११२।८)
१०	१३	अलग-अलग	अलग-थलग
१६	नीचे से १४	कार्लालय	कार्यकाल
३३	१३	विद्या	विधा
३४	५	विद्या	विधा
३६	नीचे से ४	सुषुम्पा	सुषुम्ना
४६	२०	विद्या	विधा
६०	नीचे से ५	हृष्ट	हृष
१८८	२	पुण्करस्त्रजम्	पुष्करस्त्रजम्
१८८	३	पुरुषोऽमत्	पुरुपोऽमत्
१९७	७	यक्षाद्देवा	यक्षद्देवा
२१४	४	मित्रू का	मित्रूका का
२४५	अन्तिम	आशातीत	आशातीत लाभ
२४६	१६	समूहनृम्य	समूह नृत्य
२६०	१०	महीर्ष	महर्षि